तार्किकचूडामणि-सर्वदेव-विरचिता

प्रमाणमञ्जरी

[बलभद्रमिश्र-अद्वयारण्ययोगि-वामनभट्ट-विरचित व्याख्यात्रय समन्विता]

संपादनकर्ता

पं. पट्टाभिराम शास्त्री, विद्यासागरः

प्रकाशनकर्ता

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

संचालक, राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर

जयपुर (राजस्थान)

※

विक्रमाब्द २०१०] मूल्य ४-०-० [सजिल्द

मुद्रक-लक्ष्मीबाई नारायण चौधरी, निर्णयसागर प्रेस,
२६-२८ कोलभाट स्ट्रीट, बंबई. २.

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

'संस्कृत-प्राकृत साहित्य श्रेणि' के अन्तर्गत जो ग्रन्थ प्रेसोंमें छप रहे हैं उनकी नामावलि

१ त्रिपुराभारती लघुस्तव—कर्ता सिद्धसारस्वत लघुपण्डित ।
२ बालशिक्षा व्याकरण—कर्ता ठकुर संग्रामसिंह ।
३ करुणामृतप्रपा—कर्ता महाकवि ठक्कुर सोमेश्वर देव ।
४ पदार्थरत्नमञ्जूषा—कर्ता पं. कृष्णमिश्र ।
५ शकुनप्रदीप—कर्ता पं. लावण्यशर्मा ।
६ उक्तिरत्नाकर—कर्ता पं. साधुसुन्दर गणी ।
७ प्राकृतानन्द (प्राकृत व्याकरण)—कर्ता पं. रघुनाथ कवि ।
८ ईश्वरविलासकाव्य—कर्ता पं. कृष्णभट्ट ।
९ महर्षिकुलवैभव—कर्ता पं. मधुसूदन ओझा विद्यावाचस्पति ।
१० चक्रपाणिविजयकाव्य—कर्ता पं. लक्ष्मीधर भट्ट ।
११ काव्यप्रकाशसंकेत—कर्ता भट्ट सोमेश्वर ।
१२ प्रमाणमञ्जरी (वृत्तित्रयोपेता)—मूलकर्ता सर्वदेवाचार्य ।
१३ वृत्तिदीपिका—कर्ता मौनि कृष्णभट्ट ।
१४ तर्कसंग्रह फक्किका—कर्ता पं. क्षमाकल्याण गणी ।
१५ राजविनोद काव्य—कर्ता कवि उदयराज ।
१६ यंत्रराजरचना—कर्ता महाराजा सवाई जयसिंह ।
१७ कारकसंबन्धोद्योत—कर्ता पं. रभसनन्दी ।
१८ शृंगारहारावलि—कर्ता श्रीहर्ष कवि
१९ कृष्णगीतिकाव्यानि—कर्ता कवि सोमनाथ ।
२० नृत्तसंग्रह—अज्ञात कवि कर्तृक ।
२१ नृत्यरत्नकोश—कर्ता राजाधिराज कुंभकर्णदेव ।
२२ नन्दोपाख्यान—अज्ञातविद्वत्कर्तृक ।
२३ चान्द्रव्याकरण—कर्ता महावैय्याकरण चन्द्रगोमी ।
२४ शब्दरत्नप्रदीप—अज्ञातकर्तृक ।
२५ रत्नकोश ,,
२६ कविकौस्तुभ—कर्ता पं. रघुनाथ मनोहर ।
२७ मणिपरीक्षादि—प्रकरणानि अज्ञातकर्तृक
२८ सामुद्रकम् ,, ,,
२९ शतकत्रयम्—कर्ता भर्तृहरि ।
३० वसन्तविलास— ,, अज्ञातकर्तृक ।

किञ्चित् प्रास्ताविक

*

सर्वदेवाचार्य प्रणीत **प्रमाणमञ्जरी** नामक प्रस्तुत ग्रन्थ वैशेषिक दर्शनका एक प्रमाणभूत और प्राचीन प्रकरण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थका मूलमात्र ही अभी तक प्रकाशमें आया है; लेकिन व्याख्यादिके साथ यह कहींसे प्रकाशित नहीं हुआ। आधुनिक विद्वानोंको तो इस ग्रन्थका परिचय भी शायद नहीं है। राजस्थान, मध्यभारत एवं गुजरातके प्राचीन पुस्तक भण्डारोंमें इस ग्रन्थकी अनेक हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त होती हैं और इस पर रची हुई भिन्न भिन्न विद्वानोंकी व्याख्याएँ आदि भी यत्रतत्र उपलब्ध होती हैं। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन कालमें, राजस्थानमें इस ग्रन्थके पठन–पाठन और अध्ययन–अध्यापन आदिका यथेष्ट प्रचार रहा है।

कोई १२ वर्ष पहले बंबईके निर्णयसागर प्रेसने इस ग्रन्थका मूलमात्र छाप कर प्रकट किया था, जिसे देख कर इसकी व्याख्या वगैरहके विषयमें कुछ जानकारी प्राप्त करनेकी हमें इच्छा हुई। सन् १९४३ के प्रारंभमें जेसलमेरके ज्ञान भण्डारोंका निरीक्षण करनेका हमें प्रसङ्ग प्राप्त हुआ उस समय वहांके एक ज्ञान भण्डारमें बलभद्रमिश्रकी[1] व्याख्यावाली इसकी

---

१ इन बलभद्रमिश्रने केशव मिश्रकी तर्कभाषापरसी **तर्कभाषा प्रकाशिका** नामक संक्षिप्त परंतु सुन्दर व्याख्या बनाई है जिसकी एक प्रति पूनाके भाण्डारकररीसर्च इन्स्टीट्यूटमें संरक्षित, राजकीय ग्रन्थ संग्रहमें, सुरक्षित है। इस व्याख्याके आद्यन्त पद्य इस प्रकार हैं।

आदि–विष्णुदासतनूजेन बलभद्रेण तन्यते। व्यात्वा विष्णुपदाम्भोजं तर्कभाषाप्रकाशिका।
अन्त–विष्णुदासतनूजेन माध्वीपुत्रेण यत्नतः। अकारि बलभद्रेण तर्कभाषाप्रकाशिका॥

इन बलभद्र मिश्रका समयनिर्णायक कोई विशिष्ट आधार अभी तक ज्ञात नहीं हुआ है। परंतु भावनगरके जैन ज्ञान भण्डारमें प्रस्तुत प्रमाणमञ्जरी व्याख्याकी एक प्रति हमारे देखनेमें आई है उसका लिपिकाल आदि इस प्रकार लिखा हुआ है।

संवत् १६६७ वर्षे भाद्रवासुदि १४ दिने वार सोमे प्रती पूरी कीधी। मोढ ज्ञातीय पंड्या भवान सुत पंड्या मेघजी।

इस पंक्तिसे इतना तो निश्चित ज्ञात हो रहा है कि वि. सं. १६६७ के पहले ही बलभद्र मिश्र कभी हो गये हैं। इसके पूर्वकी समयमर्यादा का विचार करने पर, यह भी निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि तर्कभाषाके कर्ता पं. केशवमिश्रके बाद ही बलभद्र मिश्र हुए हैं। केशवमिश्रका समय, विद्वानोंने प्रायः ईस्वी १३०० के कुछ पूर्ववर्ती अनुमानित किया है। क्यों कि तर्कभाषाके पहले टीकाकार चिन्नभट्ट हैं जो ईस्वीकी १४ वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें हुए हैं; दूसरी ओर केशवमिश्रने अपने ग्रन्थमें प्रसिद्ध महानैयायिक गंगेशके विचारोंका अनुसरण किया है, अतः गंगेशके बाद ही केशवमिश्रका होना सिद्ध होता है। गंगेशोपाध्यायका समय विद्वानोंने ई. स. ११५०–१२०० के लगभग अनुमानित किया है; अतः इस तरह ई. स. १२००–१३०० के बीचमें केशवमिश्रका होना मानना संगत लगता है।

हमारा अनुमान है कि प्रमाणमञ्जरी और तर्कभाषाके टीकाकार ये बलभद्रमिश्र वे ही हैं जो तर्कभाषाकी एक दूसरी व्याख्या करनेवाले गोवर्धन मिश्रके पिता थे। गोवर्द्धन मिश्रने अपनी तर्कभाषाप्रकाश नामक व्याख्यामें अपना परिचय इस प्रकार दिया है–

एक प्राचीन सुन्दर हस्तलिखित प्रति हमें देखनेको मिली। हमने उसकी प्रतिलिपि करवा ली। खोज करने पर, पूना, वडौदा, बंबई, बीकानेर, भावनगर, पाटन, अहमदाबाद आदि स्थानोंके प्राचीन ग्रन्थोंके संग्रहोंमें भी इस ग्रन्थकी अन्यान्य टीकाएँ और उनकी अनेक प्रतियाँ ज्ञात हुई।

राजस्थान सरकारने, हमारी प्रेरणासे प्रेरित हो कर, सन् १९५० में, जब राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिरकी स्थापनाका शुभ संकल्प किया और प्रारंभमें इस मन्दिरके संचालनका भार हमारे ही ऊपर रखना निश्चित किया गया, तब हमने प्रथम ही वर्षमें इस संस्थाकी ओरसे प्रकाशित किये जानेवाले, जिन ग्रन्थोंका चुनाव किया उनमें प्रस्तुत प्रमाणमञ्जरीको भी स्थान दिया; और इसके संपादनका कार्य, पण्डितप्रवर विद्यासागर श्रीपट्टाभिरामजी शास्त्री (जो उस समय जयपुरके महाराजा संस्कृत कॉलेजके प्रधानाचार्यके पद पर अधिष्ठित थे) को सौंपा। पण्डितवर्य्य श्रीपट्टाभिरामजी शास्त्री मीमांसादर्शनके एक प्रौढ विद्वान् हैं और आपने इतःपूर्व अनेक उच्चकोटिके ग्रन्थोंका संपादन-संशोधन आदि कार्य वडी निपुणताके साथ किया है। वर्तमानमें आप कलकत्ता युनिवर्सिटीके संस्कृत-विभागमें प्राध्यापकके पद पर नियुक्त हैं। शास्त्रीजीने प्रस्तुत ग्रन्थका संपादन वडी योग्यता और सावधानताके साथ किया है जिसके लिये हम इनके प्रति अपना हार्दिक कृतज्ञभाव प्रकट करते हैं और चाहते हैं कि भविष्यमें भी आप इसी तरह ऐसे ही किसी अन्य महत्त्वके ग्रन्थका संपादन-संशोधन कर, इस **राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला** की शोभावृद्धि करनेमें हमारे सहभागी बनें।

यस्तर्कभाषामनुभावते स्म गोवर्द्धनस्तर्ककथासु धीरः।
तेनानवद्येन सुधांशुगौरी कीर्तिर्गुरूणाममृताधिकाऽस्तु॥
विजयश्रीतनुजन्मा गोवर्धन इति श्रुतः।
तर्कानुभाषां तनुते विविच्य गुरुनिर्मितिम्॥
श्रीविश्वनाथानुजपद्मनाभानुजो गरीयान् बलभद्रजन्मा।
तनोति तर्कानधिगत्य सर्वान् श्रीपद्मनाभाद् विदुषो विनोदम्॥

—देखो श्रीरामकृष्ण गोपालभाण्डारकरकी, सन् १८८२-८३ की संस्कृतसाहित्यकी खोजविषयक रिपोर्ट-पुस्तक, पृ. २१३.

बलभद्रमिश्र और गोवर्द्धन मिश्र—दोनोंकी रचनाशैली प्रायः समान मालूम देती है। बलभद्रने अपनी तर्कभाषाप्रकाशिकाके अन्तमें जिस प्रकार अपने पिता और माताका नाम निर्देश किया है उसी प्रकार गोवर्द्धन मिश्रने भी अपनी माता और पिताका नामनिर्देश किया है। संभव है कि इस विषयके आधारभूत ग्रन्थोंकी विशेष रूपसे छानबीन करनेपर, उनमेंसे कुछ विशिष्ट प्रकाश प्राप्त हो सके।

[इन पंक्तियोंका मुद्राक्षर संयोजन हो जाने बाद, राजस्थान पुरातत्त्वमन्दिरके संग्रहके लिये प्राचीन ग्रन्थोंका संचयन करनेवाले पाटणनिवासी पं. अमृतलाल मोहनलालने बलभद्र मिश्रकी तर्कभाषा प्रकाशिका व्याख्या की एक विशेष प्राचीन प्रति हमें उपस्थित की जो वि. सं. १६०७ की लिखी हुई है। इस प्रतिके अन्तमें लिपिकरने अपना परिचय दिया है।

श्रीमत्रिपाठीविष्णुदासतनय-श्रीमद्बलभद्र विरचिता तर्कभाषाप्रकाशिका समाप्ता॥ संवत् १६०७ चैत्र शु. दि. ९ सोमे। भ० हरिनाथसुत नाकरेण। लिपितमिदं तर्कभाषायाः टिप्पणकं॥ शुभं भवतु॥

इस प्रतिकी स्थिति देखनेसे ज्ञात होता है कि यह किसी विशेष प्राचीन कालीन प्रति परसे प्रतिलिपिके रूपमें तैयार की गई है। अतः इसके आधारसे बलभद्रका समय वि. सं. १६०० के पूर्वका तो स्वतः सिद्ध है।

प्रस्तुत प्रकाशनमें सर्वदेवसूरिकी मूलकृति प्रमाणमञ्जरी और उसपर लिखी गई ३ भिन्न भिन्न व्याख्याएं सम्मिलित की गई हैं। व्याख्याओंकी विशिष्टता आदिके विषयमें संपादक-पण्डितवर्यने, अपने प्रास्ताविक वक्तव्यमें संक्षेपमें यथायोग्य समुल्लेख किया है।

ग्रन्थकार सर्वदेवके समय आदिके विषयमें कोई निश्चित वृत्त ज्ञात नहीं होता है। शास्त्रीजीने अनुमानतः विक्रमकी १४ वीं शताब्दीमें उनके होनेकी कल्पना की है। परंतु हमारा अनुमान है कि सर्वदेव कुछ विशेष प्राचीनकालीन हैं। प्रमाणमञ्जरीकी रचनाशैली विशेष प्राचीन पद्धतिकी है। शिवादित्यकी सप्तपदार्थी और सर्वदेवसूरिकी प्रमाणमञ्जरी ये दोनों वैशेषिक दर्शनके विशिष्ट एवं समकोटिके प्रकरण ग्रन्थ हैं जिनमें वैशेषिक सूत्रमें प्रतिपादित ६ पदार्थोंके बदले ७ पदार्थोंका सर्वप्रथम प्रतिपादन किया गया मालूम देता है। प्रमाणमञ्जरीकी सबसे प्राचीन हस्तलिखित प्रति काश्मीरमें डॉ. ब्युह्लरको प्राप्त हुई थी जिसको उनने ११ वीं शताब्दीमें लिखी हुई बतलाई है[1]।

इस तरह जब ११ वीं शताब्दीमें लिखी हुई प्रमाणमञ्जरीकी प्रति मिलती है तो फिर इसकी रचना कम से कम इससे पूर्व तो अवश्य ही हुई सिद्ध होती है। सो हमारे अनुमानसे १० वीं शताब्दीके अन्तमें इसका प्रणयन होना संभव है। मालूम देता है कि ग्रन्थकार काश्मीर देशका निवासी है और इसलिये इसकी कृतिका प्रचार कुछ समयके बाद, धीरे धीरे हुआ है। सबसे पहले प्रमाणमञ्जरीका उल्लेख जिसमें मिला है वह है **न्यायपरिशुद्धि** नामक ग्रन्थ, जिसका प्रणयन वेंकटनाथ वेदान्ताचार्यने किया है। वेंकटनाथका समय खिस्ताब्द १२६७-६९ निश्चित रूपसे ज्ञात हुआ है। इस ग्रन्थमें वेंकटनाथने एक स्थानपर हेत्वाभासोंकी चर्चा के प्रकरणमें—

श्रीमहाविद्या-मानमनोहर-प्रमाणमञ्जर्यादिपठितवक्ष्यानुमानस्यापि तथात्वम्।

(देखो, न्यायपरिशुद्धि, चौखम्बाग्रन्थावलिमें प्रकाशित, पृ. २७८)

इस प्रकार महाविद्या, मानमनोहर के साथ प्रमाणमञ्जरीका उल्लेख किया है। इसके टीकाकार श्रीनिवासाचार्य, जो प्रायः ग्रन्थकारके ही शिष्य समझे जानेवाले और अतः उनके समकालीन ही माने जानेवाले, ने अपनी **'न्यायसार'** नामक टीकामें, इस पंक्तिकी टीका करते हुए लिखा है कि—

'श्रीमहाविद्या-मानमनोहर-प्रमाणमञ्जरीति ग्रन्थनामधेयानि।' (देखो, वही पुस्तक, वही पृष्ठ)

इससे स्पष्ट है कि यह प्रमाणमञ्जरी प्रकरण ग्रन्थ विक्रमकी १५ वीं शताब्दीके पूर्व ही यथेष्ट सुदूर दक्षिण तक प्रसिद्ध हो चुका था। इसी तरह प्रत्यग्रूप भगवान् अथवा प्रत्यक्-स्वरूप भगवान् नामक ग्रन्थकार, जो विक्रमकी १४ वीं शताब्दिके उत्तरार्द्ध और १५ वीं के पूर्वार्द्धके बीचमें हो गये ज्ञात होते हैं, उनने भी चित्सुखाचार्य रचित **तत्त्वप्रदीपिका** नामक

१ देखो, डॉ. ब्युह्लरकी काश्मीरमें की गई खोज विषयकी रिपोर्ट, पृ. ३६; तथा डॉ. थॅडालका बनाया हुआ ब्रिटिश म्युजिअमके संस्कृत ग्रन्थोंका सूचिपत्र (केटेलॉग) पृ. ११८, नं. ३३५, और इन्डिया ऑफिसके संस्कृत ग्रंथोंका सूचिपत्र, पृ. ६६६, नं. २९७५ विशेष जानेके लिये, टॉकियो (जापान) के सोतोशु कॉलेजके प्रो. ह. उइ की लिखी हुई दशपदार्थीके अनुवाद रूप **'वैशेषिक फिलॉसॉफी'** नामक पुस्तक, पृ. १२६. (पादटिप्पणी)

ग्रन्थ पर **नयनप्रसादिनी** नामक जो व्याख्या लिखी है उसमें दर्शनशास्त्रोंके प्रणेता जिन अनेकानेक ग्रन्थकारों के और उनके ग्रन्थोंके नाम निर्दिष्ट किये हैं उन नामोंमें सर्वदेव और उनके रचित प्रमाणमञ्जरी ग्रन्थका भी नाम उल्लिखित है। इसलिये प्रस्तुत ग्रन्थ उस समयके ग्रन्थकारोंमें सुज्ञात रहा है इसमें कोई संदेह नहीं है[1]

जैन संप्रदायमें भी प्राचीन कालमें इस ग्रन्थका पठन-पाठन विशेष रूपसे रहा है यह तो इसकी जो अनेकानेक प्राचीन प्रतियां विशेष रूपसे जैन ग्रन्थ भण्डारोंमें ही उपलब्ध होती हैं उसीसे सिद्ध है। अकबर बादशाहके जैन गुरु सुप्रसिद्ध आचार्य हीरविजय सूरिके प्रधान शिष्य विजयसेन सूरिने जिन शैव दर्शनके मुख्य मुख्य ग्रन्थोंका अध्ययन-मनन किया था उनकी नामावलि, उनके जीवनचरितस्वरूप संस्कृत महाकाव्य **विजयप्रशस्ति** में दी गई है। उसमें **तर्कभाषा, सप्तपदार्थी, वरदराजी** आदि प्रकरण ग्रन्थोंके साथ इस **प्रमाणमञ्जरी** का भी नामनिर्देश किया हुआ है। यथा–

तर्कभाषा-सप्तपदार्थी-वरदराजी-प्रमाणमञ्जरी-प्रशस्तपादभाष्य-कणादरहस्यादयः शशधर-मणिकण्ठ-कुसुमाञ्जलि-किरणावलि-वर्द्धमान-तत्त्वचिन्तामणिपर्यन्ताः शैवप्रमाणशास्त्राणि।

(विजयप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग १, पद्य ९ की टीका)

ऐसा मालूम देता है कि अन्नंभट्ट रचित तर्कसंग्रह नामक इसी विषयके नवीन प्रकरण ग्रन्थकी अधिक सरल और सुबोध रचना होनेके बाद उसके पठन-पाठन का प्रचार बहुत अधिक बढा और प्रमाणमञ्जरी जैसे प्राचीन शैलीके ग्रन्थका अध्ययन विलुप्तसा हो गया। और इस कारणसे न्याय-वैशेषिक दर्शनके साहित्यके अभ्यासियों और विवेचकोंको प्रायः इस ग्रन्थके अस्तित्वका भी ज्ञान नहीं मालूम दे रहा है।

इस वस्तुस्थितिका विचार कर, हमने प्रस्तुत ग्रन्थको राजस्थान सरकार द्वारा आयोजित, इस अभिनव **'राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला'** में प्रकट करनेका प्रथम वर्षके प्रारंभिक कार्यक्रममें ही निश्चय किया था। इस ग्रन्थमालाका प्रधान उद्देश्य संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं प्राचीन देशभाषामें ग्रथित ऐसे अनेकानेक ग्रन्थोंका उद्धार कर प्रकाशमें लानेका है, जो प्रायः विद्वत्समाजके लिये अलब्ध-अज्ञात-अश्रुतपूर्वसे हैं और जो विशेष करके राजस्थानके अपरिचित एवं उपेक्षित स्थानोंमें नष्ट-भ्रष्ट दशाको प्राप्त हो कर, कालके कुटिल विवरमें सदाके लिये विलीन हो जानेकी परिस्थितिमें पहुंचे हुए हैं।

राजस्थान सरकारका यह सत्प्रयत्न भारतीय साहित्य और संस्कृतिके अनुयायी और उपासकोंके लिये अतीव अभिनन्दनीय है। हमारा प्रयत्न है कि भारतके सर्वांगीण विकासक्रमकी जो पञ्चवर्षीय योजना बनी है उसीके अन्तर्गत राजस्थान सरकारकी यह साहित्यिक समुद्धारकी सुयोजना भी एक आदर्शरूप कार्य बने।

वैशाख शुक्ला ३, सं. २०१०.
भारतीय विद्या भवन, बंबई

जिनविजय मुनि

---

[1] देखो, महाविद्याविडम्बन नामक ग्रन्थ (गायकवाड प्राच्यग्रन्थमाला) की प्रस्तावना, पृ. २३ की पादटिप्पणी।

॥ श्रीः ॥

सम्पादकीयं किञ्चित्

*

अधुना येयं श्रीसर्वदेवसूरिविरचिता प्रमाणमञ्जरी टीकात्रयसमलङ्कृता मुद्राप्य प्रकाशं नीयते, सा केवलमूलसूत्रस्वरूपा सप्तत्रिंशदधिकैकोनविंशतिशततमे (१९२७ सन्) ईसवीये वर्षे मुम्बय्यां जगति लब्धप्रतिष्ठे निर्णयसागरमुद्रणालये प्रथमं मुद्रिता । साम्प्रतमिमां टीकात्रयेण सह परिष्कृत्य सम्पादयितुं राजस्थानीयपुरातत्त्वमन्दिरप्रवर्तकैः पुरातत्त्वाचार्यश्रीमज्जिनविजयमुनिमहोदयैर्नियुक्तोऽहं शोभनेऽस्मिन् कार्ये प्रावर्तिषि । ग्रन्थस्यास्य शोभां परिवर्द्धयितुं शुद्धांश्च पाठान् सन्निवेशयितुं नैकविधान्यादर्शपुस्तकानि प्राचीनान्यासादयम् । तत्र —

(अ) पुण्यपत्तनस्थाद्विश्रुताद् भाण्डारकरपुस्तकागारात् (Bhandarkar Institute) प्राप्तमेकं हस्तलिखितमतिप्राचीनं पुस्तकम् 'क' संज्ञितम् ।

(आ) तस्मादेव प्राप्तमन्यत्तादृशं पुस्तकम् 'ख' संज्ञितम् ।

(इ) उपाध्यायपदविभूषितेन साहित्यजैनन्यायाचार्येण श्रीविनयसागरमुनिमहोदयेन दत्तमेकं प्राचीनतमं पुस्तकम् 'ग' संज्ञितम् ।

(ई) तेनैव महोदयेन प्रदत्तमन्यत्पुस्तकं पत्रत्रयात्मकमतिसूक्ष्माक्षरैर्लिखितं 'घ' संज्ञितम् ।

(उ) बीकानेरत आसादितमेकं पुस्तकं 'ङ' संज्ञितम् ।

(ऊ) मुम्बय्यां मुद्रितं पुस्तकमिति मूलपुस्तकानि षट् ।

(ऋ) पुण्यपत्तनस्थपुस्तकागारादेव प्राप्तं बलभद्रटीकापुस्तकमेकम् 'च' संज्ञितम् ।

(ॠ) जयपुरस्थपुरातत्त्वमन्दिरसञ्चालकैः श्रीमुनिमहोदयैः प्रत्तमेकं बलभद्रटीकापुस्तकम् 'छ' संज्ञितम् ।

(ऌ) पुण्यपत्तनतः प्राप्ते श्रीमदद्वयारण्यटीकापुस्तके द्वे 'ज' 'झ' संज्ञिते ।

(ए) श्रीविनयसागरमहोदयद्वारा प्राप्तमद्वयारण्यटीकापुस्तकम् 'ट' संज्ञितम् ।

(ऐ) बीकानेरतो लब्धमद्वयारण्यटीकापुस्तकम् 'ठ' संज्ञितम् ।

(ओ) पुण्यपत्तनतः प्राप्तमेकं वामनभट्टविरचितटीकापुस्तकमिति सप्त टीकापुस्तकानि ।

एषु मूलपुस्तकानि सर्वाण्येव प्रायश्शुद्धानि स्पष्टाक्षराणि च । व्याख्यापुस्तकेषु बलभद्रटीकापुस्तकद्वयं प्रायोऽशुद्धम् विषमाक्षरञ्च । अद्वयारण्यपुस्तकानि प्रायश्शुद्धान्येव । वामनभट्टटीकापुस्तकञ्चाशुद्धप्रायम् । एवमिमानि पुस्तकान्यवलम्ब्य ग्रन्थोऽयं टीकात्रयोपेतो वैशेषिकनये प्रविविक्षूणां बालानामुपकाराय प्रकाशं नीत

'काणादं पाणिनीयञ्च सर्वशास्त्रोपकारकम्' इत्यभियुक्तोक्त्या काणादनयस्य सर्वशास्त्रोपकारकत्वे न कस्यापि विप्रतिपत्तिः। तत्र सूत्राणां प्रशस्तपादभाष्यस्यान्येषाञ्चोदयनप्रभृतिभिर्विद्वत्तल्लजैर्विरचितानां ग्रन्थानां दुरधिगमत्वात्तार्किकचक्रचूडामणिः 'श्रीसर्वदेवः दुरूहविषयानोकहसङ्कुलेऽस्मिन् काणादकान्तारे सुखेन बालानां प्रवेशसिद्धयेऽतिसरलया शैल्या ग्रन्थमिमं प्रणिनाय। अयञ्च सर्वदेवः ईसवीयचतुर्दशशताब्द्यामासीदिति विमर्शकैरनुमीयते। अस्मिन् ग्रन्थे काणादाभिमतानां सर्वेषां पदार्थानां लक्षणं विभागञ्च सविशेषं निरूपयन् सर्वदेवः शास्त्रे विद्यमानं काठिन्यं दूरीचकारेति न वक्तव्यं मया। ग्रन्थस्यास्य टीकासु विलोक्यमानासु स्पष्टमिदं प्रतीयते—यदत्रैकमप्यक्षरं न वृथा प्रयुक्तं सर्वदेवेनेति।

अस्य ग्रन्थस्य तिस्रष्टीकास्सन्ति। ताः क्रमेण तार्किकशिरोमणिभिः श्रीमदद्वयारण्य—बलभद्र—वामनभट्टैर्विरचिताः। इमाश्च टीकाः अल्पीयस्यप्यस्मिन् ग्रन्थे विद्यमानं प्रौढिमानमवद्योतयन्ति। तिसृष्वपि टीकासु मूले प्रयुक्तानां पदानां प्रयोजनविचारो विदुषां मनांसि रञ्जयेदित्यत्र न कोऽपि संशयः। व्याख्यासहितस्यास्याध्ययनेनाध्यापनेन वा न केवलमध्येतॄणां किन्त्वध्यापकानामपि पदार्थविवेचनशैली परिवर्द्धेत इत्यत्र किमु वक्तव्यम्। इदमेवैकं तादृशं शास्त्रम्, यच्च साकं पदार्थज्ञानेन पदार्थविवेचनचातुरीमपि जनयति। यश्च युक्त्या तत्त्वं परिशीलयति स एव परमार्थतत्त्वमवगच्छतीति न मया वक्तव्यम्। 'न हि प्रतिज्ञामात्रेण वस्तुसिद्धिः' इति प्राचीनानां यौक्तिकशास्त्रनिर्माणे इयान् प्रयासः। पदार्थतत्त्वस्य सत्यपि शब्दसमधिगम्यत्वे युक्त्या तर्केण वा तत्समधिगन्तुं लोकानां दृश्यते स्वारसिकी प्रवृत्तिः। अत इदं यौक्तिकं शास्त्रं प्रवर्तितं प्राचीनैः। अमुमेवार्थं द्रढयति "श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" इत्यत्र 'मन्तव्य' पदं प्रयुञ्जाना भगवती श्रुतिरपि। एवमस्मिन् महाफले शास्त्रे बालानां सुखेन प्रवेशसिद्धये श्रीसर्वदेवेन लेखनी व्यापारिता। अल्पकायस्यास्य ग्रन्थस्य महत्त्वं संवीक्ष्य तस्य कलेवरं परिवर्द्धयितुं श्रीमदद्वयारण्यप्रभृतयस्तार्किकशिरोमणयो हृदयङ्गमाष्टीका अरारचन्निति धन्योऽयं संस्कृतसमाजः, विशेषतश्च तार्किकसमाजः।

टीकाकर्तॄणां पौर्वापर्ये समये च विमृश्यमाने ममेदं प्रतिभाति—यद्बलभद्रमिश्रः 'केचित्' 'अत्र केचित्' 'इति केचन' इत्येवं तत्र तत्र मतान्यनूद्य खण्डयति। इमानि च मतानि अद्वयारण्यवामनभट्टटीकयोस्समुपलभ्यन्ते। अतो बलभद्रस्तृतीयकोटौ निवेष्टुमर्हति। वामनभट्टस्तु प्रायोऽद्वयारण्यटीकामेवानुवर्तते। इयांस्तु विशेषः—अद्वयारण्यटीका विस्तृता, वामनभट्टस्य तु तस्या एव सङ्क्षेपरूपा टीकेति। तत्रापि वामनभट्टः—'शाके बाणगजत्रिचन्द्रगणिते वर्षे (१३८५) सुभानौ शुभे' इति समयं ग्रन्थस्यान्ते निर्दिशन् स्वस्य ईसवीयपञ्चदशशताब्दीमध्यवर्तित्वं कथयति। एवञ्चाद्वयारण्यः प्रथमः, वामनभट्टो द्वितीयः, बलभद्रस्तु तृतीयः, सिध्यतीत्येतदेवात्र वक्तुं पार्यते, विशेषतस्तु निर्णये विमर्शका एव प्रमाणमिति।

अत्युत्तमस्यास्य ग्रन्थस्य प्रकाशनमत्यावश्यकमिति मन्वाना राजस्थानीयपुरातत्त्वमन्दिरसंप्रतिष्ठापकास्तत्सञ्चालनकर्मण्यहोरात्रं निरताः प्राचीनग्रन्थप्रकाशने तदन्वेषणे च सुलब्धप्रतिष्ठाः श्रीमुनिजिनविजयमहोदया मामस्मिन् शोभने कर्मणि न्ययूयुजन् इति तानहं कोटिशो धन्यवादपरम्पराभिः

परिपूरयामि । नैकविधानां पुरातत्त्वावशेषाणामाकरे राजस्थानमहाराज्ये तत्र तत्र निलीनानां संख्यातीतानां ग्रन्थरत्नानां परिष्करणं प्रकाशनञ्च येषां समुद्बोधनेन यै राज्यमन्त्रि-सचिवप्रभृतिभिर्यदारब्धं तेभ्यस्सर्वथायमधमर्णस्संस्कृतसमाजः । एवमेव ते तानि तानि ग्रन्थरत्नानि परिष्कृत्य सर्वत्र विसृमराभिस्तत्प्रभाभिः भगवतीं भारतीं भारतभुवञ्च सत्रा समुद्दीपयेयुरित्याशासे ।

अस्य च ग्रन्थस्यादर्शपुस्तकैरतिजटिलाक्षरैस्सह संवादनादिकार्येषु स्वनियमानुल्लङ्घ्यापि नितान्तमुपकृतवते जैनन्यायसाहित्याचार्याय उपाध्यायपदविभूषिताय श्रीविनयसागरमुनिमहोदयाय हार्दिकान् धन्यवादान् वितरामि । एवं संशोधनपाण्डुलिपिसम्पादनादिकार्ये मदन्तेवासिना मीमांसाचार्येण साहित्यरत्नेन च श्रीमदनलालशर्मणा मण्डनमिश्रापरनामधेयेन जयपुरमहाराजसंस्कृतकॉलेजाध्यापकेन चिरायुषा सुबहु परिश्रान्तमुपकृतञ्चेति तमाशीर्वचोभिः पूरयामि ।

अस्य ग्रन्थस्य शोभां परिवर्द्धयितुं साधुपाठानामभावेन जनितं क्लेशञ्च दूरीकर्तुं बहुमूल्यान्यादर्शपुस्तकानि सदयं प्रेषितवद्भ्यो हैयङ्गवीनहृदयेभ्यः पुण्यपत्तनस्थ भाण्डारकरपुस्तकागारमन्त्रि-(सेक्रेटरी) महोदयेभ्यश्शतशो धन्यवादान् संवितीर्यान्ते सर्वानेव विपश्चिदपश्चिमान् सम्प्रार्थयेयत्सावधानेन मनसा शोधितेऽप्यस्मिन् ग्रन्थे मनुष्यमात्रसुलभा अशुद्धयोऽवश्यं भवेयुः, ता अपरिगणय्य यदि कश्चन गुणलवस्स्यात्तर्हि तद्ग्रहणेन मामनुगृह्णीयुरिति ।

कलिकाता.
१२-१२-१९५२

विद्वज्जनवशंवदः
पट्टाभिरामशास्त्री विद्यासागरः

प्रमाणमञ्जर्या विषयसूची



तार्किकचूडामणि - श्रीसर्वदेव - विरचिता

प्रमाणमञ्जरी

कासारतीरसरसीरुहमाददानः
शुभ्रं भ्रमद्भ्रमरमध्यमिवेन्दुबिम्बम् ।
द्वैमातुरश्चिरतरं भवतस्स पायात्
सञ्जातनिर्मलजलप्रतिबद्धनर्मा ॥ १ ॥

श्रीबलभद्रविरचिता टीका

[ब. टी.] नत्वा हरिपदं नत्वा गुरोरर्थं प्रयत्नतः ।
प्रमाणमञ्जरीटीका बलभद्रेण तन्यते ॥ १ ॥

निर्विघ्नग्रन्थपरिसमाप्तिकामनया कृतं मङ्गलं शिष्यशिक्षायै निबध्नाति-कासारेति । द्वैमातुरः द्वे मातरौ अस्य स तथा गणेशः भवतः श्रोतॄन् चिरं पायात्, स विघ्नसंहारकत्वेन यतः प्रसिद्धः । स्तुतिरूपं मङ्गलमाचरति-सञ्जातेति । एतावता हर्षविशिष्टतया स्मृता देवता फलं ददातीति द्योतितम् । सञ्जातम् अभिनवम् । यद्वा सञ्जातं चन्दनादिना संस्कृतम्, एतादृशं यज्जलं तत्रारब्धं नर्म क्रीडा येन । जल-क्रीडायां यदुचितं तदाह-कासारेति । कानां जलानाम् आसारः आगमनं यत्र स कासारः तडागः । यद्वा ईषदासारः कासारः अल्पसरः, अल्पसरसि एतत्तीरसमीपजातं यत्सरसीरुहं कमलम् । कीदृशम्? शुभ्रम् । पुनः कीदृशम्? भ्रमद्भ्रमरमध्यं मध्ये भ्रमरेणाक्रान्तम् । आददानः शुण्डादण्डेनाकर्षन् । आदधान इति पाठे बिभ्रदित्यर्थः । भ्रमत् कम्पमानं, यद्वा भ्रमद्भ्रमरमध्यमित्येकमेव पदम्, भ्रमत्क्रियाविशेषविशिष्टो भ्रमरो यत्र तद्भ्रमद्भ्रमरं तादृशं मध्यं यस्य तत्तथा । केचित्तु ध्यानरूपमेव मङ्गलं शिष्यायोपदिष्टमुपमानबलेन उत्प्रेक्षाबलेन वा ध्यानान्तरमाह-इन्दुबिम्बमिवेत्याहुः । एतावता गगने नात्यासक्तो विघ्नराजः करेण शशिमण्डलं कर्षन् ध्येय इति भावः । केचित्तु ध्यानं यद्यपि मङ्गलं न भवति, तथापि प्रायश्चित्तवद्दुरितनिवर्तकं भवतीत्याहुः ।

श्रीमदद्वयारण्यविरचिता टीका

[अ. टी.] हेरम्ब संहर विभो तरसान्तरायवर्गं न भर्गतनयात्र तवोपचारः ।
यद्विघ्नमूलखननाय विषाणहस्तः-सन्तर्कितोऽसि भगवन् स्वयमुद्यतस्त्वम् ॥

---

१ नर्मेति ख. २ च भवत इति च. ३ मन्येति नास्ति छ. ४ यस्येति छ. ५ कारत्वेनेति छ. ६ अल्पसर इति नास्ति छ. ७ तत्तीरे समीपे इति छ. ८ एकं पदमिति छ. ९, १० छलेनेति घ.

श्रद्धयानुभवाचार्यपरिचर्याविधायिना ।
प्रमाणमञ्जरीव्याख्या मुनिना सम्प्रणीयते ॥ २ ॥
स श्रीमानद्वयारण्यस्सुखबोधाय धीमताम् ।
प्रमाणमञ्जरीटीकां सन्ददर्भ नवामिमाम् ॥ ३ ॥

विघारम्भे मङ्गलमाचरणीयम्, "स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः", इत्यादिवैदिकमङ्गलाच्छिष्टैरनुष्ठितत्वाच्च नास्ति तेषाममङ्गलमिति देवतानुस्मृतिलक्षणक्रियाजनितधर्मस्य "सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः" इति शास्त्रसिद्धारम्भदोषनिवर्तकत्वात् "धर्मेण पापमपनुदति" इति श्रुतेश्च । ततस्सप्रमाणकत्वात्सप्रयोजनत्वाच्च ग्रन्थारम्भे, मङ्गलमाचरति—कासारेति । द्वैमातुर इत्यत्र मातृशब्दगतस्य ऋ इति स्वरस्य अणि प्रत्यये उरि (उदि ?)त्यादेशविधानात् द्वयोर्मात्रोरपत्यं गजाननस्तद्द्वैमातुर इति पदं निष्पद्यते, ऋ उरणीत्यनुस्मरणात् । द्वैमातुरो गणेशः भवतः श्रोतॄन् चिरतरं कालं पायात् रक्षतात्, "स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्" इति श्रोतॄन् प्रत्याशीःश्रुतेश्च । स प्रसिद्धो यस्माद्विघ्नेभ्यस्त्राणहेतुत्वेन देवतापि दृष्टाकारेणानुस्मृता कार्यकरीति द्योतयितुमाह—सञ्जातेति । सञ्जातमभिनवं संस्कृतं चन्दनादिना विमलं यद्वज्जोजलं तस्मिन् प्रतिबद्धम् अन्वारब्धं नर्म क्रीडा येन स तथा । जलक्रीडोचितव्यापारमाह—कासारेति । कासारः कानां जलानामासरणमागमनं अत्र, स तडागः कासार इत्युच्यते मानसादिसमाह्वयः । तस्य तीरसमीपस्थं सरसीरुहं कमलम् । तच्च शुभ्रं पाण्डुरं भ्रमरमध्यं मध्ये भ्रमरेणाक्रान्तम् आददानः आहरन् आकर्षन् शुण्डादण्डेन तेन भ्रमत्कम्पमानम् । एवमेकं ध्यानमुक्त्वोपमानच्छलेन ध्यानान्तरमाह—इन्दुबिम्बमिवेति । गगने कासारवर्त्येणाङ्कमण्डलवद्विराजमानमित्यर्थः । नभसि नाव्यासक्तः चन्द्रमण्डलं करेणाकर्षन् ध्येयो विघ्नराज इत्यर्थाच्छात्रेभ्यो ध्यानोपदेशोऽपि ग्रन्थप्रचारणे निर्विघ्नत्वाय ।

श्रीवामनभट्टविरचिता भावदीपिकाख्या व्याख्या

[वा. टी.] पुरन्दरदलनेत्रक्षनीराजनीकृतम् । वन्दे लम्बोदरोदारपदद्वन्द्वसरोरुहम् ॥ १ ॥
भट्टवामनसंज्ञेन तुलसीकृष्णसूनुना । प्रमाणमञ्जरीव्याख्या क्रियते भावदीपिका ॥ २ ॥

शिष्टाशिष्टाचारप्रमाणकं आरीप्सितग्रन्थस्याविघ्नपरिसमाप्तिप्रयोजनकं विशिष्टेष्टदेवतानुस्मृतिपूर्वकमाशीर्लक्षणं मङ्गलमाचरति—कासारेति । चन्दनादिसंस्कृतानाविलजलजातखेलो गणपतिः । सितमन्तर्भ्रमद्द्विरेफम् । अत एवैणाङ्कबिम्बमिव जलाशयतीरपुण्डरीकं गृह्णन् भवतश्चिरतरं पालयतु । अनेन दृष्टा चिन्तिता देवता कार्यकरीति इष्टप्रदत्वं सूचितम् ।

---

१ पद्यमिदं अ. झ. पुस्तकयोर्नास्ति. २ विनिवर्तकेति ज. ट. ३ चेति नास्ति ज. ट. ४ प्रमाणत्वादिति ज. ट. ५ इत्यत्रेति नास्ति ज. ट. ६ शब्दस्येति ज. ट. ७ द्वे मातरौ यस्य स द्विमातुर इति ज., द्वे मातरौ यस्य गजाननस्य तदपत्यत्वात्स द्वैमातुर इति ट. ८ अन्विति नास्ति ज. ट. ९ यावदिति ट. १० रक्षतादिति नास्ति ट. ११ कर्तृत्वेनेति ज. ट. १२ गङ्गादीनि ज. ट. १३ कासार इति नास्ति झ. १४ इनीनि नास्ति ज. ट. १५ आहरन्निति नास्ति ज. १६ तेनेति नास्ति झ. १७ कासारवर्णेति झ. ट. १८ मण्डलमिवेति ट. १९ संसक्तमित्येव झ.

अभिवन्द्य विधोरर्द्धधारिणश्च कणव्रतम् ।
प्रमाणमञ्जरी सर्वदेवेन क्रियते मया ॥ २ ॥

[प. टी.] बहुतरविघ्ननिवारणाय विद्याधिष्ठातारमीश्वरम् एतच्छास्त्रप्रणेतृकणादमुनिश्च नमन् अभिधेयं निर्दिशति—अभिवन्द्येति । प्रमाणं प्रकृतं शास्त्रम् । तत् पादपस्थानीयम् । तस्येयं मञ्जरी वल्लरी अभिनवपल्लवस्थानीयेति भावः ।

[अ. टी.] इदानीं विद्याधिपतिमीश्वरं प्रवर्तनीयविद्याख्यातृत्वाय कणादमुनिश्च तदीयशास्त्रसारोद्धाराच्चतुरप्रक्रियायां वाक्चेतसोरस्खलनार्थं प्रणमन् यदुद्दिश्य मङ्गलाचरणं कृतं तन्निर्दिशति—अभिवन्द्येति । विधुश्चन्द्रः । प्रमाणं तर्कशास्त्रम् । तच्च बुद्धिस्थं काणादम् । तस्य मञ्जरी वल्लरी [illegible] प्रक्रियेत्यर्थः । ननु किमत्र प्रतिपाद्यम्? [illegible], तत्रापि प्रमाणादिभावाभावपदार्थवर्णनं दृश्यते यतः । सत्यम्; तथापि षडेव भावाः, द्वे एव प्रमाणे इत्यादि महत्तरावान्तरभेदेनापुनरर्थता । अन्यथैकस्मिंस्तन्त्रे स्वमतशुद्ध्यर्थं सर्वतन्त्रार्थोपन्यासादन्यानारम्भप्रसङ्गात्, तदनारम्भे च सर्वं स्वतन्त्रमेवेति पूर्वपक्षसिद्धान्तभेदेनार्द्धं ग्राह्यमर्द्धमग्राह्यमित्यर्द्धजरतीयन्यायेनाप्रामाण्यप्रसङ्गादेकमपि तन्त्रं नारभ्येत । अतो वैशेषिकतन्त्रारम्भसिद्धौ तत्प्रकरणारम्भोऽपि निश्चलः ।

[शा. टी.] 'ईश्वराज्ज्ञानमिच्छेत्' इत्यादिस्मृतेरीश्वरस्यापि विद्याप्राप्तावतिशयगत्वावगमात्तं नमन् कणादशास्त्रप्रकरणं चिकीर्षुराचार्यस्तच्छास्त्रप्रणेतारं कणादनामानञ्च मुनिं नमन् चिकीर्षितं प्रतिजानाति—अभिवन्द्येति । विधुश्चन्द्रः । अर्द्धशब्दश्चात्र कलामात्रवाची.........त्युक्त्या क्रियमाणस्य निर्दोषत्वं सूचितम् । प्रमाणमञ्जरीति ग्रन्थनाम । निश्चीयन्तेऽर्था अनेनेति प्रमाणमिति प्रमाणशब्दप्रतिपाद्यस्य बुद्धिस्थकणादशास्त्रस्य कल्पपादपत्वेनाभिमतस्याभिनवप्रवालशाखास्थानीयेयं कृतिरिति ग्रन्थकृदाशयः । अनेन श्रोतृप्रवृत्त्यङ्गभूतमेतद्ग्रन्थावान्तरविषयादिकमपि सूचितम्—स्वपदार्थतज्ज्ञानतत्कामादि ।

(पदार्थलक्षणं तद्विभागश्च)

अभिधेयः पदार्थः।[13] स भावाभावभेदेन[14] द्विधा[15] पूर्वो[16] विधिविषयः । स षोढा, द्रव्यादिभेदेन ।

---

१ अर्धं इति मु. २ शर्वदेव० इति. मु. पा. ३ निवर्तनायेति च. ४ वल्लरीति नास्ति छ. ५ यदर्थमिति ज. ट. ६ कृतमिति नास्ति ज. ट. ७ पदार्थौ इति नास्ति झ. ८ यत इति नास्ति झ. ९ भेदादगतार्थतेति ज. ट. १० ग्राह्यमिति झ. ११ नारभेत इति झ. १२ निश्चित इति ट. १३ रेभाव इति ख. १४ भेदादिति क. ख. १५ द्वेधा इति ख. १६ पूर्वे इति ख.

[व. टी.] विशेषलक्षणानि कर्तुं पदार्थसामान्यलक्षणमाह—**अभिधेय इति**। अभिधा शब्दः, तच्छक्तिर्वा, तद्विषयत्वं पदार्थलक्षणम्। तेन नाभिधापदवैयर्थ्यम्। यद्वा नेदं लक्षणम्, व्याबृत्त्यभावात्, किन्तु पदार्थपदप्रवृत्तिनिमित्तम्। प्रवृत्तिनिमित्ते च वैयर्थ्यं न दोष इति भावः। उद्देशस्तु पदार्थपदेन द्योतितो हृदिस्थो बोध्य इति। विशेषविभागमाह—**सं इति**। **पूर्व इति**। भावरूपः। **स इति**। विधिविषय इत्यर्थः। तथा च भावत्वं भावत्वप्रकारकप्रमाविषयत्वं वा भावलक्षणं सूचितं भवति।

[अ. टी.] अत्र काणादोक्ताः पदार्थाः सामान्यविशेषरूपाभ्यां संक्षेपतो बालबुद्धिव्युत्पादनाय लक्षणप्रमाणारूढा निरूप्यन्ते। ततः पदार्थसामान्यलक्षणं तावदाह—**अभिधेय इति**। अभिधाशब्दः तद्विषयोऽभिधेय इति लक्षणम्। पदार्थ इति लक्ष्यनिर्देशः। पर्यायत्वेऽपि लक्ष्यलक्षणभावो दृष्टः। प्रमाणमनुमितिः, खं छिद्रमित्यादौ, ततोऽभिधेयपदार्थयोः पर्यायत्वात् न लक्ष्यलक्षणभाव इति नाशङ्कनीयम्। नाम्ना निर्देश उद्देशः। स च पदार्थनामनिर्देशेनात्र लक्षणे सङ्गृहीतः। लक्षणञ्चासाधारणरूपनिर्देशः। ननु वन्ध्यापुत्र इत्यादिशब्दाभिधेयत्वेऽपि पदार्थत्वं नास्तीत्यतिव्याप्तिर्वन्ध्यापुत्रादौ। पदार्थो हि भावाभावात्मकः प्रमाणसिद्ध आश्रीयते। न च वन्ध्यापुत्रादौ प्रमाणमस्ति। मैवम्; प्रमाणशास्त्रे प्रमेयत्वसहचरितस्यैवाभिधेयत्वस्य विवक्षितत्वात्। एतज्ज्ञापनायैव प्रमाणमञ्जरीति संज्ञोक्ता। तस्य च वन्ध्यापुत्रादावभावान्नातिव्याप्तिरित्यादिन्यायप्रमाणाभ्यामेवंस्थापनं परीक्षा। प्रकारभेदकथनं विभाग इति चतुर्धा निरूपणम्। ततो विभागमाह—**स भावाभावभेदादिति**। सशब्दः पदार्थपरामर्शी, प्रमाणेनानुभवनादभावोऽपि भावशब्देनाभिधातुं शक्यते। ततः कथमयं विभाग इत्याशङ्कानिरासार्थं भावलक्षणमाह—**पूर्व इति**। अनञ्पूर्वकशब्दो विधिः। यथा द्रव्यं गुण इत्यादि। नास्तीति, शब्दमात्रम्, येनाभावोऽस्तीत्यभावस्यापि विधिविषयत्वादतिव्याप्तिराशङ्क्येत। अभावस्य प्रतियोगिभावनिरूपणापेक्षत्वात्तमुपेक्ष्य भावस्य विभागमाह—**स षोढेति**। 'द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाः षट् पदार्थाः' इत्याचार्यवचनेऽपि पदार्थशब्दस्तदेकदेशभूतभावविषयः। तथा च लीलावतीकारः—

भावत्वाधिष्ठितास्सर्वाः प्रत्येकं व्यक्तयो मताः।
द्रव्यादिषट्कविच्छेदमेलकेन विवर्जिताः॥

इति। ततो न सूत्रादिविरुद्धोऽयं भावविभागः।

---

१ विषयत्वमेवात्र लक्षणम्। अत्रैवकारः प्रमापदव्यवच्छेदक इत्यधिकं च. २ नाभिधेयवैयर्थ्यमिति छ. ३ प्रवृत्तिनिमित्तमिति नास्ति छ. ४ स इतीति नास्ति छ. ५ मासमानवैशिष्ट्यप्रतियोगित्वं प्रकारत्वम् विशेषणविशेष्याभ्यां युक्तं वैशिष्ट्यमिति 'च' पुस्तकटिप्पणी. ६ तत्रेति झ. ७ एतदिति ज. ट. ८ आस्थीयत इति ज. ट. ९ द्योतनायैवेति ज. ट. १० व्यवस्थेति ज. ट. ११ द्रव्यगुण इति झ. १२ अतिव्याप्तिमाशङ्केत इति ज. १३ भावविभागमिति ट. १४ कार इति नास्ति ज. ट.

[वा. टी.] अत्र काणादोक्तं पदार्थतत्त्वं प्रतिपिपादयिषुराचार्यो विना सामान्यलक्षणं विशेपलक्षणाप्रवृत्तेर्लक्ष्यनिर्देशेनैवोद्देशं मन्वानः पदार्थसामान्यलक्षणं तावदाह—**अभिधेय**-इति। अभिधीयते प्रतिपाद्यतेऽर्थोऽनेनेति अभिधा वाक्यात्मकः पदात्मकशब्दो वा। तेन प्रतिपाद्यः, तस्य विषयोऽभिधेय इति। ननु खपुष्पमिति शब्देन खपुष्पमभिधीयते। न च तत्र पदार्थत्वम्। तेनातिव्याप्तिरुद्धृता। अयमर्थः—खपुष्पमिति वाक्येन खसंसृष्टं पुष्पं प्रतिपाद्यते। नच तत्प्रमाणगोचरो येन लक्ष्यकोटिनिविष्टं भवेत्। ननु मा भवतु प्रमाणगोचरः, न हि प्रमाणगोचरः पदार्थ इति लक्षणम्। *किन्तर्हि? अभिधेय इति (न च वाच्यम्?) पद्यते गम्यतेऽर्थोऽनेनेति पदं प्रमाणम्*, तस्यार्थो विषय इति पदार्थशब्दव्युत्पत्तेरेव प्रमाणगोचरत्वस्य पदार्थस्वरूपत्वेन वा पदार्थशब्दप्रवृत्तिनिमित्तेन वावश्यं वक्तव्यत्वात्। न चैतदस्ति; तथा च स्पष्टैवातिव्याप्तिरिति। उच्यते—विग्रहवाक्यं विना खपुष्पमिति समासवाक्यात्संसर्गाप्रतीतेर्विग्रहसहकारितद्बोधकं वाच्यम्, यतस्समासश्च विग्रहार्थे (प्रमाणम्), प्रमाणमन्तरेण च लतापुष्पस्य खसंसर्गाग्रहात् खे पुष्पमिति विग्रहायोगाच्च पुष्पं नास्तीत्यत्यन्ताभावबोधकविग्रहार्थे समासोऽङ्गीकर्तव्य-.........त्यर्थबोधकविग्रहवाक्यार्थे चन्द्राननंसमासवत्। तथा च खपुष्पमिति वाक्यस्य खे पुष्पात्यन्ताभाव इत्यर्थावधारणात्तस्य च पदार्थत्वान्नातिव्याप्तिः। ननु तर्हि खे पुष्पं नास्तीति निषेधानुपपत्तिरिति चेत्—न; गृहीतावयवार्थस्य पुंसः समासाद्राजपुरुषादिवत्सामान्यतो दृष्टेन प्रसक्तसंसर्गप्रतीतिनिषेधार्थत्वादस्य निषेधवाक्यस्येति। यद्वा चन्द्राननवाक्यार्थकथनार्थं चन्द्र इवाननमिति विग्रहवाक्यवत् समस्तखपुष्पवाक्यार्थकथनार्थं खे पुष्पं नास्तीति विग्रहवाक्यमेतदिति न कश्चिद्दोषशङ्कावकाशः। नाप्यव्याप्तिः, यस्य कस्यापि पदार्थस्य शब्दगोचरत्वादेव। असम्भवस्तु असम्भावित एवेति सर्वं सुस्थम्। अत्र प्रयोगे कर्तव्ये भ्रमविषयो दृष्टान्तः, तस्य यस्मिंल्लौकिकपरीक्षिणां बुद्धिसाम्यं दृष्टान्त इति दृष्टं तल्लक्षणीयत्वात्। न च धर्मिहेतुदृष्टान्ताः प्रामाणिका इति प्रमाणविषयस्यैव दृष्टान्तत्वम्, तस्य सन्दिग्धे न्यायप्रवृत्तिरिति प्रायिकत्वात्, अङ्गीकृत्येदमिह लक्षणत्वेन व्युत्पादितम्। वस्तुतस्तु साधर्म्यमेव, इतरथोक्तरीत्या केवलान्वयिभङ्गप्रसङ्गो दुर्निवार इति। नञर्थानुल्लेखयोगिसापेक्षत्वादभावमुपेक्ष्य भावं विभजते—**स षोढेति**। विभागो नाम—उद्दिष्टस्येयत्तया कथनम्।

(द्रव्यलक्षणं तद्विभागश्च)

तत्र समवायिकारणं द्रव्यम्। तन्नवधा, पृथिव्यादिभेदेन।

[व. टी.] **तत्रेति**। कारणत्वं गुणादावतिप्रसक्तमिति तद्वारणाय **समवायीति**। जातिसमवायित्वं गुणादावपीति कारणत्वमुक्तम्। यद्यपि रूपं यत्किञ्चित्समवायि यत्किञ्चित्कारणञ्च, तथापि स्वसमवेतकारित्वमित्यर्थः। स्वसमवायिकारणत्वयोग्यतात्र विवक्षिता, तेन प्रथमे क्षणे घटादौ नातिव्याप्तिः।

---

१ खेति नास्ति छ. २ दृष्टेति ख.

[अ. टी.] द्रव्यादिभेदेन षड्विधो भावपदार्थ इति विभागं कुर्वतैव द्रव्यादेरुद्देशः कृतः। ततो यथोद्देशलक्षणमाह—तत्रेति। यद्यपि तत्रेत्यनुक्तावपि द्रव्यलक्षणं न दुष्यति, अव्याप्त्यभावात्। तथापीतरेषां द्रव्याश्रितत्वेन द्रव्यस्य प्राधान्यद्योतनार्थं तत्रेत्युक्तम्। यद्यपि प्रथमं द्रव्यनामग्रहणेन तस्य प्राधान्यं द्योतितम्, तथापि तन्नैकान्तिकम्, 'प्रमाणप्रमेय०' इत्यादिसूत्रे प्रमेयं प्रति गुणभूतस्य प्रमाणस्य प्रथमं ग्रहणात्। कार्यस्य समवायो भवन् यत्रैव भवति तत्समवायिकारणम्, तद्द्रव्यम्। एतेनोत्पन्नमात्रे द्रव्ये कार्यकारणयोर्नियतपूर्वोत्तरक्षणवर्तित्वात्कार्यसमवायाभावेनाव्याप्त्याशङ्का निरस्ता। न च गुणादेरपि संख्यागुणसमवायिकारणत्वादतिव्याप्तिः, उभयसम्प्रतिपत्त्यभावात्। न चाबाधिततद्व्यवहारेण सम्प्रतिपत्तिः, दूषणवादिनो वेदान्त्यादेरपि तत्प्रसङ्गेन द्वैतापातात्। अत्र च निमित्तासमवायिकारणगुणादिव्यवच्छेदार्थं समवायिपदम्। परकीयलक्षणे दूषणानुसन्धानेन स्वलक्षणे सम्प्रतिपत्तिं सम्पाद्यैव व्यवच्छेदक्रमो द्रष्टव्यः। यथा स्वतन्त्रं द्रव्यमिति द्रव्यलक्षणे स्वातन्त्र्यमनाश्रयत्वं चेत्कार्यद्रव्येऽव्याप्तिः। आश्रयोपलम्भनिरपेक्षोपलम्भश्चेद्गन्धादावतिव्याप्तिरिति दूषिते समवायिकारणं द्रव्यमिति लक्षणे सम्प्रतिपत्त्यापादनम्। एतेन गुणाश्रयो द्रव्यमित्यपि लक्षणं निर्दुष्टतया व्याख्यातम्।

[वा. टी.] समवायिकारणमित्यत्र स्वसमवेतकार्योत्पादकमिति विवक्षितम्। तेन समवायि च तत्कारणं च समवायिनः कारणं समवायिकारणमिति विकल्पाभ्यां यातिव्याप्तिस्सा परिहृता भवति।

*

(पृथिवीलक्षणं तद्विभागश्च)

तत्र गन्धवती पृथिवी। सा द्वेधा, पृथिव्यादिभेदेन।

[व. टी.] गन्धवतीति। यद्यपि प्रथमे क्षणे गन्धो नास्तीत्यव्याप्तिः, तथापि गन्धात्यन्ताभावविरोधिमत्त्वं विवक्षितम्। स च विरोधी गन्धतत्प्रागभावतत्प्रध्वंसरूपः। तदन्यतमत्वं च न गन्धात्यन्ताभाव इति नातिव्याप्तिः। यद्वा गन्धात्यन्ताभावानधिकरणमेव लक्षणम्। न च गन्धात्यन्ताभावेऽतिव्याप्तिः, गन्धात्यन्ताभावे गन्धो नास्तीति प्रतीतिबलेन गन्धात्यन्ताभावे गन्धात्यन्ताभावस्य सत्त्वात्। अन्यथा तत्र गन्धतत्प्रागभावादिर्वर्तेत। यत्र यदत्यन्ताभावो नास्ति तत्र तद्विरोध्यस्ति इत्यतिव्याप्तिः। स च गन्धात्यन्ताभावे गन्धात्यन्ताभावोऽधिकरणस्वरूपो वा, वैधर्म्यं वा अभावान्तरमेव वा इत्यन्यदेतदिति दिक्। यद्यपि सुरभ्यसुरभिकपालारब्धे घटे गन्धतत्प्रागभावतत्प्रध्वंसा न सन्ति, तथापि गन्धयोग्यता विवक्षिता, सा च पृथिवीत्वमेव।

१ यथो इति ट. २ तन्नैकमिति झ. ३ प्रमाणस्येति नास्ति झ. ४ तत उत्पन्नेति ज. ट. ५ द्वैतवादादिति ज. ट. ६ गुणेनेति झ. ७ प्रतिपाद्यैवेति ट, सम्भाव्यैवेति ज. ८ द्रव्येति नास्ति ज. ट. ९ द्रव्येष्विति ज. ट. १०-दूषयतीति ट. ११ कारणलक्षण इति १२ अपीति नास्ति ज. ट. १३ स्वरूप इति घ.

[अ. टी.] पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनोभेदेन द्रव्यपदार्थो नवप्रकार इति विभागोद्देशोक्तत्वात्क्रमेण लक्षणमाह–तत्र गन्धवतीति। सजातीयविजातीयव्यवच्छेदो लक्षणप्रयोजनमिति केचित्। तत्र पृथिव्यादिलक्षणे द्रव्यत्वेन सजातीयव्यवच्छेदसम्भवेऽपि जात्यादेर्विलक्षणजात्यभावेन विजातीयत्वाभावाद्व्यवच्छेदाभावप्रसङ्गः स्यात्।[1] तस्मादेतत्परित्यागेन व्यवहारसिद्धिर्वा[2] लक्षणप्रयोजनमित्युदयनाचार्याः। अत्र च[3] प्रयोजनान्तरानुक्तेर्वृद्धोक्तं[4] फलमेव ग्राह्यम्। तथा च लक्ष्यादितरमात्रव्यवच्छेदो लक्षणप्रयोजनं भवेत्। एवं च[5] गन्धवत्त्वस्य पृथिवीतरमात्रावृत्तेः[6] पृथिवीलक्षणं युक्तम्। विमतं पृथिवीति व्यवहर्तव्यम्, गन्धवत्त्वात्, व्यतिरेकेण जलादिवदिति व्यवहारसिद्धिः प्रयोजनम्।

[वा. टी.] गन्धवतीत्यत्र गन्धमात्रं विवक्षितम्, न सुरभ्यादि। तेन नाव्याप्तिरिति द्रष्टव्यम्। ननु पृथिव्या अनित्यत्वेऽवयवनाशेनैव नाशेऽवयवानवस्थानादवधेरभावात्, ततश्च मेरुसर्षपयोस्तुल्यपरिमाणत्वापत्तिः। तेन विनैव नाशेऽवयवध्वंसेऽपि कार्यकारणत्वं स्यात्। नित्यत्वेऽनुपलब्धिबाधः, प्रमाणभावश्चेत्यत आह–सा द्वेधा इति।

*

(परमाणुलक्षणम्)

पूर्वा परमाणुरूपा। क्रियावान्नित्यः परमाणुरिति सामान्यलक्षणम्।

[व. टी.] नित्य इति। आकाशादावतिव्याप्तिवारणाय क्रियावानिति। घटादावतिव्याप्तिवारणाय नित्य इति। मनोऽपि परमाणुरिति नातिव्याप्तिः। यदि मनोव्यावृत्तपरमाणोर्लक्षणम्, तदा द्रव्यारम्भप्रयोजिका क्रिया विवक्षितेति नातिव्याप्तिः।

[अ. टी.] परमाणोः किं लक्षणमित्यत आह–क्रियावानिति। घटादिव्यवच्छेदार्थं नित्यपदम्। आत्मादिव्यवच्छेदार्थं क्रियावानिति। ननु मनस्यतिव्यापकमेतत्। न च मनोऽपि परमाणुरेव, मूर्तत्वे सति सदा स्पर्शशून्यं मन इति वक्ष्यमाणमनोलक्षणे स्पर्शशून्यपदेन परमाणुव्यावर्तनात्। पाकावस्थायां क्षणं स्पर्शशून्यपार्थिवाणुव्यवच्छेदाय सदेति विशेषणाच्च। न च लक्ष्यव्यवच्छेदो युक्त इति। उच्यते–क्रियावानिति द्रव्यारम्भकत्वस्य क्रियावत्त्वप्रयुक्तस्य विवक्षितत्वान्मनसि च तदभावान्नातिव्याप्तिः।

[वा. टी.] परमाणुरूपेत्यनेन महत्त्वाभावादनुपलब्धिबाधस्तदवधिनानवस्थादोषश्च परिहृतो भवति। प्रमाणं चाग्रत एव वक्ष्यति। आकाशनिवारणार्थं क्रियेति। त्र्यणुकनिवारणार्थं नित्य इति। नन्विदं पृथिवीपरमाणुलक्षणम्? परमाणुसामान्यलक्षणं वा? आद्येऽतिव्यापकम्, द्वितीये प्रमाणाभावः।

---

१ भावप्रसङ्ग इति झ. २ सिद्धिरेवेति ट. ३ चेति नास्ति ज. ४ वृद्धोक्तमेव युक्तमिति ज. ट. ५ चेति नास्ति ज. ६ वृत्ताविति झ. ७ फलमिति झ. ८ प्रयोजनमिति नास्ति. ९ लक्षणमत इति ज. ट. १० व्युदासार्थमिति ज. ट. ११ सर्वदेति ज. ट. झ. १२ अस्पर्शवदिति ट. १३ क्षणमिति ट. १४ अणुरेति झ. १५ सर्वदेति ट. १६ आरम्भकत्वप्रयुक्तस्य क्रियावत्त्वस्येति झ.

[अ. टी.] द्रव्यादिभेदेन षड्विधो भावपदार्थ इति विभागं कुर्वतैव द्रव्यादेरुद्देशः कृतः। ततो यथोद्देशलक्षणमाह—तत्रेति। यद्यपि तत्रेत्यनुक्तावपि द्रव्यलक्षणं न दुष्यति, अव्याप्त्यभावात्। तथापीतरेषां द्रव्याश्रितत्वेन द्रव्यस्य प्राधान्यद्योतनार्थं तत्रेत्युक्तम्। यद्यपि प्रथमं द्रव्यनामग्रहणेन तस्य प्राधान्यं द्योतितम्, तथापि तन्नैकान्तिकम्, 'प्रमाणप्रमेय०' इत्यादिसूत्रे प्रमेयं प्रति गुणभूतस्य प्रमाणस्य प्रथमं ग्रहणात्। कार्यस्य समवायो भवन् यत्रैव भवति तत्समवायिकारणम्, तद्द्रव्यम्। एतेनोत्पन्नमात्रे द्रव्ये कार्यकारणयोर्नियतपूर्वोत्तरक्षणवर्तित्वात्कार्यसमवायाभावेनाव्याप्त्याशङ्का निरस्ता। न च गुणादेरपि संख्यागुणसमवायिकारणत्वादतिव्याप्तिः, उभयसम्प्रतिपत्त्यभावात्। न चाबाधिततद्व्यवहारेण सम्प्रतिपत्तिः, दूषणवादिनो वेदान्त्यादेरपि तत्प्रसङ्गेन द्वैतापातात्। अत्र च निमित्तासमवायिकारणगुणादिव्यवच्छेदार्थं समवायिपदम्। परकीयलक्षणे दूषणानुसन्धानेन स्वलक्षणे सम्प्रतिपत्तिं सम्पाद्यैव व्यवच्छेदक्रमो द्रष्टव्यः। यथा स्वतन्त्रं द्रव्यमिति द्रव्यलक्षणे स्वातन्त्र्यमनाश्रयत्वं चेत्कार्यद्रव्येऽव्याप्तिः। आश्रयोपलम्भनिरपेक्षोपलम्भश्चेद्गन्धादावतिव्याप्तिरिति दूषिते समवायिकारणं द्रव्यमिति लक्षणे सम्प्रतिपत्त्यापादनम्। एतेन गुणाश्रयो द्रव्यमित्यपि लक्षणं निर्दुष्टतया व्याख्यातम्।

[घा. टी.] समवायिकारणमित्यत्र स्वसमवेतकार्योत्पादकमिति विवक्षितम्। तेन समवायि च तत्कारणं च समवायिनः कारणं समवायिकारणमिति विकल्पाभ्यां यातिव्याप्तिस्सा परिहृता भवति।

*

(पृथिवीलक्षणं तद्विभागश्च)

तत्र गन्धवती पृथिवी। सा द्वेधा, पृथिव्यादिभेदेन।

[ब. टी.] गन्धवतीति। यद्यपि प्रथमे क्षणे गन्धो नास्तीत्यव्याप्तिः, तथापि गन्धात्यन्ताभावविरोधिमत्त्वं विवक्षितम्। स च विरोधी गन्धतत्प्रागभावतत्प्रध्वंसरूपः। तदन्यतमत्वं च न गन्धात्यन्ताभाव इति नातिव्याप्तिः। यद्वा गन्धात्यन्ताभावानधिकरणमेव लक्षणम्। न च गन्धात्यन्ताभावेऽतिव्याप्तिः, गन्धात्यन्ताभावे गन्धो नास्तीति प्रतीतिबलेन गन्धात्यन्ताभावे गन्धात्यन्ताभावस्य सत्त्वात्। अन्यथा तत्र गन्धतत्प्रागभावादिवत्त्वेन। यत्र यदत्यन्ताभावो नास्ति तत्र तद्विरोध्यस्ति इत्यतिव्याप्तिः। स च गन्धात्यन्ताभावे गन्धात्यन्ताभावोऽधिकरणस्वरूपो वा, वैधर्म्यं वा अभावान्तरमेव वा इत्यन्यदेतदिति दिक्। यद्यपि सुरभ्यसुरभिकपालारब्धे घटे गन्धतत्प्रागभावतत्प्रध्वंसा न सन्ति, तथापि गन्धयोग्यता विवक्षिता, सा च पृथिवीत्वमेव।

---

१ अथो इति ट. २ तन्नैकमिति ह. ३ प्रमाणस्येति नास्ति ह. ४ तत उत्पन्नेति ज. ट. ५ द्वैतवादादिति ज. ट. ६ गुणेनेति ह. ७ प्रतिपाद्यैवेति ट, सम्भाव्यैवेति ज. ८ द्रव्येति नास्ति ज. ट. ९ द्रव्येप्यिति ज. ट. १० दूषयनीति ट. ११ कारणलक्षण इति १२ अपीति नास्ति ज. ट. १३ स्वरूप इति च.

[अ. टी.] पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनोभेदेन द्रव्यपदार्थो नवप्रकार इति विभागोद्देशोक्तत्वात्क्रमेण लक्षणमाह—तत्र गन्धवतीति

प्रयोजनमिति केचित् । तत्र पृथिव्यादिलक्षणे

जात्यादेर्विलक्षणजात्यभावेन विजातीयत्वाभावाद्व्यवच्छेदाभावप्रसङ्गः स्यात् । तस्मादेतत्परित्यागेन व्यवहारसिद्धिर्वा लक्षणप्रयोजनमित्युदयनाचार्याः । अत्र च प्रयोजनान्तरानुक्तेर्वृद्धोक्तं फलमेव ग्राह्यम् । तथा च लक्ष्यादितरमात्रव्यवच्छेदो लक्षणप्रयोजनं भवेत् । एवं च गन्धवत्त्वस्य पृथिवीतरमात्रावृत्तेः पृथिवीलक्षणं युक्तम् । विमतं पृथिवीति व्यवहर्तव्यम्, गन्धवत्त्वात्, व्यतिरेकेण जलादिवदिति व्यवहारसिद्धिः प्रयोजनम् ।

[बा. टी.] गन्धवतीत्यत्र गन्धमात्रं विवक्षितम्, न सुरभ्यादि । तेन नाव्याप्तिरिति द्रष्टव्यम् । ननु पृथिव्या अनित्यत्वेऽवयवनाशेनैव नाशेऽवयवानवस्थानादवधेरभावात्, ततश्च मेरुसर्षपयोस्तुल्यपरिमाणत्वापत्तिः । तेन विनैव नाशेऽवयवध्वंसेऽपि कार्यकारणत्वं स्यात् । नित्यत्वेऽनुपलब्धिबाधः, प्रमाणभावश्चेत्यत आह—सा द्वेधा इति ।

(परमाणुलक्षणम्)

पूर्वा परमाणुरूपा । क्रियावान्नित्यः परमाणुरिति सामान्यलक्षणम् ।

[व. टी.] नित्य इति । आकाशादावतिव्याप्तिवारणाय क्रियावानिति । घटादावतिव्याप्तिवारणाय नित्य इति । मनोऽपि परमाणुरिति नातिव्याप्तिः । यदि मनोव्यावृत्तपरमाणोर्लक्षणम्, तदा द्रव्यारम्भप्रयोजिका क्रिया विवक्षितेति नातिव्याप्तिः ।

[अ. टी.] परमाणोः किं लक्षणमित्यत आह—क्रियावानिति । घटादिव्यवच्छेदार्थं नित्यपदम् । आत्मादिव्यवच्छेदार्थं क्रियावानिति । ननु मनस्यतिव्यापकमेतत् । न च मनोऽपि परमाणुरेव, मूर्तत्वे सति सदा स्पर्शशून्यं मन इति वक्ष्यमाणमनोलक्षणे स्पर्शशून्यपदेन परमाणुव्यावर्तनात् । पाकावस्थायां क्षणं स्पर्शशून्यपार्थिवाणुव्यवच्छेदाय सदेति विशेषणाच्च । न च लक्ष्यव्यवच्छेदो युक्त इति । उच्यते—क्रियावानिति द्रव्यारम्भकत्वस्य क्रियावत्त्वप्रयुक्तस्य विवक्षितत्वान्मनसि च तदभावान्नातिव्याप्तिः ।

[बा. टी.] परमाणुरूपेत्यनेन महत्त्वाभावादनुपलब्धिबाधस्तदवधिनानवस्थादोषश्च परिहृतो भवति । प्रमाणं चाग्रत एव वक्ष्यति । आकाशनिवारणार्थं क्रियेति । घणुकनिवारणार्थं नित्य इति । नन्विदं पृथिवीपरमाणुलक्षणम्? परमाणुसामान्यलक्षणं वा? आद्येऽतिव्यापकम्, द्वितीये प्रमाणाभावः ।

---

१ भावप्रसङ्ग इति झ. २ सिद्धिरेवेति ट. ३ चेति नास्ति ञ. ४ वृद्धोक्तमेव युक्तमिति ज. ट. ५ चेति नास्ति ज. ६ वृत्त्याविति झ. ७ फलमिति झ. ८ प्रयोजनमिति नास्ति. ९ लक्षणमत इति ज. ट. १० व्युदासार्थमिति ज. ट. ११ सर्वदेति ज. ट. झ. १२ अस्पर्शवदिति ट. १३ क्षणमिति ट. १४ अणुकेति झ. १५ सर्वदेति ट. १६ आरम्भकत्वप्रयुक्तस्य क्रियावत्त्वस्येति झ.

अत आह–**इतीति** । न च प्रयोजनाभावः, (तत्रद्विशेषपरप्रक्षेपेक्ष्य ? तत्तद्विशेषपदप्रक्षेपस्य) तत्तद्विशेषमपेक्ष्य तत्तत्परमाण्वादिलक्षणबोधस्य प्रयोजनस्य विवक्ष्यमाणत्वादिति ।

*

(पृथिवीपरमाणुलक्षणम्)

परमाणुर्गन्धवान् पार्थिवः । उत्तरा द्वेधा–नित्यसमवेता, अन्यथा चेति ।

[व. टी.] पृथिवीपरमाणुलक्षणमाह–**गन्धवानिति** । जलादिपरमाण्वादावतिव्याप्तिवारणाय **गन्धवानि**त्युक्तम् । घटादावतिव्याप्तिवारणाय **परमाणुरिति** । त्र्यणुकेऽतिव्याप्तिवारणाय **परमेति** । त्र्यणुकमपि यत्किञ्चिदपेक्षया परमं भवति, इत्यतिव्याप्तिवारणायाणुत्वमुक्तम् । **उत्तरेति** । अनित्येत्यर्थः । **अन्यथेति** । अनित्यसमवेतेत्यर्थः, न तु नित्यासमवेतेति तदर्थः । अन्यथा अनित्यपृथिवीविभागे परमाणोरपि सङ्ग्रहापत्तिः ।

[अ. टी.] परमाणुत्वे सति गन्धवान् यः, स पार्थिवः परमाणुरिति विशेषलक्षणमाह–**परमाणुरिति** । पार्थिवद्व्यणुकादिव्यवच्छेदार्थं **परमाणुपदम्** । सलिलादिपरमाणुव्यवच्छेदार्थं **गन्धवानिति** । **उत्तरा** अनित्या पृथिवी । **अन्यथा** अनित्यसमवेतेत्यर्थः ।

[वा. टी.] घटातिव्याप्तिवारणाय **परमाणुरिति** । तेजोऽणुनिवारणाय **गन्धवानिति** ।

*

(द्व्यणुकलक्षणम्)

पूर्वा द्व्यणुकम् । स्पर्शवन्नित्यसमवेतं द्व्यणुकमिति सामान्यलक्षणम् ।

[व. टी.] **पूर्वा** नित्यसमवेता । **क्रियावदिति** । शब्दादावतिव्याप्तिवारणाय **क्रियावदिति** । घटादौ तद्दोषभङ्गाय **नित्यसमवेतमिति** । नित्यकालादिसम्बद्धं घटादि भवत्येवेति पुनरप्यतिव्याप्तिं भञ्जयितुं **नित्यसमवेतमिति** निजगदे । न च निष्क्रियनष्टद्व्यणुकेऽव्याप्तिः, क्रियावन्नित्यसमवेतवृत्तिद्रव्यविभाजकोपाधिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात् । न च क्रियावदिति व्यर्थम्, तस्यादेयत्वात् । न च घटादावतिव्याप्तिः, परमाणुसमवेतद्रव्यमात्रस्य विवक्षितत्वात् ।

[अ. टी.] **आद्या** नित्यसमवेता । द्व्यणुकमित्यत्राणुकशब्दो न द्व्यणुकवाची, द्वाभ्यामणुकाभ्यामारब्धमिति व्युत्पत्त्या यथा त्र्यणुकमित्यत्र येन त्र्यणुकवद्द्व्यणुकमनित्यसमवेतमाशङ्क्येत । न च त्र्यणुकं परमाणुत्रयारब्धमिच्छन्ति काणादाः । तथा सति साक्षात् त्र्यणुकारम्भसम्भवेन द्व्यणुकोपक्रमारम्भभङ्गप्रसङ्गात् । न च त्र्यणुकवद् द्व्यणुकं द्व्यणुकारब्धं सम्भवति । अतोऽयमणुशब्दः परमाणुवाचीति परमाणुद्वयारब्धद्व्यणुकस्य नित्यसमवेतत्वं युक्तम् । नित्यसमवे-

१ परमाणुरित्यधिकं क. ख. २ अणुके इति छ. ३ अणुकमपीति छ. ४ अन्यथेति नास्ति च. ५ पार्थिवपरमेति झ. ६ व्यवच्छेदायेति ज. ट. ७ व्युदासायेति ज. ट. ८ सम्बद्धो घटादिरिति घ. ९ द्रव्यत्वस्येति छ. १० अणुशब्द इति ज. ट. ११ अणुभ्यामिति ज. ट. १२ द्व्यणुकमिति नास्ति ट. १३ नित्येत्यारभ्य युक्तमित्यन्तं नास्ति झ.

तत्सामान्यादेर्व्युदासाय स्पर्शवदित्युक्तम्। स्पर्शवत्परमाणुव्युदासाय समवेतपदम्। स्पर्शत्वे सत्यनित्यसमवेतत्र्यणुकनिरासार्थं नित्यपदम्।

[वा. टी.] स्पर्शवदिति। घटेऽतिव्याप्तिवारणाय नित्येति। स्पर्शनिवारणाय स्पर्शवदिति। परमाणुनिवारणाय समवेतमिति। घटतेजोऽणुकनिवारणाय पदद्वयम्।

*

(पार्थिवद्व्यणुकलक्षणम्)

गन्धवद्द्व्यणुकं पार्थिवद्व्यणुकम्। पृथिवीत्वं नित्यसमवेतवृत्ति, घटपटवृत्तिजातित्वात् सत्तावदिति परमाणुद्व्यणुकयोस्सिद्धिः।

[व. टी.] यत्तु निष्क्रियद्व्यणुकमेव न सम्भवति, अन्यथा तेन द्व्यणुकेन समं गगनादेस्संयोगाभावापत्त्या सर्वमूर्तसंयोगित्वलक्षणविभुत्वानापत्तेरिति, तन्न; संयोगजसंयोगेन विभुत्वोपपत्तेः।

गन्धवदिति। जलादिद्व्यणुकेऽतिव्याप्तिवारणाय गन्धवदिति। घटादावतिव्याप्तिभङ्गाय द्व्यणुकमिति। परमाणावतिव्याप्तिवारणाय द्वीति। न च सुरभ्यसुरभिपरमाण्वादावव्याप्तिः, गन्धयोग्यताया विवक्षितत्वात्। परमाणुद्व्यणुकयोः प्रमाणमाह—पृथिवीत्वमिति। वृत्तिमदेतावदुच्यमानेऽर्थान्तरम्। समवेतवृत्तीत्युच्यमानेऽपि तथा। तदर्थमुक्तम्—नित्येति। नित्यकालादिसम्बद्धे घटादौ पृथिवीत्वं वर्तत एवेत्यर्थः। तद्वारणाय समवेतेति। नित्यसमवेतवृत्तीत्यर्थः। तेन परमाणुद्व्यणुकवृत्तित्वसिद्धिः। यद्वा यन्नित्यं तत्पक्षधर्मताबलेन पृथिवीत्वाधिकरणमेव सिध्यतीति भावः। नित्यमिति वक्तव्येऽर्थान्तरम्। नित्यसमवेतम्, एतावदिति वक्तव्ये परमाणुमात्रस्य सिद्धिः, तदर्थं विशिष्टमुक्तम्। घटपटपदे घटत्वपटत्वयोर्व्यभिचारवारणाय। घटपटान्यतरत्वे व्यभिचारवारणाय जातित्वादिति। सत्ता नित्यसमवेते शब्दादौ वर्तत इति दृष्टान्तसिद्धिः। न च द्रव्यत्वे व्यभिचारः, तस्य पक्षसमत्वात्।

[अ. टी.] ननु प्रमाणमन्तरेण कथं परमाण्वादिसिद्धिः? लक्षणमात्रेण वस्तुसिद्धौ केनचिल्लक्षणेन वन्ध्यापुत्रादेरपि सिद्धिस्स्यात्। अथ लक्षणं केवलव्यतिरेकी हेतुः। स च वन्ध्यापुत्रादौ न, धर्म्यादिप्रमित्यभावात्, तर्हि धर्म्यादिप्रमितौ लक्षणप्रवृत्तिरिति तत्र प्रमाणं वाच्यमित्याह—पृथिवीत्वमिति। पृथिवीत्वस्यानित्यतन्त्वादिसमवेतपटादिवृत्तित्वेन

१ व्यवच्छेदायेति ज. ट. २ युक्तमिति ट. ३ त्र्यणुकादीति ज. ट. ४ इदं पदं नास्ति ख. पुस्तके. ५ वृत्तीति नास्ति क. ख. पुस्तकयोः. ६ द्वीति नास्ति ग. पुस्तके. ७ संयोगत्वापत्त्येति छ. ८ परमाण्वारब्धद्व्यणुक इति च. ९ पदमिदं नास्ति च. पुस्तके. १० एतावन्नीति छ. ११ भङ्गायेति च. १२ घटत्वे व्यभिचारवारणाय पटेति। पटत्वे व्यभिचारवारणाय घटेति। घटपटद्वित्वे व्यभिचारवारणाय वृत्तीति इति छ. १३ नित्याकाशेति घ. १४ व्यभिचारस्यैति छ. १५ स चेति नास्ति ज. ट. १६ लक्षणे इति ग. १७ अत आहेति ज. ट.

सिद्धसाधनताव्युदासार्थं नित्येत्युक्तम् । पृथिवीत्वं नित्यसमवेतमित्युक्ते यद्यपि नित्यपृथिवीसिद्धौ परमाणुसिद्धिस्स्यात्, तथापि न द्व्यणुकसिद्धिरिति तस्य सिध्यर्थं वृत्तिपदम् । जातित्वादित्युक्ते मनस्त्वादौ व्यभिचारस्स्यादत उक्तम्–**घटपटेति** । घटजातित्वादित्युक्ते घटत्वे, एवं पटजातित्वादित्युक्ते पटत्वे व्यभिचारस्स्यादत उक्तम्–**घटपटजातित्वादिति** । सत्तावन्नित्ये नित्यसमवेते च पृथिवीत्वस्य वृत्तौ तदुभयं सिध्येत्, परमाणुद्व्यणुकतयैव सिध्यति । पृथिव्या निरतिशयाणुत्वेनैव निरवयवद्रव्यतयारमवन्नित्यत्वं, द्व्यणुकस्य च नित्यसमवेतत्वं, परमाणोश्च क्रियावत्वं, स्वसमवेतद्रव्यारम्भकत्वात् । ततो यथोक्तद्व्यणुकपरमाण्वोः सिद्धिः ।

[वा. टी.] **पृथिवीत्वमिति** । तन्तुसमवेतपटवृत्तित्वेन सिद्धसाधनतानिवारणाय **नित्येति** । द्व्यणुकसिध्यै **समवेतेति** । घटत्वपटत्वनिवृत्तये **घटपटेति** । असिद्धिनिवारणाय **जातीति** । दृष्टान्ते च नित्याकाशसमवेतशब्दवृत्तित्वेन साध्यसिद्धिः । पक्षे च तदनुपपत्त्याभिमतसाध्यसिद्धिरिति । शरीरादिसंज्ञा च पृथिवीत्वेन परापरभावानिरूपणाच्च शरीरत्वादिर्जातिनिबन्धना, किन्तर्हि ? तत्तल्लक्षणोपाधिकेति मन्तव्यम् ।

*

(शरीरसामान्यलक्षणम्)

उत्तरा त्रेधा–शरीरादिभेदेन । स्पर्शवदिन्द्रियसंयुक्तमेव भोगसाधनम् अन्त्यावयवि शरीरमिति सामान्यलक्षणम् ।

[ब. टी.] **उत्तरेति** । अनित्यसमवेतेत्यर्थः । **स्पर्शेन**[illegible] । [illegible] **भोगेति** । भोगः सुखदुःखान्यतरसाक्षात्कार इति । [illegible] शरीरेऽव्याप्तिवारकत्वात् । तस्य शरीरस्य केवलपापारब्धतया सुखानवच्छेदकत्वात् । न च दुःखसाक्षात्कारसाधनं दुःखसाधनमित्येवास्तु, इतरपदवैयर्थ्यमिति वाच्यम् । स्वर्गे शरीरे तस्याव्याप्तिवारकत्वात्, तस्य केवलपुण्यारब्धतया दुःखानवच्छेदकत्वात् । ननु मरणस्य दुःखाविनाभूतत्वेन स्वर्गिशरीरमपि दुःखजनकं भवत्येवेति चेन्न; सुखजनके परिमाणभेदोद्भिन्नेशरीरे दुःखमजनयित्वैव नष्टे तस्य विशेषणस्याव्याप्तिवारकत्वात् । यत्तु मरणदशायामपि स्वर्गिणो न दुःखम्,

१ व्युदासायेति ज. ट. २ सिद्धिरिति नास्ति ट. ३ तत्सिध्यर्थमिति ज. ट. ४ आरमत्वे मनस्त्वे चेति ट. ५ व्यभिचारस्स्यादित्यधिकं झ. ६ चेत्यधिकं च. पुस्तके. ७ अन्त्यावयवीति नास्ति क. ख. पुस्तकयोः. ८ त्वारकेति च. ९ सुखदुःखेति च. १० इतरवैधर्म्यमिति छ. ११ तस्य स्वर्गयिनि च. १२ सुखेति च. १३ पदमिदं नास्ति छ. पुस्तके. १४ जनकेनेति छ. १५ भेदाद्भिन्नेति च.

*'यन्न दुःखेन सम्भिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम् ।
अभिलाषोपनीतं यत्तत्सुखं स्वःपदास्पदम्' ॥

इत्यादेरुक्तत्वादिति तन्न; [1]तत्र मरणकालीनदुःखातिरिक्तदुःखासम्भेदस्योक्तत्वात् । न च मरणं दुःखाविनाभूतमेवेति तत्राव्याप्तौ स्वर्गिमरणातिरिक्तमरणमेव गृह्यतामिति वाच्यम् । सामान्यव्याप्तौ वाक्यमन्तरेण सङ्कोचे मानाभावात् । न च 'यत्र दुःखेन सम्भिन्नम्' इत्येव तत्र सङ्कोचकम्, अन्यथा भवद्भिरपि कर्तव्ये सङ्कोचे विनिगमनाविरह इति वाच्यम् । स्वर्गे मरणदशायां दुःखस्य पुराणादिसिद्धत्वात् । न च ते नराः सुखमृत्यव इत्यनेन सह विरोध इति वाच्यम्, तस्याल्पकालव्यापकदुःखपूर्वकमरणतात्पर्यकत्वात् । न चैवं सुखान्तमुक्तिभङ्गप्रसङ्गः, इष्टापत्तेः । तदुपपादितमस्माभिः द्रव्यप्रकाशप्रकाशे । आत्मन्यतिव्याप्तिवारणाय स्पर्शवदिति । न च शरीरावयवे लक्षणमतिव्यापकमिति वाच्यम्, स्पर्शवत्पदेनान्त्यावयविन उक्तत्वात् । न च घटेऽतिव्याप्तिः, तस्य भोगाजनकत्वात्, भोगसाधनपदेन भोगावच्छेदकत्वस्योक्तत्वाद्वा । न चेन्द्रियसंयुक्तमेवेति भोगस्य वैयर्थ्यमिति वाच्यम्, तस्योपरञ्जकत्वात् ।

अन्ये तु भोगसाधनमित्युक्ते चक्षुरादावतिव्याप्तिस्स्यात्, तदर्थमिन्द्रियसंयुक्तमिति वाच्यम् । घटादावतिव्याप्तिवारणायैवकारः । तस्य स्मृत्यादिविषयतापन्नस्यापि भोगसाधनतयावधारणार्थो नास्तीति नातिव्याप्तिः, मनस्संयुक्तस्यात्मनो भोगसाधनस्य व्यवच्छेदार्थं स्पर्शवदिति व्याचक्षुः ।

तन्न; इन्द्रियादीनां भोगजनकतया पदवैयर्थ्यात्, प्राणवायुशरीरावयवकरचरणादावतिव्याप्तिश्च । ननु पूर्वव्याख्यानेऽपि लक्षणमिदं मृतशरीरव्यापकम्, अव्यापकञ्च नृसिंहशरीरं इति चेत्—न; आत्मविशेषगुणजनकमनस्संयोगवद्वृत्त्यन्त्यावयविमात्रवृत्तिजातिमत्त्वं शरीरत्वमित्यस्य विवक्षितत्वात् । व्याख्यातञ्चैतत् द्रव्योपायोपाये ।

---

* यत्सुखं न दुःखेन सम्भिन्नम्—दुःखमिश्रं न भवति, न च ग्रस्तम्—शत्रुकृतापहारादिशङ्कारहितम्, अनन्तरम् अविच्छिन्नं सन्ततं यावदिच्छावत्कालभोग्यम्, अभिलाषोपनीतम्—प्रयत्नानपेक्षाभिलाषमात्रोपनीतविषयम्, तत्सुखं स्वःपदास्पदं स्वर्गपदवाच्यं भवतीत्यर्थः । सांसारिकसुखवैलक्षण्यमनेन प्रदर्शितमिति बोध्यम् । इयं स्मृतिरिति विज्ञानभिक्षुः । परन्तु परिमलादिषु प्रामाणिकग्रन्थेषु श्रुतित्वेन व्यवहारादर्थवादरूपा श्रुतिरिति वयं मन्यामहे ।

१ तत्रेति नास्ति घ पुस्तके. २ सङ्कोचस्यासामान्यत्वादिति छ. ३ तत्सुखमेवेति च. ४ अपीति नास्ति च. ५ स्यादीति च. ६ अवच्छेदकस्येति च. ७ चक्षुरादिष्विति घ. ८ पदमिदं नास्ति च. ९ भोगाजनकेति घ. १० पदमिदं नास्ति च. ११ नृसिंहादीति च. १२ संयोगवदन्त्येति छ.

सिद्धसाधनताव्युदासार्थं नित्येत्युक्तम् । पृथिवीत्वं नित्यसमवेतमित्युक्ते यद्यपि नित्यपृथिवीसिद्धौ परमाणुसिद्धिस्स्यात्, तथापि न व्यणुकसिद्धिरिति तस्य सिध्यर्थं वृत्तिपदम् । जातित्वादित्युक्ते मनस्त्वादौ व्यभिचारस्स्यादत उक्तम्–घटपटेति । घटजातित्वादित्युक्ते घटत्वे, एवं पटजातित्वादित्युक्ते पटत्वे व्यभिचारस्स्यादत उक्तम्–घटपटजातित्वादिति । सत्तावन्नित्ये नित्यसमवेते च पृथिवीत्वस्य वृत्तौ तदुभयं सिध्येत्, परमाणुव्यणुकतयैव सिध्यति । पृथिव्या निरतिशयाणुत्वेनैव निरवयवद्रव्यतयारम्भवन्नित्यत्वं, व्यणुकस्य च नित्यसमवेतत्वं, परमाणोश्च क्रियावत्वं, स्वसमवेतद्रव्यारम्भकत्वात् । ततो यथोक्तव्यणुकपरमाण्वोः सिद्धिः ।

[वा. टी.] पृथिवीत्वमिति । तन्तुसमवेतपटवृत्तित्वेन सिद्धसाधनतानिवारणाय नित्येति । व्यणुकसिध्यै समवेतेति । घटत्वपटत्वनिवृत्तये घटपटेति । असिद्धिनिवारणाय जातीति । दृष्टान्ते च नित्याकाशसमवेतशब्दवृत्तित्वेन साध्यसिद्धिः । पक्षे च तदनुपपत्त्याभिमतसाध्यसिद्धिरिति । शरीरादिसंज्ञा च पृथिवीत्वेन परापरभावानिरूपणाश्च शरीरत्वादिर्जातिनिबन्धना, किन्तर्हि ! तत्तल्लक्षणोपाधिकेति मन्तव्यम् ।

*

(शरीरसामान्यलक्षणम्)

उत्तरा त्रेधा–शरीरादिभेदेन । स्पर्शवदिन्द्रियसंयुक्तमेव भोगसाधनम् अन्त्यावयवि शरीरमिति सामान्यलक्षणम् ।

[वा. टी.] उत्तरेति । अनित्यसमवेतेत्यर्थः । स्पर्शवदिति । दण्डादावतिव्याप्तिवारणाय भोगेति । भोगः सुखदुःखान्यतरसाक्षात्कार इति । दुःखपदं व्यर्थमिति चेन्न; नारकीयशरीरेऽव्याप्तिवारकत्वात् । तस्य शरीरस्य केवलपापारब्धतया सुखानवच्छेदकत्वात् । न च दुःखसाक्षात्कारसाधनं दुःखसाधनमित्येवास्तु, इतरपदवैयर्थ्यमिति वाच्यम् । स्वर्गे शरीरे तस्याव्याप्तिवारकत्वात्, तस्य केवलपुण्यारब्धतया दुःखानवच्छेदकत्वात् । ननु मरणस्य दुःखाविनाभूतत्वेन स्वर्गिशरीरमपि दुःखजनकं भवत्येवेति चेन्न; सुखजनके परिमाणभेदोद्भिन्नेशरीरे दुःखमजनयित्वैव नष्टे तस्य विशेषणस्याव्याप्तिवारकत्वात् । यत्तु मरणदशायामपि स्वर्गिणो न दुःखम्,

१ व्युदासायेति ज. ट. २ सिद्धिरिति नास्ति ट. ३ तन्मिथ्यर्थमिति ज. ट. ४ आरम्भत्वे मनस्त्वे चेति ट. ५ व्यभिचारस्स्यादित्यधिकं इ. ६ चेत्यधिकं घ. पुस्तके. ७ अन्त्यावयवीति नास्ति क. ख. पुस्तकयोः. ८ व्याप्तिवारकेति घ. ९ सुखदुःखेति घ. १० इतरवैयर्थ्यमिति छ. ११ तस्य स्वर्गीयेति घ. १२ सुखेति घ. १३ पदमिदं नास्ति छ. पुस्तके. १४ जनकेनेति छ. १५ भेदादिन्नेति घ.

'यन्न* दुःखेन सम्भिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम् ।
अभिलाषोपनीतं यत्तत्सुखं स्वःपदास्पदम्' ॥

इत्यादेरुक्तत्वादिति तन्न; तत्र[1] मरणकालीनदुःखातिरिक्तदुःखासम्भेदस्योक्तत्वात् । न च मरणं दुःखाविनाभूतमेवेति तत्राव्याप्तौ स्वर्गिमरणातिरिक्तमरणमेव गृह्यतामिति वाच्यम् । सामान्यव्याप्तौ वाक्यमन्तरेण सङ्कोचे[2] मानाभावात् । न च 'यत्र दुःखेन सम्भिन्नम्' इत्येव[3] तत्र सङ्कोचकम्, अन्यथा भवद्भिरपि[4] कर्तव्ये सङ्कोचे विनिगमनाविरह इति वाच्यम् । स्वर्गे मरणदशायां दुःखस्य पुराणादिसिद्धत्वात् । न च ते नराः सुखमृत्यव इत्यनेन सह विरोध इति वाच्यम्, तस्याल्पकालव्यापकदुःखपूर्वकमरणतात्पर्यकत्वात् । न चैवं सुखान्तमुक्तिभङ्गप्रसङ्गः, इष्टापत्तेः । तदुपपादितमस्माभिः द्रव्यप्रकाशप्रकाशे ।

आत्मन्यतिव्याप्तिवारणाय स्पर्शवदिति । न च शरीरावयवे लक्षणमतिव्यापकमिति वाच्यम्, स्पर्शवत्पदेनान्त्यावयविन उक्तत्वात् । न च घटेऽतिव्याप्तिः[5], तस्य भोगाजनकत्वात्, भोगसाधनपदेन भोगावच्छेदकत्वस्योक्तत्वाद्वा[6] । न चेन्द्रियसंयुक्तमेवेति[7] भोगस्य वैयर्थ्यमिति वाच्यम्, तस्योपरञ्जकत्वात् ।

अन्ये तु भोगसाधनमित्युक्ते ...
वाच्यम् । घटादावतिव्याप्तिवारणायैव ...
धनतयावधारणार्थो नास्तीति नातिव्याप्तिः, मनस्संयुक्तस्यात्मनो भोगसाधनस्य व्यवच्छेदार्थं स्पर्शवदिति व्याचक्षुः ।

तन्न; इन्द्रियादीनां भोगजनकतया पदवैयर्थ्यात्[8], प्राणवायुशरीरावयवकरचरणादावतिव्याप्तेश्च । ननु पूर्वव्याख्यानेऽपि लक्षणमिदं मृतशरीरव्यापकम्[9], अव्यापकञ्च नृसिंहशरीरं[10] इति चेत्—न; आत्मविशेषगुणजनकमनस्संयोगवदन्त्यावयविमात्रवृत्ति[11]-जातिमत्त्वं शरीरत्वमित्यस्य विवक्षितत्वात्[12] । व्याख्यातञ्चैतत् द्रव्योपायोपाये ।

* यत्सुखं न दुःखेन सम्भिन्नम्–दुःखमिश्रं न भवति, न च ग्रस्तम्–शत्रुकृतापहारादिशङ्कारहितम्, अनन्तरम् अविच्छिन्नं सन्ततं वर्षादियावत्कालभोग्यम्, अभिलाषोपनीतम्–प्रयत्नानपेक्षाभिलाषमात्रोपनीतविषयम्, तत्सुखं स्वःपदास्पदं स्वर्गपदवाच्यं भवतीत्यर्थः । सांसारिकसुखवैलक्षण्यमनेन प्रदर्शितमिति बोध्यम् । इयं स्मृतिरिति विज्ञानभिक्षवः । परन्तु परिमलादिषु प्रामाणिकग्रन्थेषु श्रुतित्वेन व्यवहारादर्थवादरूपा श्रुतिरिति वयं मन्यामहे ।

१ तत्रेति नास्ति घ पुस्तके. २ सङ्कोचस्यामानकत्वादिति छ. ३ तत्सुखमेवेति घ. ४ अपीति नास्ति घ. ५ व्याप्तीति च. ६ भवच्छेदकस्येति घ. ७ चक्षुरादिष्विति घ. ८ पदमिदं नास्ति घ. ९ भोगाजनकेति घ. १० पदमिदं नास्ति घ. ११ नृसिंहादीति च. १२ संयोगवदन्त्येति छ.

[अ. टी.] भोगसाधनं शरीरमित्युक्ते चक्षुरादिष्वतिव्याप्तिः। तस्मात् इन्द्रियसंयुक्तमिति पदम्। चक्षुरादिसंयुक्तेघटादिविषयव्युदासार्थम् एवेत्युक्तम्। विषयाणां स्मृत्यादिगोचरत्वेनापि भोगसाधनानामवधारणार्थो नास्ति। मनसेन्द्रियेण संयुक्तस्यैवात्मनो भोगसाधनस्य व्यवच्छेदाय स्पर्शवदित्युक्तम्।

[वा. टी.] स्पर्शवदिति[1]। ईशेच्छादिनिवारणाय इन्द्रियसंयुक्तमिति। भ्रमादिनिवारणाय एवेति। स्मृतिगोचरत्वेनापि तस्य भोगकारणत्वात्ततो व्यावृत्तिः। कालादिनिवारणाय स्पर्शवदिति। चक्षुरादावतिव्यापकत्वात्तदतिरिक्ते सतीति वाच्यम्। यद्वा स्पर्शवद्भोगसाधनमिन्द्रियमित्येकं लक्षणम्। द्वितीयं ... ... (व्रताद्यार्थः ?) भोगस्साध्यते निष्पाद्यतेऽनेनेति भोगसाधनम्, भोगजनकात्मादिसंयोगाधिकरणमित्यर्थः। 'अर्श आदिभ्योऽजि'ति पाणिनीयस्मरणात्। आत्ममनोनिवृत्त्यर्थं स्पर्शवदिति। घटादिनिवृत्तये भोगेति। द्वितीयम्–इन्द्रियैस्संयुक्तमिन्द्रियसंयुक्तम्। संयोगश्चात्र पतनप्रतिबन्धकः, केशमस्तकसंयोगवत्। ततश्चेन्द्रियाणामधिकरणमित्यर्थः। एवञ्च न घटादावतिव्याप्तिः। एवकारस्तु वार्थे। तेजश्शरीरघटनिवृत्तये पदद्वयम्।

*

(पार्थिवशरीरं तद्विभागश्च)

गन्धवच्छरीरं पार्थिवं[3] शरीरम्। स्वसमवेतसुखदुःखान्यतरसाक्षात्कारो भोगः[4]। तद्द्विधा[5]–योनिजायोनिजभेदेन[6]। पूर्वमस्मदादीनां[7] प्रत्यक्षसिद्धम्। उत्तरञ्च[8] द्वेधा–प्रकृष्टधर्मजम्[9] अन्यथा चेति।

[व.-टी.] विशेषलक्षणमाह–गन्धवदिति। अत्र गन्धयोग्यता विवक्षिता, तेन न सुरभ्यसुरभ्यवयवारब्धेऽव्याप्तिः। जलीयशरीरेऽतिव्याप्तिवारणाय गन्धवदिति। घटादावतिव्याप्तिवारणाय शरीरमिति। शरीरलक्षणे प्रविष्टो भोग एव क इत्यत आह–स्वेति। ईश्वरसाक्षात्कारस्य भोगवारणाय स्वेति। अस्मदादिसुखमीश्वरसम्बद्धं केनचित्सम्बन्धेन भवत्येवेत्यत उक्तम्–समवेतेति। साक्षात्समवेतेत्यर्थः। साक्षात्सम्बन्धतो वचने विषयतासम्बन्धेनास्मत्सुखमीश्वरसम्बद्धं भवत्येवेत्यत उक्तम्–समवेतेति। आत्मत्वादिसाक्षात्कारस्य भोगवारणाय[10,11] सुखेति। सुखसाक्षात्कारत्वं[12] दुःखसाक्षात्काराव्यापकम्। दुःखसाक्षात्कारत्वन्तु सुखसाक्षात्काराव्यापकम्। एतत्समुच्चितसाक्षात्कारत्वमसम्भवि[13], अत उक्तम्–अन्यतरेति।

---

१ स्मात्तस्मादिति ज. ट. २ संयुक्तेष्टादीति ज. ट. * पा. सू. ५. २. १२७. ३ पार्थिवशरीरमिति ख, पदमिदं नास्ति क पुस्तके. ४ भोगार्थ इति क. ख. ५ तद्विविधमिति क. ६ योनिजभेदेनेति ख. ७ पूर्वमिति ख. ८ चेति नास्ति ख. मुद्रितपुस्तकयोः. ९ धर्मेति ख. १०, ११ भोगत्वेति घ १२ सुखसाक्षात्कारत्वं दुःखसाक्षात्कारत्वं दुःखसाक्षात्कारव्यापकं दुःखसाक्षात्कार व्यापकमित्यशुद्ध पाठः घ पुस्तके. १३ असम्भव इत्यत इति घ.

अन्ये तु—एकोत्पत्त्यनन्तरमपरं यत्रोत्पन्नं तत्र विनश्यदवस्थाविनश्यदवस्थद्वय-विषयक एकसाक्षात्कारस्सम्भवतीत्याहुः ।

अन्ये तु—आदौ सुखमनन्तरं तज्ज्ञानम्, अनन्तरं दुःखम्, तदनन्तरं जायमानेन दुःखसाक्षात्कारेण द्वयमपि विषयीक्रियते । चतुर्थादिक्षणवृत्तित्वं सुखादेः स्वीक्रियत एवेत्याहुः । (अत्र) लौकिकसाक्षात्कारो विवक्षितः, तेन न ज्ञानोपनीतसुखसाक्षात्कारादिर्भोगः । केचित्तु सविकल्पकं साक्षात्कारं गृह्णन्ति । तेन न सुखनिर्विकल्पकस्य भोगता । अन्ये तु तन्निर्विकल्पस्यापि भोगत्वं वदन्ति ।

[अ. टी.] कस्तर्हि भोगो यत्साधनं शरीरमत आह—स्वसमवेतेति । घटसाक्षात्कारव्यवच्छेदार्थं सुखादिपदम् । योगिनामीश्वरस्य च परसमवेतसुखादिसाक्षात्कारे व्यवच्छेदार्थं स्वसमवेतेत्युक्तम् । विनश्यदविनश्यदवस्थसुखदुःखयोर्युगपत्साक्षात्कारादन्यतरग्रहणमुपलक्षणार्थम् ।

[वा. टी.] स्वसमवेतेति । घटसाक्षात्कारनिवृत्तये दुःखेति । सुखसाक्षात्कारेऽतिव्याप्तिपरिहाराय सुखेति । उभयोरेकसाक्षात्कारे द्वये व्याप्तिव्याप्तिरत आह—अन्यतरेति । अन्यतरत्वञ्च सुखदुःखान्यत्वात्यन्ताभावाश्रयत्वम् । तथा च साक्षात्कारसम्भवान्नैकत्राव्याप्तिः । ईशस्य सुखसाक्षात्कारेऽतिव्याप्तिपरिहाराय स्वसमवेतेति ।

*

(अयोनिजशरीरानुमानम्)

पार्थिवाः परमाणवः पारम्पर्येण कदाचित्प्रकृष्टधर्मजायोनिजशरीरारम्भकाः, स्पर्शवत्परमाणुत्वात्, उदकपरमाणुवदिति अयोनिजशरीरसिद्धिः । दुःखभूयस्त्वादधर्मजमुत्तरं शरीरं मशकादीनाम् । मलक्षसिद्धं तस्यायोनिजत्वम् ।

[ब. टी.] आगमसिद्धेऽपि प्रकृष्टधर्मजायोनिजशरीरेऽनुमानमाह—पार्थिवा इति । अंशतः सिद्धसाधनवारणाय पार्थिवा इति । घटादीनां बाधवारणाय परमाणव इति । अजनितशरीरनष्टद्व्यणुकेन बाधवारणाय परमेति । पार्थिवपदेन मनसा बाधवारणेऽपि साक्षाच्छरीरारम्भकत्वे बाधादाह—पारम्पर्येणेति । सर्वदा शरीरारम्भकत्वे बाधादाह—कदाचिदिति । मशकादिशरीरारम्भकत्वेनार्थान्तरवारणाय प्रकृष्टेति । प्रकृष्टधर्मजयोनिजशरीरेणार्थान्तरवारणाय अयोनिजेति । उत्तमसुखजनकविषयजनकत्वेनार्थान्तरवारणाय शरीरेति । मनसि व्यभिचारवारणाय स्पर्शवदिति । घटे व्यभिचारवारणाय अणुत्वादिति । शरीरानारम्भकद्व्यणुकव्यभिचारवारणाय परमेति । उदकेति । उदकपरमाणोरागमसिद्धं शरीरारम्भकत्वम् ।

१ द्रव्यमपीति छ. २ तदिति नास्ति च पुस्तके. ३ घटादीति ज. ट. ४ भोगव्यवच्छेदायेति ज. ट. ५ आरम्भकास्पर्शेति मु. ६ अधर्मेति ख. ७ शरीरमिति नास्ति ख पुस्तके. ८ प्रमाणमिति च ९ वारणमपीति च. १० अनारम्भद्व्यणुकेति च. ११ उदकेति नास्ति च पुस्तके. १२ आरम्भकत्वादिति छ.

[अ. टी.] भोगसाधनं शरीरमित्युक्ते चक्षुरादिष्वतिव्याप्तिः। तस्मात् **इन्द्रियसंयुक्तमिति** पदम्। चक्षुरादिसंयुक्तघटादिविषयव्युदासार्थम् एवेत्युक्तम्। विषयाणां स्मृत्यादिगोचरत्वेनापि भोगसाधनानामवधारणार्थो नास्ति। मनसेन्द्रियेण संयुक्तस्यैवात्मनो भोगसाधनस्य व्यवच्छेदाय **स्पर्शवदित्युक्तम्**।

[वा. टी.] **स्पर्शवदिति**। ईशेच्छादिनिवारणाय **इन्द्रियसंयुक्तमिति**। भ्रमादिनिवारणाय **एवेति**। स्मृतिगोचरत्वेनापि तस्य भोगकारणत्वात्ततो व्यावृत्तिः। कालादिनिवारणाय **स्पर्शवदिति**। चक्षुरादावतिव्यापकत्वात्तदतिरिक्ते सतीति वाच्यम्। यद्वा स्पर्शवद्भोगसाधनमिन्द्रियमित्येकं लक्षणम्। द्वितीयं ... ... (व्रताद्यार्थः ?) भोगस्साध्यते निष्पाद्यतेऽनेनेति भोगसाधनम्, भोगजनकात्मादिसंयोगाधिकरणमित्यर्थः। 'अर्श आदिभ्योऽजि'ति[*] पाणिनीयस्मरणात्। आत्ममनोनिवृत्त्यर्थं **स्पर्शवदिति**। घटादिनिवृत्तये **भोगेति**। द्वितीयम्-इन्द्रियैस्संयुक्तमिन्द्रियसंयुक्तम्। संयोगश्चात्र पतनप्रतिबन्धकः, केशमस्तकसंयोगवत्। ततश्चेन्द्रियाणामधिकरणमित्यर्थः। एवञ्च न घटादावतिव्याप्तिः। एवकारस्तु वार्थे। तेजश्शरीरघटनिवृत्तये पदद्वयम्।

(पार्थिवशरीरं तद्विभागश्च)

गन्धवच्छरीरं पार्थिवं शरीरम्[3]। स्वसमवेतसुखदुःखान्यतरसाक्षात्कारो भोगः[4]। तद्द्वेधा[5]-योनिजायोनिजभेदेन[6]। पूर्वमस्मदादीनां[7] प्रत्यक्षसिद्धम्। उत्तरञ्च द्वेधा-प्रकृष्टधर्मजम् अन्यथा चेति[8]।

[व. टी.] विशेषलक्षणमाह-**गन्धवदिति**। अत्र गन्धयोग्यता विवक्षिता, तेन न सुरभ्यसुरभ्यवयवारब्धेऽव्याप्तिः। जलीयशरीरेऽतिव्याप्तिवारणाय **गन्धवदिति**। घटादावतिव्याप्तिवारणाय **शरीरमिति**। शरीरलक्षणे प्रविष्टो भोग एव क इत्यत आह-**स्वेति**। ईश्वरसाक्षात्कारस्य भोगवारणाय[9] **स्वेति**। अस्मदादिसुखमीश्वरसम्बद्धं केनचित्सम्बन्धेन भवत्येवेत्यत उक्तम्-**समवेतेति**। साक्षात्समवेतेत्यर्थः। साक्षात्सम्बन्धतो वचने विषयतासम्बन्धेनास्मत्सुखमीश्वरसम्बद्धं भवत्येवेत्यत उक्तम्-**समवेतेति**। आत्मत्वादिसाक्षात्कारस्य भोगवारणाय[10] **सुखेति**। सुखसाक्षात्कारत्वं[11] दुःखसाक्षात्काराव्यापकम्[12]। दुःखसाक्षात्कारत्वन्तु सुखसाक्षात्काराव्यापकम्। एतत्समुचितसाक्षात्कारत्वमसम्भवि[13], अत उक्तम्-**अन्यतरेति**।

---

१ स्पर्शवत्त्वादिति ज. ट. २ संयुक्तेष्वादीति ज. ट. * पा. सू. ५. २. १२७. ३ पार्थिवशरीरमिति ख, पदमिदं नास्ति क पुस्तके. ४ भोगार्थं इति क. ख. ५ तद्द्विविधमिति क. ६ योनिजभेदेनेति ख. ७ पूर्वमिति ख. ८ चेति नास्ति ख. मुद्रितपुस्तकयोः. ९ धर्मेति ख. १०, ११ भोगत्वेति घ १२ सुखसाक्षात्कारत्वं दुःखसाक्षात्कारत्वं दुःखसाक्षात्कारव्यापकं दुःखसाक्षात्कार व्यापकमित्यशुद्ध पाठः घ पुस्तके. १३ असम्भव इत्यत इति घ.

अन्ये तु—एकोत्पत्त्यनन्तरमपरं यत्रोत्पन्नं तत्र विनश्यदवस्थाविनश्यदवस्थद्वयविषयक एकस्साक्षात्कारस्सम्भवतीत्याहुः ।

अन्ये तु—आदौ सुखमनन्तरं तज्ज्ञानम्, अनन्तरं दुःखम्, तदनन्तरं जायमानेन दुःखसाक्षात्कारेण द्वयमपि विषयीक्रियते । चतुर्थादिक्षणवृत्तित्वं सुखादेः स्वीक्रियत एवेत्याहुः । (अत्र) लौकिकसाक्षात्कारो विवक्षितः, तेन न ज्ञानोपनीतसुखसाक्षात्कारादिर्भोगः । केचित्तु सविकल्पकं साक्षात्कारं गृह्णन्ति । तेन न सुखनिर्विकल्पकस्य भोगता । अन्ये तु तन्निर्विकल्पस्यापि भोगत्वं वदन्ति ।

[अ. टी.] कस्तर्हि भोगो यत्साधनं शरीरमत आह—स्वसमवेतेति । घटसाक्षात्कारव्यवच्छेदार्थं सुखादिपदम् । योगिनामीश्वरस्य च परसमवेतसुखादिसाक्षात्कारे व्यवच्छेदार्थं स्वसमवेतेत्युक्तम् । विनश्यदविनश्यदवस्थसुखदुःखयोर्युगपत्साक्षात्कारादन्यतरग्रहणमुपलक्षणार्थम् ।

[बा. टी.] स्वसमवेतेति । घटसाक्षात्कारनिवृत्तये दुःखेति । सुखसाक्षात्कारेऽतिव्याप्तिपरिहाराय सुखेति । उभयोरेकसाक्षात्कारे द्वये न्यातिव्याप्तिरत आह—अन्यतरेति । अन्यतरत्वञ्च सुखदुःखान्यतरात्यन्ताभावाश्रयत्वम् । तथा च साक्षात्कारसम्भवान्नैकत्राव्याप्तिः । ईशस्य सुखसाक्षात्कारेऽतिव्याप्तिपरिहाराय स्वसमवेतेति ।

*

(अयोनिजशरीरानुमानम्)

पार्थिवाः परमाणवः पारम्पर्येण कदाचित्प्रकृष्टधर्मजायोनिजशरीरारम्भकाः, स्पर्शवत्परमाणुत्वात्, उदकपरमाणुवदिति अयोनिजशरीरसिद्धिः । दुःखभूयस्त्वादधर्मजमुत्तरं शरीरं मशकादीनाम् । प्रत्यक्षसिद्धं तस्यायोनिजत्वम् ।

[ब. टी.] आगमसिद्धेऽपि प्रकृष्टधर्मजायोनिजशरीरेऽनुमानमाह—पार्थिवा इति । अंशतः सिद्धसाधनवारणाय पार्थिवा इति । घटादीनां बाधवारणाय परमाणव इति । अजनितशरीरनष्टद्व्यणुकेन बाधवारणाय परमेति । पार्थिवपदेन मनसा बाधवारणेऽपि साक्षाच्छरीरारम्भकत्वे बाधादाह—पारम्पर्येणेति । सर्वदा शरीरारम्भकत्वे बाधादाह—कदाचिदिति । मशकादिशरीरारम्भकत्वेनार्थान्तरवारणाय प्रकृष्टेति । प्रकृष्टधर्मजयोनिजशरीरेणार्थान्तरवारणाय अयोनिजेति । उत्तमसुखजनकविषयजनकत्वेनार्थान्तरवारणाय शरीरेति । मनसि व्यभिचारवारणाय स्पर्शवदिति । घटे व्यभिचारवारणाय अणुत्वादिति । शरीरानारम्भकद्व्यणुकव्यभिचारवारणाय परमेति । उदकेति । उदकपरमाणोरागमसिद्धं शरीरारम्भकत्वम् ।

१ द्रव्यमपीति छ. २ यदिति नास्ति च पुस्तके. ३ घटादीनि ज. ट. ४ भोगव्यवच्छेदायेति ज. ट. ५ आरम्भकास्पर्शेति मु. ६ अधर्मेति ख. ७ शरीरमिति नास्ति च पुस्तके. ८ प्रमाणमिति च ९ वारणमपीति च. १० अनारम्भद्व्यणुकेति च. ११ उदकेति नास्ति च पुस्तके. १२ आरम्भकत्वादिति छ.

[अ. टी.] प्रकृष्टधर्मजायोनिजशरीरं द्रौपद्यादेरागमसिद्धम्, अनुमानतोऽपि तत्सिद्धिरित्याह—**पार्थिवा इति**। परमाणूनां साक्षाच्छरीरारम्भकत्वं नास्तीति बाधस्स्यात्। अत उक्तम्—**पारम्पर्येणेति**। द्व्यणुकादिक्रमेणेत्यर्थः। तदपि सर्वदा नास्तीति स एव दोष इत्यत आह—**कदाचिदिति**। अयोनिजमशकादिशरीरारम्भकत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं **प्रकृष्टधर्मजेत्युक्तम्**। परमाणुत्वं निरतिशयाणुपरिमाणवत्त्वं, तन्मनसि व्यभिचरतीति **स्पर्शवत्पदम्**। उदकपरमाणूनामेतादृग्देहारम्भकत्वम् "अदोऽम्मः परेण दिवम्" इत्याद्यागमसिद्धं द्रष्टव्यम्।

[वा. टी.] यत्तु मतम्—दाहक्लेशादिदर्शनेन पाञ्चभौतिकं शरीरमिति, तन्न; पञ्चानां भूतानां समवायिकारणत्वे समवायिकारणगता गुणाः कार्ये गुणानारभन्त इति न्यायाच्छीतोष्णत्वाद्यनेकविरुद्धधर्माधिकरणत्वेन वस्तुभेदः प्रसज्येत। तत्तद्गुणाभिव्यज्यमानानां परस्परपरिहारेण स्थितानां पृथिवीत्वादीनामेकत्र समावेशे जातिसङ्करश्च। तस्मात्तानि निमित्तान्येवेति न पाञ्चभौतिकत्वमिति तदेतन्मनसि निधाय प्रतिज्ञायां **पार्थिवा** इति पदम्। **पारम्पर्येण** द्व्यणुकादिक्रमेणेत्यर्थः। अन्यथा नष्टेऽवयविनि अवयवदर्शनं न स्यात्। साक्षादण्वारम्भत्वेऽप्रत्यक्षत्वञ्च, सततारम्भे प्रलयानुपपत्तिः, तन्निराकरोति—**कदाचिदिति**। सिद्धसाधनपरिहाराय **शरीरेति**। योनिजारम्भकत्वेन सिद्धसाधनपरिहाराय **अयोनिजेति**। अयोनिजमशकादिशरीरारम्भेण सिद्धसाधनपरिहाराय **प्रकृष्टेति**। पाकावस्थाणुनिरासाय **स्पर्शवदिति**। घटनिवृत्तये **परमाणुत्वादिति**।

*

(इन्द्रियसामान्यलक्षणम्)

पङ्गुणमप्रत्यक्षं साक्षात्कारप्रतीतिसाधनमिति सामान्यलक्षणम्।

[व. टी.] **पङ्गुणमिति**। शरीरादावतिव्याप्तिवारणाय **अप्रत्यक्षमिति**। साक्षात्त्वं जातिः, न त्विन्द्रियजन्यत्वम्। तेन न व्यर्थता, न चात्माश्रयः। प्रतीतिपदं देयमेव, तेन साक्षात्त्वाधिकरणसाधनमित्यर्थः। इदन्तु विशेषणं परमाण्वादावतिव्याप्तिवारणाय। कालादावतिव्याप्तिवारणाय **पङ्गुणमिति**। गुणविभाजकोपाधिमत्त्वेन पङ्गुणमित्यर्थ इति यत् तत्रेश्वरात्मन्यतिव्याप्तिः। न च षडेव गुणा इति विवक्षितम्, ईश्वरे चाष्टौ गुणा इति नातिव्याप्तिः, तदा घ्राणादावव्याप्तेः। यत्तु षट्सङ्ख्यात्वं विवक्षितमिति तन्न; आकाशदिगीश्वरेषु घ्राणवायुसंहितेष्वतिव्याप्तेः। न चेन्द्रियत्वेन रूपेण षट्त्वं विवक्षितमिति वाच्यम्; आत्माश्रयात्, प्रकारान्तरस्य वक्तुमशक्यत्वाच्च। तस्मात् पङ्गुणमिति स्वरूपकथनमात्रम्। तस्मात्कालादावतिव्याप्तिवारणाय प्रकृतज्ञानकारणीभूतशरीरनिष्ठसंयोगा-

१ इत्यत आहेति ड. २ दोषोऽत इति ज. ट. ३ न देयमेवेति च. ४ व्याप्तेरिति च. ५ घ्राणादावेवेति घ. ६ तत्रेति च. ७ आकाशकालेति घ. ८ वायुद्वयेति घ. ९ द्वित्वेनेति च.

श्रयत्वं विवक्षितम् । न च प्राणवायावतिव्याप्तिः, अप्रत्यक्षपदेन त्वग्ग्राह्यगुणवत्त्वराहित्यस्य विवक्षितत्वात् । न चात्मन्यतिव्याप्तिः । न चाप्रत्यक्षपदेन लौकिकप्रत्यासत्त्या मनोग्राह्यगुणवत्त्वराहित्यं विवक्षितम्, शरीरप्राणवाय्वादावतिव्याप्तेः । न चाप्रत्यक्षपदेन मनोग्राह्यगुणवत्त्वराहित्ये सति त्वग्ग्राह्यगुणवत्त्वराहित्यं विवक्षितम्, परिमाणगोचरसाक्षात्प्रतीतिसाधनेन्द्रियावयवेऽतिव्याप्तेः । न चेन्द्रियावयवसंयोगस्य विषयावयवादिनिष्ठस्य परिमाणग्रहं प्रति कारणतैव नास्ति, दूरे
तथापि शरीरनिष्ठेन्द्रियसंयोगस्याजनकता
तज्जनकत्वात् । अत्राहुः—शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति ज्ञानकारणमनःसंयोगाश्रयत्वस्य स्मृत्यजनकज्ञानकारणमनस्संयोगाश्रयत्वस्य वेन्द्रियत्वस्य विवक्षितत्वान्नोक्तदोष इति ।

[अ. टी.] अनुमानादिव्यवच्छेदार्थमिन्द्रियलक्षणे साक्षात्कारपदम् । आत्मादिव्यवच्छेदार्थम् अप्रत्यक्षपदम् । धर्मादिव्यवच्छेदार्थं शरीरसंयुक्तपदं द्रष्टव्यम्, कालान्यत्वञ्च । षड्गुणं षट्संख्याकं तच्चेन्द्रियमिति शेषः । षड्गुणमिति पदस्य लक्षणान्तर्गतत्वेनैवादृष्टकालादिव्यवच्छेदान्न पदान्तराध्याहारः ।

[बा. टी.] षड्गुणमिति । घटसाधननिवृत्त्यर्थं प्रतीतीति । लिङ्गनिवृत्त्यर्थं साक्षात्कारेति । इन्द्रियार्थसन्निकर्षनिवृत्तये शरीरसंयुक्तमिति । साधनशब्दस्य करणपर्यायत्वान्न कालादावतिव्याप्तिः । षड्गुणपदं विभागपरम् । अप्रत्यक्षपदं स्वरूपपरम् । अप्रत्यक्षत्वञ्चात्र योगजधर्माजन्यसाक्षात्काराविषयत्वम्, नेन्द्रियजन्यज्ञानाविषयत्वम् आत्माश्रयापत्तेरिति । यद्वा षड्गुणमप्रत्यक्षमिति लक्षणान्तरम् । तस्यार्थः—आकाशनिवृत्तये षड्गुणमिति । षट्प्रकारकमित्यर्थः । तच्चाश्चानुवृत्तधर्मापेक्षया न व्यावृत्तेन धर्मेण । तेन नैकैकत्राव्याप्तिः । अनुवृत्तेनेन्द्रियत्वरूपेण धर्मेण षड्विधत्वानपायात् । इन्द्रियार्थसन्निकर्षनिवृत्तये—अप्रत्यक्षेति । अप्रत्यक्षत्वञ्चात्र न विद्यते प्रत्यक्षं साक्षात्कारविषयो घटादिसमवायिकारणतया निरूपकत्वेन वा यस्य तत्तथेति सर्वं सुस्थम् ।

१ पदमिदं नास्ति च पुस्तके. २ सतीत्यारभ्य राहित्यमित्यन्तं नास्ति च पुस्तके. ३ परिमाणगोचरेति च. ४ सम्भवोपपत्तेरिति च.

* शब्देतरे ये उद्भूतविशेषगुणाः तदनाश्रयत्वे सति, ज्ञानकारणीभूतो यो मनस्संयोगः तदाश्रयत्वमित्यर्थः । आत्मादावतिव्याप्तिनिरासाय सत्यन्तम् । श्रोत्रेन्द्रियेऽव्याप्तिवारणाय शब्देतरेति । घ्राणादावव्याप्तिवारणाय उद्भूतेति । शब्देतरोद्भूतगुणं संयोगमादायासम्भववारणाय विशेषेति । कालादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम् । विशेष्यगतज्ञानकारणेत्यपि तद्वारणाय । कालादावनुद्भूतरूपाभावचाक्षुषं प्रति चक्षुस्संयुक्तविशेषणतायाः सन्निकर्षतया तद्घटकचक्षुस्संयोगस्यापि हेतुत्वेन तत्रातिव्याप्तिवारणाय मनःपदम् ।

५ आत्मन्यथेति ज. ट. ६ षट्संख्यमिति ज. ट. ७ अदृष्टादीति झ.

(पार्थिवमिन्द्रियं तत्प्रमाणञ्च)

गन्धवदिन्द्रियं घ्राणम् । तत्र प्रमाणम्—पार्थिवाः परमाणवः पारम्पर्येणेन्द्रियारम्भकाः, स्पर्शवत्परमाणुत्वात्, तेजःपरमाणुवदिति ।

[व. टी.] गन्धवदिति । घटादावतिव्याप्तिं वारयितुम् इन्द्रियमिति । रसनादावतिव्याप्तिवारणाय गन्धवदिति । पार्थिवा इति । मनसि बाधवारणाय जलपरमाणौ सिद्धसाधनवारणाय च पार्थिवा इति । घटादौ बाधवारणाय अणव इति । अणुके बाधवारणाय परमेति । साक्षादारम्भकत्वे बाधवारणाय पारम्पर्येणेति । घटादिजनकत्वेनार्थान्तरवारणाय इन्द्रियेति । मनोद्व्यणुकघटेषु व्यभिचारवारणाय क्रमेण हेतुविशेषणानि । तेजः परमाणोरिन्द्रियारम्भकत्वमागमिकम् ।

[अ. टी.] तेजःपरमाणूनामिन्द्रियारम्भकत्वम् "स एतास्तेजोमात्राः समभ्याददानः" इत्यागमसिद्धं द्रष्टव्यम् ।

[वा. टी.] गन्धवदिति । पार्थिवेन्द्रियमिति शेषः । पृथिवीप्रकरणे पार्थिवत्वेनैव तत्तत्परमाण्वादीनां प्रतिपादनात्प्रकृते तेनैव प्रतिपादनमुचितम् । ननु घ्राणमिति विशेषणेन च तत्प्रकरणबलाज्ज्ञातुं शक्यमिति शङ्क्यम्, 'शाब्दी ह्याकाङ्क्षा शब्देनैव पूर्यते' इति न्यायादिति तत्किमत आह—घ्राणमिति । पर्यायत्वेन बोधयितुं शक्यत्वेऽपि घ्राणपदेन जिघ्रति गन्धमिति व्युत्पत्त्या गन्धग्राहकत्वमुक्तम् । ततश्च यस्य भूतस्य यदिन्द्रियं तत् तस्य विशेषगुणग्राहकमिति सूचितम् ।

*

(विषयलक्षणं पार्थिवविषयश्च)

स्पर्शवान् शरीरेन्द्रियव्यतिरिक्तः कार्यजातो विषय इति सामान्यलक्षणम् । गन्धवान् विषयः पार्थिवो विषयः । स चेष्टकादिः प्रत्यक्षसिद्धः । सा चतुर्दशगुणवती । एवमुत्तरत्र सामान्यलक्षणानुवृत्तौ पदान्तरानुगमेन तत्तत्परमाण्वादीनां लक्षणानि भवन्ति ।

[व. टी.] स्पर्शवानिति । गुणकर्मादावतिव्याप्तिवारणाय स्पर्शवानिति । शरीरेन्द्रिययोरतिव्याप्तिवारणाय व्यतिरिक्त इत्यन्तम् । परमाण्वादावतिव्याप्तिभङ्गाय जात इति । उत्पन्न इत्यर्थः । द्व्यणुकेऽतिव्याप्तिवारणाय कार्यजात इत्युक्तम् । कार्यसमवेत इत्यर्थः । अत्र शरीरादिव्यतिरिक्त एव विषयो लक्ष्यः । गन्धवानिति । जलादिविषयेऽतिव्याप्तिवारणाय गन्धवानिति । पार्थिवशरीरादावतिव्याप्तिवारणाय विषय इति । एवमिति । सामान्यलक्षणं परमाणुत्वादिकम्, पदान्तरं स्नेहवत्त्वादिकम् । तथाच स्नेहवान् परमाणुः जलपरमाणुरित्यादिलक्षणानि ज्ञेयानीत्यर्थः ।

---

१ तत्र प्रमाणमिति नास्ति ख पुस्तके. २ अणव इत्यारभ्य बाधवारणायेत्यन्तं नास्ति च पुस्तके. ३ ज्ञेयमिति ज. ट. ४ स्पर्शवदिति ख. ५ व्यतिरिक्तकार्येति ख. ६ स चेति नास्ति क. ख. पुस्तकयोः. ७ इष्टकादि-प्रत्यक्षेति छ. मु. ८ अनुगमने इति क. ९ पङ्क्तिरियं नास्ति छ. पुस्तके. १० कार्याज्जात इति च.

[अ. टी.] आत्मादेः शरीरादिव्यतिरिक्तत्वेऽपि विषयत्वाभावादत उक्तम् स्पर्शवानिति। द्व्यणुकव्यवच्छेदार्थं कार्यजात इति। स्पर्शवत्त्वे सति शरीरेन्द्रियव्यतिरिक्तपरमाणुव्यवच्छेदार्थं जात इत्युक्तम्। कार्यजातो विषय इत्युक्ते हस्तादिक्रियायां व्यभिचारस्स्यादत उक्तम् स्पर्शवानिति। एवमपि शरीरादौ व्यभिचारस्स्यादत उक्तम् शरीरेत्यादि। गन्धरूपरसस्पर्शा गुणाः, संख्यादयः क्षितेः परापरगुरुत्वानि द्रववेगौ चतुर्दश। यदुक्तं 'गन्धवान् परमाणुः पार्थिवः स' इत्यादि तदन्यत्रापि ज्ञेयमित्यत आह—एवमिति। स्नेहवान् यः परमाणुरुदकपरमाणुरित्यादिप्रकारेण पदानुगमात्तल्लक्षणानि द्रष्टव्यानि।

[धा. टी.] स्पर्शवानिति। परमाणुनिवृत्तये जात इति। द्व्यणुकनिवृत्त्यर्थं कार्येति। कार्यात् जातः कार्यजातः। पटरूपेऽतिव्याप्तिपरिहाराय स्पर्शवानिति। शरीरादावतिव्याप्तिपरिहाराय तद्व्यतिरिक्त इति। द्रव्यत्वसिद्धये गुणानाह—सेति। द्रववेगगुरुत्वञ्च रूपाद्येकादशावधीति चतुर्दश गुणाः। यथा गन्धवान् परमाणुः पार्थिवः परमाणुः, तथा स्नेहवान् परमाणुराप्यः परमाणुरित्याह—एवमिति।

*

(जललक्षणम् तद्विभागश्च)

स्नेहवदम्भः। नित्यमनित्यञ्चेति। पूर्वं परमाणुरूपम्। उत्तरं द्वेधा—नित्यसमवेतम् अन्यथा चेति। पूर्वं द्व्यणुकम्। अस्य नित्यसमवेतवृत्ति, सरित्समुद्रजातित्वात् सत्तावदिति परमाणुद्व्यणुकयोस्सिद्धिः। उत्तरं शरीरादिभेदेन त्रेधा।

(जलीयशरीरे प्रमाणम्)

शरीरे प्रमाणम्—आप्याः परमाणवः पारम्पर्येण शरीरारम्भकाः, स्पर्शवत्परमाणुत्वात्, पृथिवीपरमाणुवदिति। तच्च शुक्रशोणितसन्निपातनिरपेक्षम्, आप्यकार्यत्वात् करकादिवदिति। तत् प्रकृष्टादृष्टजम्, अयोनिजशरीरत्वात्, मशकादिशरीरवत्। सुखभूयस्त्वान्नाधर्मजम्।

(जलीयेन्द्रियं तत्र प्रमाणञ्च)

स्नेहवदिन्द्रियं रसनम्। आप्याः परमाणवः पारम्पर्येणेन्द्रियारम्भकाः स्पर्शवत्परमाणुत्वात्, तेजःपरमाणुवदिति तत्र प्रमाणम्। उत्तरो विषयः सरिदादिः। रूपादिचतुर्दशगुणवत्।

---

१ इत्युक्तमिति ज. ट. २ पदद्वयमिदं नास्ति ख पुस्तके. ३ स स्नेहवानिति ज. ट. ४ पार्थिवः परमाणुरिति ख. ५ इत्याहेति ज. ट. ६ पदमिदं नास्ति ज. ट. पुस्तकयोः. ७ द्रष्टव्येति नास्ति ज. ट. पुस्तकयोः. ८ इतीति नास्ति क. ख. पुस्तकयोः. ९ स्नेहवदिति नास्ति क. ख. पुस्तकयोः. १० कन्दरमिति ग, कन्दरमिति ख. ११ पार्थिवपरमाणुवदिति ख. १२ करकवदिति ग, करकवदिति ग, करकवदिति क. १३ उप सुखेति क. १४ पदमिदं नास्ति क. ख. पुस्तकयोः. १५ स्नेहवदिन्द्रियमिति ग. १६ गुणवदस्तीति ख.

[व. टी.] **सरिदिति** । सरित्त्वसमुद्रत्वयोर्व्यभिचारवारणाय जातीति । जातेस्सरित्समुद्रयोर्वृत्तिर्विवक्षिता । सरित्समुद्रनिष्ठद्वित्वान्यतरत्वादौ व्यभिचारवारणाय जातित्वादिति । साध्यकृत्यं तदर्थश्च पूर्ववत् ।

आप्या इति । अत्रानुमाने यद्यपि न पार्थिवपरमाणुर्दृष्टान्तः, तस्य पारम्पर्येण शरीरारम्भकत्वे साध्ये जलपरमाणोर्दृष्टान्तीकृतत्वात्, अन्योन्याश्रयात्, तथापि पृथिवीपरमाणोः प्रकृष्टधर्मजायोनिजत्वे साध्ये जलपरमाणुर्दृष्टान्तः । अत्रेदृशसाध्यवत्त्वस्यागमसिद्धत्वात् । पृथिवीपरमाणोः पुनः शरीरारम्भकत्वमात्रं प्रकारान्तरेण जलपरमाणुदृष्टान्तनिरपेक्षेणैव सिद्धमिति तद्दृष्टान्तेन जलपरमाणौ शरीरारम्भकत्वमात्रं साध्यते, यत्पक्षधर्मताबलादयोनिजत्वं सिध्यतीत्यन्यदेतदिति[1] दिक् । पक्षधर्मताबललभ्यमर्थं प्रकारान्तरतया साधयति–तच्चेति । कार्यत्वमात्रं योनिजे व्यभिचारि, अत आप्येति । आप्यत्वमस्वाधिकरणत्वं जलपरमाणौ व्यभिचारि । तत्र शुक्रशोणितसन्निपातं विना जायमानत्वाभावात्, अत उक्तम्–कार्यत्वादिति । अस्वाधिकरणसमवेतत्वादित्यर्थः । वर्षोपलाः करकाः । प्रकृष्टेति । उद्देश्यसिध्यर्थं प्रकृष्टेति । प्रकृष्टपरमाणुत्वादिजत्वेनार्थान्तरवारणाय अदृष्टेति । योनिजशरीरे व्यभिचारवारणाय अयोनिजेति । योनिं विना जायमानघटादौ व्यभिचारवारणाय शरीरत्वादिति । ननु दृष्टान्त इव प्रकृष्टाधर्मजत्वं पक्षेऽपि सिध्यत्वित्यत आह–सुखेति । यद्यपि मरणकालीनदुःखजनकाधर्मजन्यत्वमस्ति, तथापि प्रकृष्टाधर्मजत्वं नास्तीत्यर्थः ।

[अ. टी.] एवं पृथिवीं निरूप्य जलं निरूपयति–स्नेहेति । अनित्यसमवेतसमुद्रादौ प्रवृत्तेस्सिद्धत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं नित्यसमवेतेत्युक्तम् । अत्रापि सरित्समुद्रत्वजात्योः प्रत्येकं व्यभिचारवारणाय सरित्समुद्रजातित्वादित्युक्तम् ।

आप्याः परमाणव इति पार्थिवानुमानवद्याकर्तव्यम् । पार्थिववदाप्यमपि शरीरं योनिजायोनिजमिति मन्वानं प्रत्याह–तच्चेति । करको वर्षोपलः । ननु प्रकृष्टादृष्टजन्यत्वेऽयोनिजत्वं प्रयोजकम्, तदत्र गमकत्वलक्षणं प्रयोजकत्वं व्याप्यभावान्नास्तीति तत्राह, अथवा योनिजत्वेनाभीष्टतरलाभ इत्याह–प्रकृष्टादृष्टजमिति । दृष्टान्ते प्रकृष्टमदृष्टमधर्माख्यम्, प्रकृते तु न तथेत्याह–तत्सुखभूयस्त्वादिति ।

उत्तरः शरीरेन्द्रियव्यतिरिक्तः । गन्धं विहाय स्नेहयुक्ताः पूर्वोक्ता एव चतुर्दश गुणाः ।

---

१ द्वित्वेति नास्ति छ. २ यदिति नास्ति च. ३ इति द्विमिति नास्ति छ. ४ प्रकारतयेति च. ५ पदमिदं नास्ति च पुस्तके. ६ इतः पदत्रयं नास्ति च पुस्तके. ७ इत्यप्रकृष्टेति च. ८ नेति नास्ति ञ पुस्तके. ९ एवमिति नास्ति झ. १० अनित्यावयवेति ज. ट. ११ समुद्रादाववप्रवृत्तेरिति झ, समुद्रादावप्रवृत्तेरिति ट. १२ अदृष्टजत्वे इति ज. ट. १३ पदमिदं नास्ति झ. १४ अभीष्टलाभ इति ज, अभीष्टतरलाभ इति ट. १५ संयुक्ता इति ञ. ट.

[वा. टी.] गुरुत्वसाधर्म्यादम्भो निरूपयति—स्नेहवदिति । सङ्ग्रहासाधारणगुणविशेषः स्नेह, तदधिकरणमित्यर्थः । न च द्रवत्वेनैव सङ्ग्रहो भविष्यतीति वाच्यम्, द्रवीभूतानामपि काचादीनाम-सङ्ग्राहकत्वात् । गुणत्वञ्च सातिशयादवगन्तव्यम्, ततो नासम्भवाशङ्का । योनिजत्वमपाकरोति—तच्चेति । अत्राप्यादिलेख हेतुः, कार्यपदन्तु व्यर्थम् । न चात्र चेतनानधिष्ठितत्वमुपाधि, मशकादि-शरीरेषु साध्याव्याप्तेः । गन्धहीनाः स्नेहयुता. सलिलस्याप्यमी गुणा मता इति ।

(तेजोलक्षणं तद्विभागश्च)

अगुरुत्वे सति रूपवत्तेजः । तन्नित्यानित्यभेदाद्द्वेधा । आद्यं परमाणुः । उत्तरं द्वेधा–नित्यसमवेतम् अन्यथा चेति । आद्यं द्व्यणुकम् । तेजस्त्वं नित्यसमवेतवृत्ति दीपसुवर्णजातित्वात्, सत्तावदिति परमाणुद्व्यणुकयो-स्सिद्धिः । नासिद्धं साधनम् । तेजस्त्वं सुवर्णवृत्ति दीपाणुजातित्वात्, सत्तावदिति साधनात् । उत्तरं शरीरादिभेदेन त्रेधा । पूर्वत्र प्रमाणम्—तैजसाः परमाणवः पारम्पर्येण शरीरारम्भकाः, स्पर्शवत्परमाणुत्वात्, पृथिवीपरमाणुवदिति शरीरसिद्धिः । तदयोनिजमेव, तेजःकार्यत्वा-द्दीपवदिति ।

[व. टी.] तेजस्त्वमिति । दीपश्चाणुश्च तद्वृत्तिजातित्वादित्यर्थः । अणुत्वे व्यभिचार-वारणाय दीपेति । दीपत्वे व्यभिचारवारणाय अण्विति । अणुदीपान्यतरत्वे व्यभि-चारवारणाय जातित्वादिति । यद्वा दीपस्याणुतद्वृत्तिजातित्वादित्यर्थः । न चाप्रयोजको हेतुः, सुवर्णस्य (तेजसश्च ? तेजस्त्वा)धकयुक्तीनामन्यत्र सुलभत्वात् ।

[अ. टी.] पृथिव्युदकयो रूपवतोर्व्यवच्छेदार्थम् अगुरुत्वे सतीत्युक्तम् । वाय्वादिव्यव-च्छेदार्थं रूपवत्पदम् । ननु तेजस्त्वस्य स्वर्णजातित्वासम्प्रतिपत्तेर्विशेषगुणासिद्धोऽयं हेतुरिति तत्राह–नासिद्धं साधनमिति । अणुजातित्वादित्युक्ते पृथिवीत्वादौ व्यभिचार-स्स्यादत उक्तम् दीपाणुजातित्वादिति । दीपारम्भका अणवो दीपाणवः । नन्नु तेजस्त्वं घटवृत्ति, उक्तहेतुदृष्टान्ताभ्यामित्यतिप्रसङ्गः । मैवम्; सुवर्णे शोष्यमाणे तेजस्सारतस्य प्रत्य-क्षत्ववद्घटस्य तदभावेनाप्रयोजकत्वादिति । तैजसमपि शरीरं नानेकविधमाप्यवदित्याह—तदयोनिजमेवेति । नन्वदितिकश्यपाभ्यां तैजसत्वेनाभिमतादित्यादि जन्ममरणविरुद्धमे-तत्, मैवम्; मधुविद्यादौ देवतानां सूर्यमण्डलस्थामृतोपजीविनीनां रुद्राणामेवैको मूर्त्वेत्या-दिना मातृपितृसम्बन्धमन्तरेण जन्मश्रवणात्, श्रुत्यादिविरोधे च पुराणप्रामाण्यानुपपत्तेः ।

१ तदिति नास्ति मु. २ नित्यानित्यसमवायादिति क. ग. ३ पूर्ववदिति घ. ४ कदाचिच्छरीरेति ग. ५ पदमिदं नास्ति क. ग. पुस्तकयो. ६ वायुत्व इति छ. ७ अयमिति नास्ति ज. ट. पुस्तकयोः. ८ नासिद्धसाधनमिति झ. ९ मैवमिति ज. ट १० तेजसारब्धत्वेति ट. ११ इत्यतीति नास्ति ज. ट. पुस्तकयोः. * छान्दोग्ये मधुविद्या द्रष्टव्या । १२ श्रुत्या विरोधे इति ज. ट. । † जैमिनिना प्रथमतृतीया-धिकरणे श्रुतिविरुद्धानां स्मृतीनां पुराणानाञ्चाप्रामाण्यं साधितम् ।

[वा. टी.] रूपित्वसाधर्म्यात्तेजो निरूपयति—**अगुरुत्वे सतीति**। घटनिवृत्तये **अगुरुत्व इति**। आकाशनिवृत्तये **रूपवदिति**। ननु सुवर्णादेर्नैमित्तिकद्रवत्वेन घृतादिवत्पार्थिवत्वासिद्धेरसिद्धो हेतुरित्याशङ्क्य नैमित्तिकद्रवत्वं तत्रैव पार्थिवत्वं नियमयेत्, यदि गन्धवत्त्वसहकृतं भवेत्। ये हि यज्जाता यन्नियामका धर्माः ते हि तत्समानाधिकृता दृष्टाः। यथा शीतोष्णादयः। न चैतत्प्रकृते प्रादेशिकत्वादस्येति मत्वाह—**नासिद्धमिति**। न हि प्रतिज्ञामात्रेणार्थसिद्धिरिति तत्र प्रमाणमाह—**तेजस्त्वमिति**। पृथिवीत्वनिवारणाय **दीपेति**। दीपत्वनिवारणाय **अण्विति**। अणुत्वनिवारणार्थं **जातीति**। अणवश्च दीपारम्भका एव।

*

(नयनेन्द्रिये प्रमाणम्)

नयनाख्येन्द्रिये प्रमाणम्—आलोकात्यन्ताभावे जायमानो रूपसाक्षात्कारस्तेजःकारणकः, रूपसाक्षात्कारत्वात्, सत्यालोके जायमानरूपसाक्षात्कारवत्। तद्गोलकस्थं नयनोन्मीलने सत्येवोपलब्धेः। आलोकाज्ञानं तम इत्याश्रयासिद्धिरिति चेत्—न; विधिमुखेन स्वातन्त्र्येण कृष्णाकारेण बहीरूपवत्तया प्रतीतेः।

[व. टी.] **आलोकात्यन्ताभावेति**। प्रदीपादिजन्यत्वेनार्थान्तरवारणाय सप्तम्यन्तम्। आलोकोन्योन्याभावस्थले आलोकादिजन्यत्वेनार्थान्तरवारणाय **अत्यन्तेति**। एवं घटत्वात्यन्ताभावस्थले सौरालोकादिजन्यत्वेनार्थान्तरवारणाय **आलोकेति**। आलोकसामान्यात्यन्ताभाव इत्यर्थः। आलोकः उद्भूतरूपवत्तेजः, उद्भूतरूपवन्महातेजो वा। तेन स्वमते चक्षुरादितेजस्सत्त्वेऽपि नाश्रयासिद्धिः। ईश्वरसाक्षात्कारस्य पक्षत्वेनांशतो बाधस्यात्तद्वारणाय **जायमान इति**। रससाक्षात्कारे बाधवारणाय **रूपेति**। रूपानुमितौ बाधवारणाय **साक्षात्कार इति**। न च ज्ञानोपनीतरूपविषयकमानससाक्षात्कारमादाय बाधः, तदतिरिक्तत्वेन पक्षस्य विशेषणात्। उद्देश्यसिद्धये **तेज इति**। रसादिसाक्षात्कारे व्यभिचारवारणाय **रूपेति**। रूपानुमितौ व्यभिचारवारणाय साक्षात्कारत्वमुक्तम्। ज्ञानादिप्रत्यासत्त्यजन्यरूपसाक्षात्कारत्वं हेतुः। न्यायमतमवष्टभ्यालोकाधिकरणे जायमानो रूपसाक्षात्कारः पक्ष इति केचित्। तेषां मते जायमानत्वादिविशेषणमुद्देश्यसिद्धये। तत्तेजः कुत्रेत्यत आह—**तद्गोलकस्थमिति**। हेतुमाह—**नयनेति**। नयनपदं गोलकाभिधायि। एतावता नयनविस्फारणमपि गोलकस्थतेजसः सहकारीति भावः। नयनगतिप्रतिबन्धकाभावतया तदुपयोगितया वा तदुपयोगः। **आलोकाज्ञानमिति**। तथाच तमसो द्रव्यत्वाभावेन किंगतरूपसाक्षात्कारः पक्ष इत्यर्थः। भट्टमताश्रयणेन प्राभाकरमतमुपमर्दयति—**विधीति**। भावतया प्रतीयमानत्वादित्येको हेतुः।

१ उपलभ्यत इति मु. २ अत्यन्ताभावेति छ. ३ उद्भूतानभिभूतरूपेति छ. ४ इति वादिनो मत इति छ. ५ प्रत्यक्षत्वेनेति छ. ६ आलोकाभावेति च. ७ गोलकपरमिति च. ८ स्वपदार्थेयतीति छ. ९ भावरूपवत्वेति च.

भावत्वभ्रमगोचरेऽभावे व्यभिचारी, भावत्वप्रकारकप्रमाविषयत्वमन्यतरासिद्धम्, भावत्वप्रकारकाप्रमाविषयत्वे विरुद्धमत आह–स्वातन्त्र्येणेति । ननु स्वातन्त्र्यं किम्? प्रतियोग्यनपेक्षनिरूपणत्वञ्चेत्तर्ह्यसिद्धिः । विशेषणत्वेनाप्रतीयमानत्वं यदि, तदाप्यसिद्धिः । अन्धकारवद्भूतलमिति प्रतीतौ तस्य विशेषणत्वात् । भूतले घटाभाव इति प्रतीतिविषयेऽभावे व्यभिचारश्च । एवं स्वातन्त्र्यं विशेष्यत्वमित्यपि परास्तम् । न च स्वातन्त्र्यमन्याविषयकप्रतीतिविषयकत्वम्, अन्यविषयकप्रतीत्यविषयकत्वं वा, असिद्धेः । अन्धकारादीनामप्यन्धकारत्वगोचरप्रतीतिविषयत्वात् । न चासमवेतत्वं विशेष्यत्वम्, भावत्ववादिनो नयेऽसिद्धेरित्यत आह–कृष्णाकारेणेति । नीलत्वेन प्रतीयमानत्वादित्यर्थः । तथाच तमो नाभावः, भावो वा द्रव्यं वा, नीलत्वात् नीलघटवदिति प्रयोगार्थः । आलोकज्ञानाभावश्चान्तरः, बाह्यपदार्थरूपतया प्रतीतिर्न स्यात् । अस्ति च तत्प्रतीतिरित्याह–बहीरूपवत्तयेति ।

[अ. टी.] नयनाख्यं तैजसमिन्द्रियम् । तत्र प्रमाणम् आलोकेत्यादि । सौराद्यालोकाभावेऽपि[11] दीपाद्यालोकजन्यो रूपसाक्षात्कारस्सिद्धोऽस्तीत्यत उक्तम्–अत्यन्ताभावेति । स्पर्शादिसाक्षात्कारे व्यभिचारवारणाय रूपपदम् । कुतस्त्यं रूपपदं साक्षाद्भवतीति तत्राह–तद्गोलकस्थमिति । अतिसामीप्यान्नयनरूपोपलब्धिर्न युक्ता । अथ नीलं रूपं तमोगतमुपलभ्यते । नैवम्; तस्य भावत्वासम्प्रतिपत्तेः । तदाह–आलोकाज्ञानमिति । अथवा तस्य नेत्रेन्द्रियस्यालोकवद्गोलकादन्यत्र वृत्तिं प्रतिषेधति–तद्गोलकस्थमिति । अनुमानमाक्षिपति–आलोकाज्ञानमिति । पक्षीकृतरूपसाक्षात्कारस्यासिद्धत्वादाश्रयासिद्धिः[15] । तमःप्रतीतेरभावप्रतीतेर्वैलक्षण्यान्नाभावत्वं तमस इत्याह–न विधिमुखेनेति । तमो ध्वान्तमित्यत्र नञुल्लेखाभावाद्घटाभाव इत्यादिवत्प्रतियोगिपारतन्त्र्याभावाच्च । नीलं तम इति कृष्णाकारप्रतीतेर्नीलघटादिप्रतीतिवत्तस्या बहिर्मुखत्वाच्च ।

[वा. टी.] आलोकेति । अपवरकान्तर्वर्त्यालोकाभावे रूपग्रहणस्य सौराद्यालोककारणत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय अत्यन्तेति । सर्वालोकाभाव इत्यर्थः । आलोकात्यन्ताभाव इति विषयसप्तमी, स्पर्शादिसाक्षात्कारनिराकरणाय रूपेति । युक्तयोगिपरमाणुसाक्षात्कारनिराकरणाय अस्मत्पदं द्रष्टव्यम् । किं निष्ठं तर्हि तत्तेज इत्यत आह–तदिति । नयनोन्मीलनेति । नयनसम्बन्धिपक्ष्मोत्क्षेप इति यावत् । उपलब्धेः रूपादिप्रकाशादित्यर्थः । अत्र कश्चिदाक्षिपति–आलोकाज्ञानमिति । आलोकज्ञानाभाव इत्यर्थः । आश्रयासिद्धिरिति । पक्षीकृतरूपसाक्षात्कारस्य तत्रा-

---

१ प्रकारकप्रमेति च. २ इत आरभ्य विरुद्धमित्यन्तं नास्ति छ. ३ इह भूतल इति च. ४ स्वासिद्धेरिति छ. ५ न च समवेतत्वे सतीति च. ६ अभावत्वेति च. ७ इत्यर्थं इत्यधिकं च. ८ पटवदिति च. ९ पदार्थतयेति च. १० तत्प्रतीतिरिति च. ११ तत्र चेति ज. ट. १२ अपीति नास्ति झ १३ निषेधतीति ज. ट. १४ पक्षीकृतस्येति ज, पक्षीभूतस्येति ट. १५ इति चेत्येत्यधिकं ट. १६ प्रतीतिवैलक्षण्यादिति ज, पदमिदं नास्ति ट १७ कृष्णाकारेति नास्ति झ. १८ पटादीति ज. ट. १९ तस्य बहिरिति झ.

भावादिति भावः । दूषयति–नेति । तमो यदि ज्ञानाभावः स्यात्तर्हि भावत्वेन प्रतियोगिज्ञाननिरपेक्षेण नीलरूपत्वेन ज्ञानाभावस्य चान्तरत्वाद्बहिष्ट्वेन च या प्रतीतिस्सा न भवेत् । अस्ति च तत्त्वेन प्रतीतिरित्यर्थः ।

*

(तमसोऽद्रव्यत्वनिरूपणम्)

अत एव नालोकाभावस्तमः । आलोकाभावस्तम इति वदतोऽपि मते आरोपितनीलरूपप्रतीतेस्सत्त्वान्नाश्रयासिद्धिः । न द्रव्यं तमः, असत्येवालोके चक्षुषा प्रतीयमानत्वात्, आलोकाभाववदिति प्रमाणोपपत्तेः । कृष्णरूपं तमो द्रव्यमिति वदतो मते रूपप्रतीतेः सत्वान्नाश्रयासिद्धिः । तदतिरिक्तो भौमादिः विषयः । रूपाद्येकादशगुणवत् ।

[व. टी.] अत एवेति । भावत्वादिसाधकयुक्तेरेवेत्यर्थः । अभावत्ववादिमतेऽप्याश्रयासिद्धिं परिहरति–आलोकाभावस्तम इति । नन्वेवं भट्टमताङ्गीकारेण कणभुङ्मतावलम्बिनोऽप्यपसिद्धान्त इत्यत आह–तमो न द्रव्यमिति । घटादौ व्यभिचारवारणाय असत्येवालोक इति । पुनरप्यालोकनिरपेक्षत्वञ्जन्यग्रहविषये घटादौ व्यभिचारवारणाय चक्षुषेति । अस्मदादिचक्षुषेत्यर्थः । तेनालोकनिरपेक्षमार्जारादिचक्षुर्ग्राह्यत्वेऽपि न व्यभिचारः । यद्वा मार्जारादिगोलकसम्बद्धसामर्थ्यवशात् तदेकचक्षुर्मात्रसहकारि तेजोऽस्त्येवेति बोध्यम् । यत्राप्यौषधादिलेपं कृत्वा तस्करा वस्तु पश्यन्ति, तत्राप्यौषधलेपेन तेजोऽन्तराकर्षणमेवेति पर्यालोचनीयम् । द्रव्यत्ववादिमते सुतरां नाश्रयासिद्धिरित्युक्तमेवेत्याह–इति वदत इति ।

[अ. टी.] बहलोऽन्धकारो विरलोऽन्धकार इति तारतम्यप्रतीतेर्भावप्रतीतेश्च तद्वैलक्षण्यं प्रसिद्धम् । ततो नालोकग्रहणाभावस्तमः, किन्तु घटादिवद्भावरूपमेव, तर्ह्यपसिद्धान्त इत्यत आह–आलोकाभाव इति । आलोकाभावस्तम इति मते न तावदालोकाज्ञानं तम इति विशेषः[10] । तर्हि कथं रूपसाक्षात्कारलक्षणधर्मिलाभ इत्यत आह–आरोपितेति । आलोकाभावे स्मर्यमाणं नीलरूपारोपस्वीकाराद्रूपप्रतीतिर्धर्मिलाभो विधिमुखप्रतीत्याद्युपपत्तिश्च । सिद्धे ह्यभावत्वे तमस आलोकाभावत्वं वाच्यम् । [11]तदेव कुत इत्यत आह–असत्येवेति । तमो न भावरूपमालोकनिरपेक्षचक्षुर्ग्राह्यत्वात्, यथालोकाभाव इत्यनुमानम् । तमो न द्रव्यमिति पाठे सप्तमद्रव्यत्वेनाभावत्वम् । ततो न स्वमत आश्रयासिद्धिः । परमते तु तदभाव उक्त एवेत्याह–कृष्णरूपमिति । भौमं तेजो वन्हिः । आदिशब्दादाकरजादि । पूर्वोक्तचतुर्दशगुणमध्ये स्नेहरसगुरुत्ववर्जमेकादश गुणाः ।

१ आलोकाभावस्तमः । आलोकाभावस्तमो न द्रव्यमिति वदत इति मु. २ नीलेति नास्ति क. ख. ग. घ. पुस्तकेषु. ३ न तमो द्रव्यमिति मु. ४ भावत्वसाधकेति घ. ५ तमसो भावरूपताङ्गीकारेणेति घ. ६ अपीति नास्ति घ पुस्तके. ७ बहुल इति ट. ८ पदमिदं नास्ति ट. पुस्तके. ९ मतेऽपीति ज. ट. १० इति शेष इति ज. ट. ११ तदेतदिति ट. १२ द्रवत्वेति स.

[वा. टी.] ननु भवत्पक्षेऽपि नाङ्कं धारयतीत्याह—**अत एवेति**। अत एवोक्तदूषणसाम्यादेव। तथा चाभावे रूपं भवति। तत्राश्रयासिद्धिं तावत्परिहरति—**आलोकेति**। अपिरेवार्थो नञन्वितः। आलोकाभावस्तम इति वदतो मते नैवाश्रयासिद्धिरित्यन्वयः। हेतुमाह—**आरोपितेति**। विशेषादर्शनसध्रीचीनं सामान्यदर्शनमारोपे निमित्तम्। तच्चक्तेऽप्यस्तीति न किञ्चिदनुपपन्नम्। अनेन स्वमते कृष्णाकारप्रतीतेरप्युपपत्तिस्सूचिता। प्रतिवादिनस्तु आरोपाभावात्कृष्णप्रतीतिर्न भवत्येवेति भावः। विधिमुखमप्यसिद्धम्। न हि तत्राप्रयोग इत्येवंविधः, अन्तर्णीतनञर्थेनापि पदेन प्रयोगसम्भवात्। प्रलयादिशब्दवत्स्वातन्त्र्यमप्यसिद्धम्, आलोकग्रहणे सत्येव तमोग्रहणात्, अन्यथा जात्यन्धस्य तमोबुद्धिप्रसङ्गादिति। स्वमतदार्ढ्यार्थं परमतं प्रतिक्षिपति—**न द्रव्यमिति**। **असत्येवालोक इति**। सत्यालोकाभाव इति यावत्। मतान्तरेणाश्रयासिद्धिं परिहरति—**कृष्णरूपमिति**। अस्मिन् मते आलोकात्यन्ताभाव इति भावसप्तमी। रसगन्धगुरुत्वहीनास्त एव गुणाः।

(वायुलक्षणं तद्विभागश्च)

रूपासहचरितस्पर्शवान् वायुः। स नित्यानित्यभेदेन[1] द्वेधा। पूर्वः परमाणुः। उत्तरो द्वेधा—नित्यसमवेतोऽन्यथा चेति। आद्यो द्व्यणुकम्। वायुत्वं नित्यसमवेतवृत्ति, स्पर्शवद्वृत्तद्रव्यत्वावान्तरजातित्वात् पृथिवीत्ववदिति परमाणुद्व्यणुकयोस्सिद्धिः। उत्तरश्शरीरादिभेदेन[3] त्रिधा भिद्यते। वायवीयाः[4] परमाणवः पारम्पर्येण शरीरारम्भकाः[5] स्पर्शवत्परमाणुत्वात् पृथिवीपरमाणुवदिति[6] शरीरसिद्धिः[7]। तदयोनिजं वायुकार्यत्वात् त्वगिन्द्रियवत् इति। वायवीयाः परमाणवः पारम्पर्येणेन्द्रियारम्भकाः स्पर्शवत्परमाणुत्वात् तेजःपरमाणुवदिति त्वगिन्द्रियसिद्धिः। तदन्यो विषयः।

[व. टी.] **रूपासहचरितेरिति**। घटादावतिव्याप्तिवारणाय **रूपासहचरितेति**। आकाशादावतिव्याप्तिवारणाय **स्पर्शवानिति**। रूपात्यन्ताभावाधिकरणत्वे सति स्पर्शात्यन्ताभावानधिकरणं वायुरित्यर्थः। **स्पर्शवदिति**। घटसंरिदन्यतरत्वे व्यभिचारवारणाय **जातित्वादिति**। घटत्वे व्यभिचारवारणाय **द्रव्यत्वावान्तरेति**। द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्येत्यर्थः। पृथिवीत्वसाक्षाद्व्याप्यं घटत्वं भवत्येवेत्यत आह—**द्रव्यत्वेति**। आत्मत्वे व्यभिचारवारणाय **स्पर्शवदिति**। घटजलद्वित्वे[12] व्यभिचारवारणाय जातिपदार्थान्तर्गतनित्यत्वभागः। विशेषत्वादिना रूपेण द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यविशेषादौ व्यभिचार-

१ नित्यानित्यभेदभिन्न इति क. २ गवत्वे सतीति मु. ३ उत्तरस्त्रेधा शरीरादिभेदेनेति मु. ४ वायुपरमाणव इति क, ख, ग, घ. ५ कदाचिच्छरीरेति ग. ६ तेजःपरमाणुवदिति मु. ७ वायुशरीरेति ग. ८ वायुत्वादिति ख, घ, मु. ९ कदाचिदिति ग. १० रूपादाविति घ. ११ पदेवि घ. १२ घटस्थूलजलेति घ.

वारणाय जातिपदार्थान्तर्गतानेकत्वभागः। प्रतिज्ञातार्थविचारः पूर्ववत्। वायुकार्यत्वादिति। अयोनिजत्वं योनिं विना जायमानत्वम्। तेन वायुपरमाणौ व्यभिचारवारणाय कार्यत्वादिति।

[अ. टी.] पृथिव्यादिव्यवच्छेदार्थं रूपासहचरितेति पदम्। जातित्वमवान्तरजातित्वञ्च घटत्वादौ व्यभिचरतीति द्रव्यत्वपदम्। मनस्त्वात्मत्वयोर्व्यभिचारवारणाय स्पर्शवद्वृत्तेति। स्पर्शवद्वृत्तत्वादित्युक्ते परमाणुगुणादौ व्यभिचारस्स्यादत उक्तं स्पर्शवद्वृत्तजातित्वादिति। एतावत्युक्ते घटत्वादौ व्यभिचारस्स्यादत उक्तम्–द्रव्यत्वेति। त्वगिन्द्रियमेव कुतस्सिद्धम्? तत्राह–वायवीया इति। इन्द्रियस्य मध्यमपरिमाणत्वेन द्व्यणुकाद्यारम्भपूर्वकत्वात् पारम्पर्येणेत्युक्तम्। तदन्यः शरीरेन्द्रियव्यतिरिक्तो वायवीयो विषयः।

[या. टी.] स्पर्शवत्त्वादिसाधर्म्याद्वायुं लक्षयति–रूपेति। घटनिवृत्तये रूपेति। आकाशनिवृत्तये स्पर्शेति। घटत्वादिनिवृत्तये द्रव्येति। मनस्त्वादिपरिहाराय स्पर्शवद्वृत्तेति।

*

(वायोः प्रत्यक्षत्वाप्रत्यक्षत्वविचारः)

त्वगिन्द्रियम् अरूपिद्रव्यग्राहकम्, अरूपित्वे सति द्रव्यग्राहकेन्द्रियत्वात् मनोवदिति वायोः प्रत्यक्षत्वसिद्धिरिति चेत्–न; मूर्तत्वे सति सर्वदास्पर्शवत्त्वस्योपाधित्वात्। विप्रतिपन्नो वायुरप्रत्यक्षः वायुत्वात् त्वगिन्द्रियवत्। स्पर्शादि नवगुणवान्।

[व. टी.] त्वगिन्द्रियमिति। मनसा सिद्धसाधनवारणाय चक्षुषा बाधवारणाय च त्वगिति। शरीरसहजावरणभूतायां त्वचि अर्थान्तरत्वभङ्गाय इन्द्रियमिति। अरूपिद्रव्यग्राहकत्वन्तु न रूपिद्रव्यग्राहकत्वविरहः, त्वचो घटग्राहकत्वेन बाधात्, वायुग्राहकत्वासिद्धेश्च। किन्तु अरूपि यद्द्रव्यं तद्ग्राहकत्वमित्यर्थः। आकाशादौ त्वक्पुरस्कार्यगुणाभावेनाग्राहकत्वंसिद्धौ पक्षधर्मतावलेन वायुग्राहकत्वसिद्धिः। घटादिग्राहकत्वेनार्थान्तरवारणाय अरूपीति। रूपात्यन्ताभाववदित्यर्थः। स्पर्शग्राहकत्वेनार्थान्तरवारणाय द्रव्येति। अरूपिद्रव्यानुमापकत्वेनार्थान्तरवारणाय ग्राहकत्वं विषयजन्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षजनकत्वं साध्यम्। चक्षुषि व्यभिचारवारणाय अरूपित्वेति। श्रोत्रे व्यभिचारवारणाय द्रव्यग्राहकेति। अनुमानविधया रूपित्वे सति द्रव्यग्राहकं श्रोत्रं भवति। न

---

१ गताधारगतानेकेति घ. २ व्यपोहार्थमिति ट. ३ चरितपदमिति ञ. ट. ४ द्रव्यपदमिति ट. ५ उक्तेऽपीति ञ. ट. ६ वायुप्रत्यक्षत्वेति ख, ग, घ. ७ स्पर्शशून्यत्वस्येति ग, मु. ८ अर्थान्तरभङ्गायेति घ. ९ घटादीति घ. १० भावेन ग्राहकत्वासिद्धाविति घ. ११ रूपिद्रव्यग्रहप्रागभावश्च रूपिद्रव्यग्रहकारणं भवतीत्यधिकं च पुस्तके.

चोक्तरूपं साध्यं तत्र, अत आह–इन्द्रियत्वादिति । द्रव्यप्रत्यक्षजनकत्वादित्यर्थः । इन्द्रियत्वपुरस्कारो विवक्षित इति वा । तेन न[1] कालादावुक्तासाधारण्यघटितसाध्याभावेऽपि व्यभिचारः । मूर्तत्व इति । मनसि साध्यमस्ति, मूर्तत्वे सति सर्वदा स्पर्शशून्यत्वमुपाधिश्चास्ति । पक्षे च साधनवति नास्तीति साधनाव्यापकः । पक्षेऽपि प्रथमक्षणे स्पर्शशून्यत्वमस्तीति साधनव्यापकतानिराकरणाय सर्वदेत्युक्तम् । सर्वदा स्पर्शशून्यत्वं गुणादौ, न च साध्यमिति समव्याप्तिभङ्गभङ्गाय सत्यन्तम् । कालादौ परिमाणवत्त्वे सति सर्वदा स्पर्शशून्यत्वमस्ति, न च साध्यमिति दोषतादवस्थ्यदुःस्थितायै मूर्तत्वमवच्छिन्नपरिमाणत्वरूपमुक्तम् । स्वमतमाह–विप्रतिपन्न इति । अत्रानुकूलतर्कौ बहिर्द्रव्यप्रत्यक्षताप्रयोजकोद्भूतरूपत्वादुत्थाप्यो बोध्यः । ननु शरीराद्यारम्भकत्वानुमानेषु पृथिवीपरमाण्वादिपक्षकेष्वंशतो बाधः, घटारम्भकपरमाणूनां शरीराद्यनारम्भकत्वादिति चेत्–न; तेषामपि शरीराद्यारम्भणयोग्यताया अनुद्भूतरूपाद्युत्पत्तिदशायां घ्राणारम्भणोपपत्तेः । न चोद्भूतरूपादिजलपरमाण्वादिना कथमनुद्भूतरूपादिरसनाद्यारम्भ इति वाच्यम् । तप्तकटाहतैलतेज इव निमित्तभेदवशेन विजातीयारम्भकत्वस्यापि स्वीकारात् । यद्वा सर्वेऽपि परमाणवोऽनुद्भूतरूपा एव निमित्तभेदवशेन विजातीयारम्भकाः, यद्वा पृथिवीत्वं शरीरारम्भकवृत्ति स्पर्शवद्वृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातित्वादित्यनुमाने तात्पर्यमिति दिक् ।

[अ. टी.] स केन गृह्यत इत्यपेक्षायां पूर्वपक्षं तावदाह–त्वगिन्द्रियमिति । घटादिग्राहकत्वेन सिद्धसाधनताव्यवच्छेदार्थम् अरूपिपदम् । स्पर्शग्राहकत्वेनोक्तदोषव्युदासार्थं द्रव्यपदम् । घ्राणादौ व्यभिचारवारणाय द्रव्यग्राहकेति पदम् । चक्षुषा व्यभिचारवारणार्थम् अरूपित्वे सतीत्युक्तम् । अरूपित्वादित्युक्ते रूपादौ व्यभिचारः, तत इन्द्रियत्वादित्युक्तम् । अरूपीन्द्रियत्वादित्युक्ते श्रोत्रे[11] व्यभिचारस्स्यात्ततो द्रव्यग्राहकेत्युक्तम् । अरूपित्वे सति द्रव्यग्राहकत्वादित्युक्ते चक्षुराद्यनुमाने व्यभिचारस्स्यात्ततं इन्द्रियपदम् । सोपाधिको[13]ऽयं हेतुरन्यथासिद्ध इति परिहरति–नेति । गुणादेरस्पर्शवत्त्वेऽप्यरूपिद्रव्यग्राहकत्वाभावात्साध्याव्यापकत्वं मा भूदिति मूर्तत्वे सतीत्युक्तम् । मूर्तत्वादित्युक्ते पक्षेऽपि सद्भावेन साधनव्यापकता स्यात्तेनास्पर्शवत्त्वग्रहणम् । अथवा मूर्तत्वेऽपि चक्षुरादावुक्तसाध्याभावादेतदुक्तम् । ननु शब्दस्यारूपिद्रव्यग्राहकत्वेऽपि मूर्तत्वे सत्यस्पर्शवत्त्वाभावेन साध्यैव्यापकत्वं स्यात् । साधनाव्यापकत्वे सति साध्यसमव्यापकश्चोपाधिः । मैवम्; ग्राहकशब्देन साक्षात्कारजनकत्वस्य विवक्षितत्वात् । मूर्तत्वे सति स्पर्शशून्यत्वं पाकावस्थायां

१ नेति नास्ति च पुस्तके. २ असाधारणाघटितेति च. ३ अनुकूलतर्क इति च. ४ घटादीनि च. ५ आरम्भोपपत्तेरिति च. ६ तैलस्येति च. ७ अनुद्भूता एवेति च. ८ स्पर्शवद्वृत्तीति नास्ति च पुस्तके. ९ साधनस्येति ज, ट. १० निरासार्थमिति ज, ट. ११ श्रोत्रेणेति ज, ट. १२ अत इति ज, ट. १३ सोपाधिहेतुरिति ट. १४ असाध्यव्यापकत्वमिति ज, ट.

पार्थिवाणुषु विद्यते, न च साध्यम्। ततो न समव्याप्तिलाभ इत्यत उक्तम्-सदेति। परपक्षं प्रतिक्षिप्य स्वपक्षे प्रमाणमाह-विप्रतिपन्न इति । विप्रतिपन्नो विषयरूपः। स्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्ववेगाख्या नव गुणाः।

[वा. टी.] घटादिना सिद्धसाधनवारणाय अरूपीति। स्पर्शे सिद्धसाधनवारणाय द्रव्येति। श्रोत्रेऽतिव्याप्तिपरिहाराय द्रव्यग्राहकेति । चक्षुष्यतिव्याप्तिपरिहाराय अरूपिग्राहकेति । लिङ्गेऽतिव्याप्तिपरिहाराय इन्द्रियेति। साधनव्याप्तिपरिहाराय स्पर्शेति। आकाशादौ साध्याव्याप्तिपरिहाराय मूर्तस्य इति। पाकावस्थपरमाणुनिवृत्तये सदेति। यत्राऽवयविसहितद्रव्यप्रत्यक्षत्वं तत्र तद्गतसंख्यादीनामपि प्रत्यक्षत्वमिति व्याप्तेर्निरवयवत्वात्प्रकृते च तदभावान्न प्रत्यक्षत्वमिति बाधकतर्कोऽप्यनुसन्धेयः। स्पर्शादिसंस्कारान्ता नव गुणाः।

*

(आकाशनिरूपणम्)

शब्दवदाकाशम्। तत्र प्रमाणम्-शब्दोऽष्टद्रव्यातिरिक्तसमवेतः, सत्त्वे सति श्रोत्रग्राह्यत्वात्, शब्दत्ववदिति। विप्रतिपन्नाः शब्दाः श्रूयमाणशब्दाश्रयाश्रयाः शब्दत्वात्, श्रूयमाणशब्दवत् इत्येकत्वसिद्धिः।

[वा. टी.] शब्द इति। पृथिव्यादिसमवेतत्वेनार्थान्तरवारणाय अतिरिक्तान्तम्। पृथिव्याद्यन्यतिरिक्तं भवत्वेवेत्यत उक्तम् द्रव्येति। बाधवारणाय अष्टेति। गुणादिसम्बन्धत्वेनार्थान्तरवारणाय समवेत इति। प्रतियोगिनिविष्टत्वाद्द्रव्येति न व्यर्थम्। रूपे व्यभिचारवारणाय श्रोत्रग्राह्यत्वादिति। शब्दध्वंसादौ व्यभिचारवारणाय सत्त्व इति। भावत्व इत्यर्थः। अत्र पक्षधर्मताबलादष्टद्र (व्यत्वा ? व्या) तिरिक्ते द्रव्यत्वं सिध्यति। दृष्टान्ते शब्दत्वेऽष्टद्रव्यातिरिक्तशब्दवृत्तित्वम्। अत्र पृथिवीत्वादिरूपेणाष्टौ द्रव्याण्युभयवादिसिद्धानि ग्राह्याणि। तेनाष्टघटाद्यतिरिक्तपटादिवृत्तित्वेन नार्थान्तरम्। न वा गगनस्य यत्किञ्चिदष्टद्रव्यनिवेशितत्वया बाधः। ननु यथा नानारूपाणां नानाधिकरणानि, तथा शब्दानामपि नानाधिकरणता स्यादित्यत आह-विप्रतिपन्ना इति। ननु सर्वशब्दस्यैकाधिकरणत्वेऽग्रहप्रसङ्ग इति चेत्-न; कर्णशष्कुल्यवच्छिन्ननभसा तद्ग्रहस्वीकारात्। यद्वा नभोमात्रं श्रोत्रं सर्वेषामेकमेव। न चातिप्रसङ्गः, शब्दकारणीभूतवायुसंयोगस्य कर्णशष्कुलीनिष्ठस्य शब्दसाक्षात्कारजनने श्रोत्रसहकारित्वात्। प्रथमपक्षे पक्षोऽपि एतत्कारभिन्नो बोध्यः, तेन स शब्दः केनचिच्छ्रूयत एव, निष्प्राणिकस्य प्रदेशस्य वक्तुमशक्यत्वात्। एवमेकेनापि कयाचित्प्रत्यासत्त्या सर्वशब्दः श्रूयत इत्याश्रयासिद्धिर्वारिता।

१ पदमिदं नास्ति ट पुस्तके. २ भावनावेगेति झ. ३ शब्दवदिति मु. ४ इति शब्दत्वं सिद्धमिति मु, इत्येकत्वं तस्य सिद्धमिति क. ५ पृथिव्याद्यष्टातिरिक्तमिति च. ६ सम्बन्धेनेति च. ७ द्रव्येति न व्यर्थमिति नास्ति च पुस्तके. ८ घटातिरिक्तेति च. ९ निवेशितत्वयेति च. १० पुरुषेणेति च. ११ वादिकृता न प्रथमपक्षे इति च पुस्तके.

भेरीशब्दो मया श्रुत इति धीस्तु भेरीजन्यशब्दप्रयोज्यशब्दविषयकत्वविषया। बधिरस्य तु शब्दग्रहो न भवति, तदुपग्राहकादृष्टाभावात् । श्रूयमाणशब्दातिरिक्ता इति पक्षार्थः । श्रूयमाणशब्देनांशतः सिद्धसाधनवारणाय श्रूयमाणातिरिक्ता इत्युक्तम् । रूपादिना शब्दत्वेन च बाधभङ्गाय शब्दा इति । श्रूयमाणशब्दस्य य आश्रयस्य आश्रयो येषां त इत्यर्थः । अर्थान्तरवारणाय श्रूयमाणेति। मया श्रूयमाणोऽयं ककारः तदधिकरणवृत्तय इत्यर्थः । न च ते ते शब्दाः तत्तदाकाशवृत्तयस्सन्तु एतत्ककाराश्रयाभिन्नाकाशे वर्तन्तामिति वाच्यम्, गौरवात्, तेषां ग्रहापत्तेश्च। (१) स्वस्याश्रयत्वे आश्रयाश्रयत्वे शब्दाश्रयाश्रयत्वे चार्थान्तरवारणाय श्रूयमाणेति ।

[अ. टी.] शब्दस्य समवेतत्वसाधनेऽष्टद्रव्यान्यतमद्रव्याश्रयत्वेन सिद्धसाधनता बाधो वा स्यादत उक्तम् **अष्टद्रव्यातिरिक्तेति**। अष्टद्रव्यव्यतिरिक्तत्वमात्रसाधने स्फुटा सिद्धसाधनता, ततः **समवेतपदम्**। सत्त्वादित्युक्ते रूपादौ व्यभिचारस्स्यादतः **श्रोत्रग्राह्यत्वादि**त्युक्तम् । श्रोत्रग्राह्यत्वादित्युक्ते शब्दान्योन्याभावे व्यभिचारस्स्यादतः **सत्त्वे सतीति**। सत्त्वशब्देन भावत्वं विवक्षितम् । ननु शब्दानामनेकत्वेन रूपाद्याश्रयघटादिवदाकाशानेकत्वं प्रसक्तम्, तत्राह–**विप्रतिपन्ना इति**। एकशब्दश्रवणकालेऽश्रूयमाणाश्शब्दाः विप्रतिपन्नाः। शब्दाश्रया इत्युक्ते शब्दानां शब्दाश्रयत्वाभावेन बाधस्स्यादत उक्तम् **शब्दाश्रयाश्रयां इति**। तथापि तेषां यो भिन्न आश्रयस्तदाश्रयत्वे सिद्धसाधनता, तत्परिहारार्थं **श्रूयमाणेति**। अतस्सर्वशब्दानामेकाश्रयाश्रितत्वादाकाशैकत्वं सिद्धम् ।

[वा. टी.] परिशिष्टं भूतं स्पष्टयति–शब्दवदिति । भावत्वे सति शब्दात्यन्ताभावाधिकरणमित्यर्थः। सिद्धसाधननिवृत्तये **अष्टद्रव्यातिरिक्तेति**। एतच्चानुमानं सामान्यरूपत्वेन सोपाधिकमिति पदान्तरप्रक्षेपोत्क्षेपाभ्यां व्याख्येयम् । तद्यथा–शब्दोऽष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यसमवेतः, गुणत्वे सति श्रोत्रग्राह्यत्वात्, व्यतिरेके शब्दत्ववदिति न चाप्रसिद्धविशेषणत्वम् (?) शब्दस्य तावत्कर्मत्वासहचरितसामान्यैकसमवायित्वेन गुणत्वं प्रसिद्धम्, गुणत्वेनाश्रयस्याश्रयम्भावात्पार्थिवाणुगुणानां यावद्द्रव्यभावित्वेन वा श्रोत्रग्राह्यत्वेन वा स्पर्शवदनाश्रयत्वादिविशेषगुणत्वेन कालाद्यसमवेतत्वान्नियतत्वाले न्द्रियग्राह्यत्वेनात्माश्रयत्वानुपपत्तेरतिरिक्तस्य सामान्यतः प्रसिद्धत्वादिति । विशेषगुणत्वञ्च सामान्याश्रयत्वे सति नियतबाह्यैकेन्द्रियग्राह्यत्वान्मन्तव्यम् । शब्दाभावनिवृत्तये **गुणत्वेति** । रूपनिवृत्तये **श्रोत्रेति** । भूतत्वात्प्राप्तमनेकत्वं वारयति–**विप्रतिपन्ना इति** । विप्रतिपन्नाः श्रूयमाणेतराः । भिन्नाश्रयत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय **श्रूयमाणेति**। बाधनिवारणार्थम् **आश्रयेति** ।

*

१ इत्यर्थ इति घ. २ इत आरभ्य श्रूयमाणेतीति पर्यन्तं व्यतिक्रमः पङ्क्तीनां समुपलभ्यते घ पुस्तके. ३ आश्रयत्वेति ट. ४ पदमिदं नास्ति श पुस्तके. ५ अत उक्तमिति ज, ट. ६ स्याश्रयेति ट. ७ तेषां शब्दानामिति ज, ट. ८ न सिद्धसाधनता इत्यत उक्तमिति ज, ट.

(आकाशस्य नित्यत्वम्)

आकाशं नित्यम्, असमवेतभावत्वात्, समवायवदिति नित्यत्वं सिद्धम्। तदेवेन्द्रियं श्रोत्रं नाम, शब्दोपलब्धिर्भूतेन्द्रियकरणिका रूपशब्दयोरन्यतरसाक्षात्कारत्वाद्रूपसाक्षात्कारवत् इति पारिशेष्यात्सिद्धम्। परिशेषस्तु–विप्रतिपन्नाः शरीरावयवा नयनादयश्च तद्ग्राहका न भवन्ति, कार्यत्वाद्घटवदिति। न कालादयस्तद्ग्राहकाः, अजसंयोगनिराकरणात्। शब्दादिषड्गुणकम्।

[व. टी.] अस्मदादिबाह्येन्द्रियग्राह्यगुणाधारत्वेन प्रसक्तमनित्यत्वं वारयितुं नित्यत्वं साधयति–आकाशमिति। घटादौ व्यभिचारवारणाय असमवेतेति। प्रागभावे व्यभिचारवारणाय भावत्वादिति। न चाकाशत्वमिन्द्रियारम्भकवृत्ति भूतलावृत्तिद्रव्यविभाजकत्वादित्यत आह–तदेवेति। लाघवादेकमेवाकाशं कर्णशष्कुल्यवच्छेदेनेन्द्रियमनुमानत्वप्रयोजकमित्यर्थः। तत्रानुमानं प्रमाणयति–शब्दोपलब्धिरिति। रूपाद्युपलब्धौ सिद्धसाधनवारणाय शब्देति। जन्यशब्दसाक्षात्कार इत्यर्थः। मनसार्थान्तरवारणाय भूतेति। शरीरादिनार्थान्तरवारणाय इन्द्रियेति। असाधारणकारणत्वेनोद्देश्यसिद्धये कारणेति। रूपसाक्षात्कारत्वादित्येतावन्मात्रोक्तावसिद्धिः। शब्दसाक्षात्कारत्वादित्युक्तौ च साधनवैकल्यम्। साक्षात्कारतामात्रोक्तौ सुखादिसाक्षात्कारे व्यभिचारः। अतो विशिष्टो हेतुः। रूपाद्यनुमितौ व्यभिचारवारणाय साक्षात्कारत्वमुक्तम्। साक्षात्कारस्य पक्षे हेतौ दृष्टान्ते च लौकिकत्वमपि विशेषणम्। ननु शब्दसाक्षात्कारत्वमेव हेतुरस्तु केवलव्यतिरेकीति चेत्–न; केवलव्यतिरेकमनङ्गीकुर्वाणं प्रत्येतस्योक्तत्वादिति। न चासिद्धिवारकं विशेषणमिदम्, अखण्डाभावत्वात्। ननु तावता तदिन्द्रियमाकाशमेव कथमित्यत आह–पारिशेष्यादिति। परिशेषमाह–विप्रतिपन्ना इति। तद्ग्राहका न भवन्ति शब्दग्राहका न भवन्तीत्यर्थः। रूपादिग्राहकत्वेन बाधवारणाय तदिति। लौकिकप्रत्यासत्त्या तद्ग्राहकेन्द्रियाणि न भवन्तीत्यर्थः। अजेति। संयुक्तसमवायेन हि कालादिना तद्ग्राह्यः, न चाजत्वेन तस्य संयोगोऽस्तीत्यर्थः।

[अ. टी.] अस्मदादिबाह्येन्द्रियग्राह्यगुणाधारत्वेन घटादिवदाकाशस्यानित्यतामाशङ्क्यापवदति–आकाशमिति। घटादौ व्यभिचारवारणार्थम् असमवेतपदम्। प्रागभावे तस्य व्यवच्छेदार्थं भावत्वोक्तिः। प्रत्यनुमानबाधितमनुमानमनित्यत्वं न साधयतीत्यर्थः। पृथिव्यादिभूतत्वादाकाशस्येन्द्रियारम्भकत्वं प्राप्तं तद्व्यावर्तयति–तदेवेति। तत् आकाशमेव

१ तस्य नित्यत्वमिति क; इत्येवं तस्य नित्यत्वमिति ग, घ. २ परिशेषादिति मु. ३ चेति नास्ति मु. ४ न चेति च. ५ विभाजकोपाधिमत्वादिति च. ६ अपीति नास्ति च पुस्तके. ७ तावदिन्द्रियमिति च. ८ परिशेषादिति छ. ९ चेति छ. १० आकाशस्यापीति ट. ११ प्रागभावस्येति ज. १२ तदिति नास्ति ज, ट. पुस्तकयोः.

श्रोत्राख्यमिन्द्रियं पारिशेष्यात्सिद्धमित्यन्वयः। परिशेषानुग्राह्यमनुमानमाह—**शब्दोपलब्धिरिति**। शब्दोपलब्धिर्मनस्करणिका सा भवतीति सिद्धसाधनता, तत उक्तम् **भूतेति**। साक्षात्कारत्वादित्युक्ते आत्मसुखादिसाक्षात्कारे व्यभिचारस्स्यादत उक्तम्। **रूपशब्दयोरन्यतरेति**। अनयोरन्यतरत्वञ्चासिद्धमिति साक्षात्कारग्रहणम्। शब्दसाक्षात्कारत्वादित्युक्ते न तावदन्वयः। सुखादिसाक्षात्कारे यद्यपि व्यतिरेकोऽस्ति, तथापि केवलव्यतिरेकेऽसन्तुष्टं प्रतीदं द्रष्टव्यम्। इदानीं परिशेषमाह—**परिशेषस्त्विति**। विमतिपन्नाः श्रोत्रव्यतिरिक्ताः। सन्तु तर्हि कालादयस्संयुक्तसमवायेन शब्दोपलब्धिहेतवस्तत्राह—**न कालादय इति**। शरीरकालादीनां ग्राहकत्वमारोप्यायं परिशेषो द्रष्टव्यः। अजानां कालादीनां मिथः संयोगस्य निराकरिष्यमाणत्वात् संयुक्तसमवायोऽत्र न युक्तः। रहस्यन्तु चक्षुरादिव्यापारे सत्यपि बधिरस्य शब्दसाक्षात्काराभावादिन्द्रियान्तरसिद्धौ श्रोत्रसिद्धिरिति। पञ्च संख्यादयः शब्दश्चेति षड्गुणाः।

[वा. टी.] नन्वाकाशस्यैकत्वे सजातीयाकाशाभावात्तस्मिन्नष्टे पुनरुत्पत्त्यभावाच्छब्दस्यानुत्पत्तिरेव स्यात्। उत्पत्तौ वान्यधर्मतेत्यत आह—**आकाशमिति**। घटेऽभावे चातिव्याप्तिपरिहाराय विशेषणद्वयम्। भूतत्वे चेन्द्रियारम्भकत्वे प्राप्ते आह—**तदेवेन्द्रियं सिद्धमित्यन्तेन**। नभसस्समवायिकारणस्यैकत्वादेवेन्द्रियलक्षणकार्यद्रव्यस्यारम्भसम्भवादन्यस्य चाभावात्तद्योगनियतादृष्टविशेषोपनिबद्धकर्णशष्कुल्यवच्छिन्नं नभ एव श्रोत्रदेशमिन्द्रियव्यपदेशं लभत इति परिशेषात्सिद्धमित्यन्वयः। ननु भूतत्वेऽपि शरीरानपेक्षत्वदिन्द्रियस्यापेक्षाभावादनारम्भस्य सुवचत्वात्किमिति परिशेषापेक्षा इत्यत आह—**इतीति**। इति प्रमाणेनेन्द्रियस्यावश्यापेक्षणीयत्वादित्यर्थः। तदेवाह—**शब्दोपलब्धिरिति**। मनसा सिद्धसाधनपरिहाराय **भूतेति**। सुखसाक्षात्कारेऽतिव्याप्तिपरिहाराय **रूपेति**। असिद्धिपरिहाराय **शब्देति**। पुनरपि तां परिहर्तुम् **अन्यतरेति**। कालादय एव शब्दग्राहका भविष्यन्तीत्याशङ्क्य कालादय आकाशसमवेतं शब्दं गृह्णन्तः संयुक्तसमवायेन गृह्णीयुर्घटरूपमिव चक्षुः। न चैतदुपपद्यते, यतः कालाकाशयोरमूर्तत्वेन मूर्तमात्रसमवेतकर्मणोऽसम्भवेन तज्जन्यसंयोगासम्भवान्नित्यसंयोगस्य च निराकृतत्वात्। तथा च प्रयोगः—कालादयो न तद्ग्राहकाः, तदसम्बद्धत्वात्, रूपवदिति मत्वाह—**न कालादय इति**। शब्दोपलब्धेर्भूतेन्द्रियजन्यत्वसाधनानन्तरं शरीराजन्यत्वनिराकरणं मन्दशङ्कानिरासार्थमिति सन्तोष्टव्यम्। शब्दः संख्यादिपञ्चकञ्च।

*

(काललक्षणं, तत्र प्रमाणञ्च)

विवक्षितपरत्वासमवाय्याश्रयत्वे सति सर्वगतः कालः। विप्रतिपन्नं मनो विवक्षितपरत्वासमवाय्याश्रयसंयुक्तं द्रव्यत्वात्, आत्मवदिति तत्र प्रमाणम्।

१ पदमिदं नास्ति ज, ट. पुस्तकयोः. २ शब्दग्राहकत्वमिति ज. ३ मयुक्त इति ट.

[व. टी.] विवक्षितेति। विवक्षितं दिकृतभिन्नं यत्परत्वं तदसमवायिकारणाश्रयत्वे सति सर्वगतो व्यापकः काल इत्यर्थः। आकाशादावतिव्याप्तिं भञ्जयितुं सत्यन्तम्। पिण्डेऽतिव्याप्तिभङ्गाय सर्वगतत्वं विशेषणम्। दिश्यतिव्याप्तिभङ्गाय विवक्षितेति। शब्दासमवायिकारणाश्रये गगनेऽतिव्याप्तिभङ्गाय परत्वेति। परत्वनिमित्तकारणादृष्टाद्याश्रये आत्मन्यतिव्याप्तिं भञ्जयितुम् असमवायीति। विप्रतिपन्नमिति। शरीरादिमूर्तासंयुक्तमित्यर्थः। विप्रतिपन्नत्वरूपपक्षतावच्छेदकधर्मावच्छेदेन साध्यं सिध्यत् कालमादायैव सिध्यति, अन्यथा पिण्डसंयुक्तत्वेनार्थान्तरत्वात्। रूपादौ बाधवारणाय मन इति। आकाशसंयुक्तत्वेनार्थान्तरं वारयितुम् आश्रयान्तम्। दिशार्थान्तरवारणाय विवक्षितेति। शब्दासमवायिकारणसंयोगाश्रयगगनादिनार्थान्तरवारणाय परत्वेति। परत्वनिमित्तादृष्टादिवदात्मनार्थान्तरवारणाय असमवायीति। तादृशपिण्डसंयुक्तत्वेनात्मनि साध्यसिद्धिः।

अत्रेदं बोध्यम्-परत्वापरत्वे न यावद्द्रव्यभाविनी, किन्त्वपेक्षाबुद्धिविशेषजन्ये। तन्नाशादिनाश्रये चोत्पन्नेन परत्वेन ज्येष्ठादिव्यवहारः। यद्वा-बहुतरतपनपरिस्पन्दान्तरितजन्मत्वादिनायं व्यवहारः। न च तेनैव परत्वादिव्यवहारोपपत्तौ किं परत्वादिनेति वाच्यम्। एतस्य विचारस्य विस्तरभयेनात्रानवसरः, दुस्स्थानत्वात्।

[अ. टी.] क्रमप्राप्तं कालं निरूपयति-विवक्षितेति। विवक्षितं परत्वं स्वंज्येष्ठत्वमपरस्यापि कनिष्ठत्वस्योपलक्षणम्, तस्य यदसमवायिकारणम्। आदित्यपरिस्पन्दा अहोरात्रलक्षणा आदित्यसमवेतास्तावत्तन्न्यूनत्वाधिक्यकृते विवक्षिते परत्वापरत्वे। तत्र देवदत्तादिपिण्डसंयुक्तं सत् यदादित्यसंयोगि पिण्डानामादित्यगतक्रियोपनायकं तस्य यः पिण्डसंयोगः, सोऽयमसमवायिकारणत्वेन विवक्षितः, तदाश्रयस्य काल इत्युक्ते संयोगस्यानेकाश्रयत्वात्पिण्डानामपि कालत्वं स्यात्। अत उक्तम् सर्वगत इति। सर्वगतत्वमाकाशमेश्वरेषु वियत इति तद्व्यवच्छेदार्थम् असमवाय्याश्रयत्वे सतीत्युक्तम्। एवमपि संयोगासमवाय्याश्रयत्वेन तेष्वेव व्यभिचारस्स्यादतं उक्तम् परत्वेति। दिशि व्यभिचारवारणाय विवक्षितपदम्। विप्रतिपन्नं शरीरादि। मूर्तासंयुक्तमाश्रयसंयुक्तमसमवाय्याश्रयसंयुक्तश्चेत्युक्ते सुखाद्यसमवायिमनस्संयोगाश्रयात्मसंयुक्तत्वेन सिद्धसाधनत्वं स्यादत उक्तम् परत्वेति। परत्वासमवाय्याश्रयदिक्संयुक्तत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं विवक्षितपदम्। आत्मा विवक्षितपरत्वासमवाय्याश्रयपिण्डसंयुक्तः। मनसोऽपि पिण्डसंयोगेन सिद्धसाधनत्वं नाशङ्कनीयम्, विप्रतिपन्नपदेन व्युदासात्।

१ वारयितुमिति घ. २ सर्वगतेति च. ३, ४ वारणायेति घ. ५ अतिव्याप्तिवारणायेति घ. ६ अर्थान्तरं स्यादिति च. ७ इतः पङ्क्तिद्वयं घ पुस्तके नास्ति. ८ अदृष्टादीति छ. ९ दुस्स्थत्वादिति घ. १० स्वेति नास्ति ज, ट. पुस्तकयोः. ११ गतेति नास्ति ट पुस्तके. १२ असमवायित्वेनेति ज, ट. १३ विवक्षितस्य यस्येति ज. १४ जात्याकाशेति ज, ट. १५ व्यवच्छेदायेति ज, ट. १६ संयोगाश्रयत्वेनेति ज, ट. १७ अतः परत्वग्रहणमिति ज, ट. १८ वारणार्थमिति ज, ट. १९ समवाय्याश्रयेति झ. २० साधनतेति झ, ट. २१ व्युदासायेति ज, ट. २२ नाशङ्क्यमिति ज, ट.

[वा. टी.] अचेतनत्वा(द्गुणादि? द्विगादि) भेदभिन्नत्वाच्च कालमाकलयते—**विवक्षितेति**। विवक्षितं नियतं यत्परत्वं तदसमवायिकारणमादित्यपरिस्पन्दोपनायकविभुद्रव्यपिण्डसंयोगस्तदाश्रयस्तदधिकरणम्। पिण्डेऽतिव्याप्तिपरिहाराय **सर्वेति**। सर्वगतत्वञ्च युगपत्सर्वमूर्तसंयोगित्वम्। आकाशनिराकरणाय **असमवायीति**। तथाप्यसमवायिशब्दवत्त्वेन तत्रैवातिव्याप्तिपरिहाराय **परत्वेति**। दिश्यतिव्याप्तिपरिहाराय **विवक्षितेति**। **विप्रतिपन्नं** शरीरसंयुक्तमित्यर्थः। न चाप्रसिद्धविशेषणत्वम्। तथाहि—अस्ति तद्बहुतरतपनपरिस्पन्दान्तरिते स्थविरादिपिण्डे परत्वादिव्यवहारः। तत्परत्वञ्च तपनपरिस्पन्दप्रकर्षजम्, तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात्, तन्तुपटवत्। तेषाञ्च तपनवर्तित्वेन स्वतःपिण्डासम्बन्धस्यादाश्रयस्यापि प्रादेशिकत्वेन पृथिव्यादिवत्तत्सम्बन्धाजनकत्वादात्ममनसोश्च विशेषगुणाधारत्वात्तदनुपपत्तेर्दिशोऽप्यादित्यादिसंयोगोपनायकत्वेनैवावगमात्पिण्डादित्यपरिस्पन्दसम्बन्धापादकस्य कस्यचिद्विभुनो द्रव्यस्यान्यतरसिद्धत्वादिति। तथा च मानम्—तपनपरिस्पन्दा द्रव्यद्वारेण स्थविरादिपिण्डसम्बद्धाः; स्वतोऽसम्बद्धत्वे सति तत्सम्बद्धत्वात्, पटगतमहारजतरागवदिति। पिण्डादित्यपरिस्पन्दानां संयुक्तसमवायलक्षणप्रत्यासत्तिरवधेया। संख्यादिपञ्चकमेषः।

■

(दिग्लक्षणम् तत्र प्रमाणञ्च)

अनियतपरत्वासमवाय्याश्रयत्वे सति[1] सर्वगता दिक्। विप्रतिपन्नं मनोऽनियतपरत्वासमवाय्याश्रयसंयुक्तम्, द्रव्यत्वादात्मवदिति तत्र प्रमाणम्।

[व. टी.] **अनियतेति**। आश्रयत्वमसमवाय्याश्रयत्वं[2,3] गगनादौ गतमतः **परत्वेति**। आत्मन्यगतये **असमवायीति**। कालत्वेऽनतिप्रसक्तये **अनियतेति**। अनियतत्वञ्च कालकृतपरत्वादिव्यावृत्तदिक्कृतपरत्वादिनिष्ठो जातिविशेषः। यद्वा बहुतरतपनपरिस्पन्दान्तरितजन्यत्वादि यत्[4] तद्बुद्धिजन्यत्वं संयुक्तसंयोगभूयस्त्वादि तद्बुद्धिजन्यत्वं[5] वा। पिण्डेऽतिव्याप्तिभङ्गाय[6] **सर्वगतेति**। **विप्रतिपन्नमिति**। दिक्साधकानुमानेऽनियतपदं कालसंयुक्तत्वेनार्थान्तरवारणाय[7]। साध्ये विवक्षितपदञ्चेत्[8], तदानियतत्वमेव तदर्थः। क्वचिदविवक्षितमपि[9] पाठः। तदविवक्षितं[10] परत्वं कालकृतं[11] तद्भिन्नत्वमित्यर्थः। शेषं पूर्ववत्।

[अ. टी.] अनियतं न ज्यैष्ठ्यादिवद्यावद्द्रव्यभावि[12]। अनियतपदं कालव्यवच्छेदाय[13]। इतरत्पूर्ववल्लक्षणेऽनुमानेऽपि। कालसंयुक्तत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थमनियतपदम्।

[वा. टी.] विशेषगुणशून्यत्वाद्व्यापकत्वाच्च दिशं विशदयति—**अनियतेति**। कालनिराकरणाय **अनियतेति**। अस्त्येकं मूर्तमवधिं कृत्वा मूर्तान्तरे परत्वादिव्यवहारः। तत्परत्वादेरन्यनिमित्तासम्भवात् प्रमात्रपेक्षया तत्तद्देशादिसंयोगो निमित्तम्। तस्य चानुपसङ्क्रान्तस्य तत्त्वेति तदुपसङ्क्रान्तस्य

---

१ सतीति नास्ति ख पुस्तके. २, ३ आश्रयत्वे इति च. ४ काले इति च. ५ यदिति नास्ति च पुस्तके. ६ तद्बुद्ध्यजन्यत्वमिति च. ७ वारणायेति च ८ पदमिदं नास्ति च. पुस्तके. ९ घेदनियतेति च. १० नविवक्षितेति च. ११ कालकृतभिन्नत्वमिति च. १२ ज्येष्ठत्वादीति ट. १३ व्यवच्छेदार्थमिति क, ट.

चात्रेति (?) तदुपसङ्क्रामकं विभुद्रव्यं वाच्यम्। सैव दिक्। न च कालेनार्थान्तरम्, तस्य क्रियानिबन्धन एव व्यवहारे सामर्थ्यावगमादिति।

*

(दिक्कालयोस्समुच्चित्य प्रमाणम्)

मनसा असंयुक्तं मनः सर्वदा विशेषगुणरहितद्रव्यद्वयसंयुक्तम्, द्रव्यत्वादात्मवदिति दिक्कालयोः प्रमाणम्। अत्र द्रव्यद्वये कल्पितेऽन्यत्र तेनैव व्यवहारसिद्धेः, अनेककल्पनायां प्रमाणाभावः। दिक्कालौ द्रव्यत्वावान्तरजातिरहितौ बुध्यनाधारत्वे सति सर्वगतत्वादाकाशवदित्येकत्वं सिद्धम्।

[ब. टी.] उभयत्र प्रमाणमाह—**मनसेति**। मनसि मनोद्वयसंयुक्तत्वेनार्थान्तरभङ्गाय **मनसा असंयुक्तमिति**। आकाशादिसंयुक्तत्वेनाश्रयासिद्धिवारणाय **मनसेति**। साक्षान्मनसा यत्र संयुक्तमित्यर्थः। तेन परम्परया मनसि मनस्संयुक्तत्वेनापि नाश्रयासिद्धिः। रूपादौ बाधवारणाय **मन इति**। संयुक्तत्वे द्वयसंयुक्तत्वे द्रव्यद्वयसंयुक्तत्वे च साध्येऽर्थान्तरम्, गुणरहितेत्याद्युक्तौ बाधः, अतो **विशेषेति**। प्रथमक्षणे घटपटादिरपि गुणरहितः। एवमुक्तौ खण्डप्रलये च जीवव्योमनी विशेषगुणरहिते, अतः **सर्वदेति**। औपाधिक एव दिक्कालयोर्भेदः, न साहजिक इत्याह—**अत्रेति**। एकत्वे प्रमाणमाह—**दिक्कालाविति**। जातिरहितत्वं द्रव्यान्तरजातिरहितत्वं द्रव्यत्वावान्तरधर्मरहितत्वञ्च बाधितम्, अतो विशिष्टसाध्यकीर्तनम्। आत्मनि व्यभिचारभङ्गाय सत्यन्तम्। घटादौ व्यभिचारभङ्गाय विशेष्यभागः।

[अ. टी.] एकैकत्र प्रमाणमुक्त्वोभयत्राप्याह—**मनसेति**। सर्वदा विशेषगुणरहितमनोऽन्तरसंयुक्तत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थम् **मनसाऽसंयुक्तं मनः** पक्षः। गुणरहितद्रव्यसंयुक्तमित्युक्ते बाधस्स्यादतो **विशेष**पदम्। प्रलये तादृशजीवव्योमसंयुक्तत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं **सर्वदेति** पदम्। नन्वत्र कल्पेऽन्यौ दिक्कालौ, अन्यत्र कल्पेऽन्यौ, ततोऽन्यत्रान्यावित्यानन्त्यं प्राप्तम्, कल्पभेदेन वा व्यवहारभेदेन वा व्यवहारानन्त्येन वा तद्भेदस्त्वोस्तयोस्तत्स्यादत आह—**अत्रेति**। एकत्वे तर्हि किं प्रमाणम्, तदाह—**दिक्कालाविति**। जातिरहितौ द्रव्यत्वजातिरहितौ चेत्युक्ते बाधस्स्यादतोऽवान्तरजातिपदम्। घटत्वाद्यवान्तरजातिरहितत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं द्रव्यत्वविशेषणम्। आत्मनि व्यभिचारवारणाय **बुध्यनाधारत्वे सतीत्युक्तम्**। घटादौ व्यभिचारवारणाय **सर्वगतत्वादित्युक्तम्**।

---

१ आकाशवदित्यधिकं ग, घ. २ द्वितय इति क. ३ अनन्तेति क, ख, ग, घ. ४ प्रमाणाभावादिति क. ५ वारणायेति च. ६ सिद्धिस्तद्वारणायेति च. ७ परम्परायामिति च. ८ पदमिदं नास्ति च पुस्तके. ९ प्रथमे इति च. १० घटादिरपीति च. ११ राहित्यं द्रव्यत्वजातिराहित्यञ्च बाधितमिति च. १२ वारणायेति च. १३ भाव इति च. १४ प्रमाणमाहेति झ. १५ यदेति झ. १६ द्रव्यद्वयसंयुक्तत्वे इति झ, द्रव्यमित्युक्ते इति ट. १७ वारणार्थमिति ज, ट. १८ इत्युक्तमिति ज, ट. १९ ततोऽपीति ट. २० इतः पदचतुष्टयं नास्ति ज, ट. पुस्तकयोः. २१ जातीति नास्ति ज, ट. पुस्तकयोः. २२ निवारणायेति ज, ट.

[वा. टी.] मनोऽन्तरसंयुक्तत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय **मनसाऽसंयुक्तमिति**। सिद्धसाधनतापरिहाराय **गुणरहितेति** । बाधनिवारणाय **विशेषेति** । प्रलयावस्थात्माकाशसंयुक्तत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय **सर्वदेति** । एकेनैव परत्वादिव्यवहारोपपत्तौ बहुत्वकल्पनं गौरवग्रस्तमसदेवेत्याह——**अत्रेति** । ननु किमिति प्रमाणाभावः, दिगादि द्रव्यत्वव्याप्यजातिसजातीयप्रतियोगिकभेदवत्, अशब्दद्रव्यत्वात्, घटवत् । तथाच पृथिवीत्वादीनामसम्भवाद्दिक्त्वादिसिद्धावनेकत्वसिद्धिः । न च गौरवपराहतिः, प्रामाणिकेऽर्थे गौरवस्यादोषत्वात् । तथा चाहुः——

प्रमाणवन्त्यदृष्टानि कल्प्यानि सुबहून्यपि ।
वालाग्रशतभागोऽपि न कल्प्यो निष्प्रमाणकः ॥ इति ।

तत्र संस्कारवत्त्वेन सोपाधिकत्वात् । ननु मा भूदनेकत्वम्, एकत्वे किं मानमत आह——**दिक्कालाविति** । **द्रव्यत्वेति** । द्रव्यत्वव्याप्यत्वावच्छिन्ना यावती जातिव्यक्तिस्तदत्यन्ताभाववन्ताविव्यर्थः । एतेन सिद्धसाधनता परिहृता भवति । दिगाद्यनन्तत्वत्रादिना दिक्त्वादेरपि द्रव्यत्वव्याप्यत्वाङ्गीकारात् । बाधनिवारणाय **अवान्तरेति** । घटत्वादिरहितत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय **द्रव्यत्वेति** । आत्मनिवारणाय **बुद्धीति** । घटनिवारणाय **सर्वेति** । ननु भवतूक्तजातिरहितत्वम्, एकत्वस्य कुतोऽसिद्धिः । न हि तदेवैकत्वम्, नापि तदनुपपत्त्या तदविनाभावेन वा तत्सिद्धिः, गुणादिषु व्यभिचारादित्याशङ्क्याह——**इतीति** । अस्मादेव प्रमाणादित्यर्थः । अयमाशयः——इह हि द्रव्यप्रकरणाद्द्रव्येति पदं लभ्यते । तथा च द्रव्यस्य सतो दिगादेरुक्तजातिरहितत्वं तर्ह्येव स्यात् यदि व्यक्त्यैक्यं भवेत् । अन्यथा तुल्यत्वादीनां जातिबाधकानामसम्भवादुक्तजातिसत्त्वमेव स्यात्, न तद्रहितत्वमिति । यद्वा द्रव्यत्वे सत्युक्तजातिरहितत्वमेकत्वेनाविनाभूतमाकाशे दृष्टमित्यनयोरप्येकत्वमापादयतीत्याह——**इतीति** । एतन्मानसाधितादस्मादेव धर्मादित्यर्थः । तथाच दिगाद्येकत्वाधिकरणम्, द्रव्यत्वे सत्युक्तजातिरहितत्वादाकाशवदित्येकत्वसिद्धिरित्यर्थः । न च विशेषगुणत्वमुपाधिः, विशेषपदस्य पक्षमात्रव्यावर्तकत्वेन पक्षेतरत्वादिति ।

*

(दिक्कालयोस्सर्वकार्यनिमित्तत्वं सर्वगतत्वञ्च)

विप्रतिपन्नं सर्वं कार्यं दिक्कालकार्यम्, कार्यत्वात्, सम्प्रतिपन्नवदिति[1] तयोस्सर्वकार्यनिमित्तत्वम् । आकाशकालदिशः सर्वगताः, मनोव्यतिरिक्तत्वे सत्यस्पर्श[2]द्रव्यत्वात्, आत्मवदिति सर्वगतत्वम्[3] । संख्यादिपञ्चगुणवत्त्वं कालदिशोः ।

[व. टी.] दिक्कालयोस्सर्वनिमित्तत्वं साधयति–**विप्रतिपन्नमिति** । दिक्कालसमवेतातिरिक्तं कार्यमित्यर्थः । इदन्तु विशेषणं यन्मते पक्षातिरिक्तस्यैव दृष्टान्तता, तन्मते दृष्टान्तासिद्धिवारणाय । सर्वोत्पत्तिमन्निमित्ततासिद्धये **सर्वमिति** । व्योमादौ[4] बाधवारणाय

१ सम्प्रतिपन्नकार्यवदिति क.　२ असंस्पर्शेति मुद्रितपुस्तकपाठान्तरम्.　३ सिद्धमित्यधिकं ग.
४ आदीति नास्ति ख पुस्तके.

कार्यमिति। पूर्वमाकाशे सर्वशब्दाश्रयत्वेन व्यापकत्वं सूचितम्। दिक्कालयोश्च सर्वगतत्वं लक्षणया सूचितम्। तत्साधयति-आकाशेति। मनसि व्यभिचारभङ्गाय सत्यन्तम्। घटादौ व्यभिचारवारणाय अस्पर्शवदिति। गुणादौ व्यभिचारवारणाय द्रव्यत्वादिति। सर्वदा स्पर्शरहितत्वं बोध्यम्।

[अ. टी.] दिक्कालयोस्समानधर्मत्वनिरूपणप्रसङ्गात्समानधर्मान्तरमाह–विप्रतिपन्नमिति। परत्वापरत्वव्यतिरिक्तं सर्वगतत्वं दिक्कालक्षणे प्रक्षिप्तम्। तत्र प्रमाणमसम्भवपरिहारार्थमाह–आकाशेति। आकाशस्यापि सर्वशब्दाश्रयत्वेन सर्वगतत्वस्य सूचितत्वात्साधनं युक्तम्। द्रव्यत्वं पृथिव्यादौ व्यभिचरति, अतः अस्पर्शपदम्। मनसस्स्पर्शद्रव्यत्वेऽपि न सर्वगतत्वमित्यत आह–मनोव्यतिरिक्तत्वे सतीति। मनोव्यतिरिक्ते स्पर्शशून्ये क्रियादौ व्यभिचारनिरासार्थं द्रव्यग्रहणम्।

[वा. टी.] इह जात इदानीं जात इति व्यपदेशात्तयोः सर्वकार्यनिमित्तत्वमाह—विप्रतिपन्नमिति। स्वसमवेतसंयोगादिकार्यातिरिक्तत्वं विप्रतिपन्नशब्दार्थः। सिद्धसाधनतापरिहाराय दिक्कालेति। मूर्तत्वात्संयोगाद्यनुपसङ्क्रामत्यमत आह—आकाशेति। समानन्यायत्वादाकाशस्यापि ग्रहणम्। मनस्यतिव्याप्तिपरिहाराय मन इति। घटनिवारणाय अस्पर्शवदिति। रूपेऽतिव्याप्तिपरिहाराय द्रव्येति। संख्यादिपञ्चकमेव।

*

(आत्मनिरूपणम् तद्विभागश्च)

बुद्ध्याश्रय आत्मा। स द्वेधा–ईशानीशभेदात्। पूर्वत्र प्रमाणम्–आत्मत्वं नित्यविशेषगुणवद्वृत्ति, आत्मजातित्वात्, सत्तावदिति। ईशज्ञानं नित्यम्, अनन्तकार्यहेतुत्वात्, कालवदिति तज्ज्ञानं नित्यम्। विप्रतिपन्नं सर्वं कार्यं विवक्षितज्ञानजम्, कार्यत्वात्, सम्प्रतिपन्नवदित्यनन्तहेतुत्वं सिद्धम्।

[व. टी.] आत्मत्वमिति। वृत्तिमत्त्वे गुणवद्वृत्तिमत्त्वे विशेषगुणवद्वृत्तिमत्त्वे वार्थान्तरे व्यभिचारवारणाय नित्येति। नित्यपरिमाणवद्वृत्तित्वेनार्थान्तरभङ्गाय विशेषेति। नित्यो यो विशेषपदार्थः तद्वृत्तित्वेनार्थान्तरवारणाय गुणेति। पृथिवीत्वादौ व्यभिचारवारणाय आत्मेति। आत्मघटवृत्तिद्वित्वान्यतरत्वादौ व्यभिचारवारणाय जातित्वादिति। न च संसार्यात्मत्वे व्यभिचारः, तस्याजातित्वात्। जातित्वेऽपि वा तद्भिन्नत्वेन हेतुविशेषणात्। अपर्यवसानवृत्त्या ईश्वरज्ञानस्य नित्यत्वं प्राप्तम्। अधुना विशेषतस्साधयति–ईश्वरज्ञानमिति। जीवज्ञाने बाधवारणाय ईशेति। ईशसंयोगे बाधवारणाय ज्ञानमिति। अदृष्टे व्यभिचारवारणाय अनन्तेति। न चादृष्टस्य सर्वोत्पत्तिमन्नि-

---

१ सर्वेति नास्ति च पुस्तके. २ चेति नास्ति च पुस्तके. ३ लक्षणयोरिति छ. ४ स्वाद्यतिरिक्तमिति ज, ट. ५ कालादीति ज, ट. ६ इतीति ज, ट. ७ उक्तमिति ज, झ. ८ भेदेनेति ग. ९ नित्यसमवेतेति घ. १० सर्वकार्यमिति मु. ११ जन्यमिति ग. १२ अर्थान्तरवारणायेति च. १३ वृत्तिमत्त्वे चेति घ. १४ वृत्तित्वान्यतरेति च.

मित्तत्वात्तदवस्थो दोष इति वाच्यम् । एकैकादृष्टस्य सर्वकार्याहेतुत्वादिति । प्रत्येकावृत्तिश्च धर्मो न समुदायवृत्तिरिति न्यायात्, साधनवैकल्यपरिहाराय कार्येति । न हि कालोऽनन्तपदार्थवर्तितनित्यवर्गजनकः । यत्किञ्चित्कार्यजनके घटादौ व्यभिचारवारणाय अनन्तेति । कालवदिति । कालो द्रव्यं दृष्टान्तः, न तु कालोपाधिः एकैककालोपाधिः, समस्तकार्याजनकत्वात् । विप्रतिपन्नमिति । अस्मदादिकर्तृकमित्यर्थः । नित्ये बाधवारणाय कार्यमिति । उद्देश्यसिद्ध्ये ईश्वर इति । तथैव ज्ञानेति । सम्प्रतिपन्नवदिति । क्षित्यादिवदित्यर्थः । न च दृष्टान्तासिद्धिः, क्षित्यादिकं सकर्तृकं कार्यत्वात् घटवदित्याद्यनुमानेनेश्वरज्ञानजन्यत्वस्य सिद्धिः । एवञ्चानन्तकार्यहेतुत्वादिति पूर्वोक्तो हेतुर्नासिद्धः । अन्ये तु विप्रतिपन्नं कार्यम् अङ्कुरादि विवक्षितज्ञानजं, स्वोपादानगोचरापरोक्षज्ञानजं सम्प्रतिपन्नं कार्यं घटादीत्याहुः । तेषां मते घटादिकार्ये ईश्वरज्ञानजन्यत्वं मानान्तरेण सेत्स्यतीति निष्कर्षः ।

[अ. टी.] आत्मत्वस्यानित्यविशेषगुणवद्वृत्तित्वं सिद्धमित्यत उक्तम् नित्येति । नित्यवृत्ति नित्यविशेषवद्वृत्तीति चोक्तौ तथेति गुणग्रहणम् । पृथिव्यादिजातौ व्यभिचारवारणाय आत्मग्रहणम् । "यथाकारी यथाचारी" इत्याद्यागमादात्मबहुत्वं सिद्धमित्यात्मत्वधर्मसिद्धिः । अपर्यवसानवृत्त्येशज्ञानस्य नित्यत्वं सिद्धम्, साक्षादपि तत्साधयति–ईशज्ञानमिति । कर्मव्यक्तीनां कार्यहेतुत्वेऽप्येकस्यानन्तकार्यहेतुत्वाभावादनन्तपदेन तत्र व्यभिचारनिरास इति प्रयोगात्तस्येशज्ञानस्य नित्यत्वं सिद्धमित्याह–इति तज्ज्ञानमिति । हेतोरसिद्धिनिरासार्थं साधनमाह–विप्रतिपन्नमिति । विप्रतिपन्नं कार्यमङ्कुरादि विवक्षितम् । स्वोपादानसाक्षात्काररूपज्ञानं तज्जन्यं, सम्प्रतिपन्नं कार्यं घटादि, तत्कुलालादेस्तदुपादानमृदादिसाक्षात्कारजन्यम् । जीवानामङ्कुरादिनिमित्तकारणानुष्ठेयधर्मादिज्ञानेन परम्परयाङ्कुरादेर्जन्यत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थम् विवक्षितेति[13] ।

[बा. टी.] विभुत्वसाधर्म्यादात्मानं चिन्तयति–बुद्धीति । बुद्ध्याश्रयत्वं बुद्ध्याश्रयत्वात्यन्ताभावानधिकरणत्वम् । तेन मुक्तात्मनि नातिव्याप्तिः । घटनिवारणाय बुद्धीति । असम्भवनिवृत्तये आश्रय इति । सिद्धसाधनतापरिहाराय नित्येति । विशेषगुणश्चात्र ज्ञानादिः । ईशज्ञानस्य ज्ञानत्वादेवानित्यत्वे प्राप्ते नित्यत्वं साधयति–ईशेति । घटादावतिव्याप्तिपरिहाराय अनन्तेति । अनन्तशब्दश्च सर्वशब्दार्थः । ननु तर्हि हेत्वसिद्धिः, अस्मदादिज्ञानजन्यस्य घटादेस्तदजनकत्वादत आह–विप्रतिपन्नमिति । अस्मदादिज्ञानजन्यघटादिर्विप्रतिपन्नशब्दार्थः । विवक्षितज्ञानमीशज्ञानम्, सम्प्रतिपन्नत्वात्, द्व्यणुकादिवत् । यथा द्व्यणुकस्योपादानकारणसाक्षात्कृतत्वेनेशज्ञानस्य द्व्यणुकादिनिमित्तत्वम्, तथा घटादेरपीति नासिद्धिः ।

*

१ कार्यहेतुत्वाभावादिति च. २ प्रत्येकवृत्तिरिति घ. ३ इत्यर्थ इति नास्ति घ पुस्तके. ४ तज्जन्यत्वासिद्धेरिति च. ५ हेतुस्सिद्ध इति झ. ६ चोक्ते इति ज, ट. ७ व्यपनोदनार्थमिति ज, ट. ८ धर्मीति ज, ट. ९ वृत्तित्वाज्ज्ञानस्येति झ. १० एकस्येति नास्ति झ पुस्तके. ११ तत्र ज्ञानमिति झ. १२ कार्यमिति नास्ति झ, ट. पुस्तकयोः. १३ पदमित्यधिकं ज, ट.

(ईश्वरज्ञानादेस्सर्वाश्रयव्यापित्वे प्रमाणम्)

तज्ज्ञानमाश्रयव्यापि, नित्यगुणत्वात् परमाणु[12]रूपवदिति तज्ज्ञानस्याश्रयव्यापित्वं सिद्धम् । अत एव तदिच्छाप्रयत्नावाश्रयव्यापिनौ[2] । उत्तरत्र प्रमाणम्—भोगः क्वचिदाश्रितः, गुणत्वात्, रूपवदिति । न[3] कार्याणि तद्वन्ति, कार्यत्वाद्घटवदिति । न श्रोत्रादि[4] तद्वत्, कारणत्वाद्दण्डवत् । भोगो गुणः, अनित्यत्वे सत्यचाक्षुषप्रत्यक्षत्वाद्गन्धवदिति हेतुसिद्धिः ।

[व. टी.] तज्ज्ञानमिति । ईश्वरज्ञानमित्यर्थः । आश्रयनिष्ठत्वमात्रे[5] साध्ये सिद्धसाधनमतो व्यापीति । समवायसम्बन्धेन[6] घटाद्यव्यापित्वात् बाधवारणाय आश्रयेति । सर्वस्मिन् काले स्वसमवायी[7]त्यर्थः । एतावता व्यापकस्य व्यापकत्वं[8] सकलकार्योपादानावगाहकत्वमिति दूषणमपास्तम् । नित्येति । नित्यश्चासौ गुणश्चेति कर्मधारयः । संयोगादौ व्यभिचारवारणाय गुणत्वादिति । विशेषपदं नास्त्येवेति न व्यर्थता । अन्ये तु जीवाकाशेतरनित्यनिष्ठमाकाशप्रयोज्यविशेषगुणत्वादिति हेतुं वर्णयन्ति । पृथिवीपरमाणुरूपं न दृष्टान्तः, सर्वकाले स्वाश्रयव्यापकत्वाभावात् । यद्यपीश्वरज्ञानस्य नित्यत्वं पूर्वमेव सिद्धम्, तथापि सर्वकाले स्वाश्रयव्यापकत्वमिहोद्देश्यमिति कृत्वा तादृशसाध्यमुक्तम् । केचित्तु स्वाश्रयव्यापकत्वमात्रमत्र साध्यमित्याहुः । अत एव नित्यगुणत्वादेवं[9] । उत्तरत्र अनीशात्मनि । कार्याणि शरीरतदवयवाः, अन्यत्र विवादाभावात् । कारणोद्भूतत्वादित्यर्थः । तेन स्वमते नात्मनि व्यभिचारः । मनो न तद्वत्, इन्द्रियत्वात् चक्षुर्वदित्युपरि बोध्यम् । पूर्वहेतोरसिद्धिं वारयितुं भोगस्य गुणत्वं साधयति—भोग इति । रसत्वादौ व्यभिचारं वारयितुं सत्यन्तम् । घटादौ व्यभिचारभञ्जाय[10] त्वादन्तम् । अतीन्द्रिये गुणभिन्ने व्यभिचारभञ्जाय प्रत्यक्षत्वे सतीति देयम् ।

[अ. टी.] तस्य परिच्छिन्नस्यानन्तकार्योपादानावगाहकत्वं प्र[11]दीपप्रभावन्न सम्भवतीति तत्राह—तज्ज्ञानमिति । अनित्ये संयोगादौ व्यभिचारवारणाय नित्यपदम् । ईश्वरेच्छाप्रयत्नावप्याश्रयव्यापिनौ, नित्यगुणत्वात् जलपरमाणु[1]रूपवदित्यपि प्रयोक्तव्यमित्याह—अतएवेति । अनीशात्मनि प्रमाणमाह—उत्तरत्रेति । भोगः पूर्वोक्तभोगः । शरीरधर्म इत्येके लोकायताः । इन्द्रियाश्रय इत्यन्ये । तदुभयं क्रमेण निरस्यति न कार्याणीति । करणान्तरस्वीकारेऽनवस्थानाच्छ्रोत्रादेरेव करणत्वेन[13] नासिद्धो हेतुर्गुणत्वादिति पूर्वं हेतोरसिद्धिं[14] परिहरति—भोग इति । चाक्षुषप्रत्यक्षगम्ये घटादौ व्यभिचारवारणाय[15] अचाक्षुषपदम् । आत्मनि

१ जलपरमाण्विति घ. २ प्रयत्नावपीति मु. ३ तत्र नेति ग. ४ श्रोत्रादीनि तद्वन्तीति क. ५ निष्ठमात्रे इति च. ६ सम्बन्धिन इति छ. ७ स्वसमवायिव्यापीति च. ८ तस्य व्यापकत्वमिति च. ९ एवेति नास्ति घ पुस्तके. १० व्यभिचारं वारयितुमिति घ. ११ प्रेति नास्ति ज, ट पुस्तकयोः. १२ परमाणुवदिति ख, १३ करणत्वे चेति ज, करणत्वेन चेति ट. १४ हेतोराश्रयेति ट. १५ वारणार्थमिति ज, ट.

व्यभिचारवारणार्थम् अनित्यत्वे सतीत्युक्तम्। अनित्यत्वे सत्यचाक्षुषनक्षत्रादिगतिकर्मणि व्यभिचारवारणार्थम् प्रत्यक्षपदम्।

[वा. टी.] ननु परिच्छिन्नत्वात्तस्य तदनन्तकार्योपादानसाक्षात्कृतत्वं न सम्भवतीत्यत आह— **तज्ज्ञानमिति**। संयोगनिवारणाय **नित्येति**। **अत एव** नित्यगुणत्वादेवेत्यर्थः। नन्वाविद्यको जीवपरमात्मभेदो न तु पारमार्थिकः। परमात्मनश्च सिद्धत्वाद्व्यर्था प्रमाणोक्तिरित्याशङ्क्य शुद्धचैतन्यरूपे ब्रह्मण्यविद्यायोगाज्जीवाश्रयत्वे चेतरेतराश्रयापाताच्चात्त्विक एव भेद इत्याशयवान् तत्र प्रमाणमाह— **इतरत्रेति**। अत्र भोगपदेन भुज्यत इति भोग इति व्युत्पत्त्या सुखं दुःखं वा विवक्षितम्। नोक्तलक्षणो भोगः, तदुक्तावितरेतराश्रयापत्तेः। तथा हि—सिद्धेऽनीशज्ञाने तन्निष्ठसुखादिसाक्षात्काररूपभोगसिद्धिः। तत्सिद्धौ च तदाश्रयत्वेनानीशज्ञानसिद्धिरिति। कृशोऽहम्, स्थूलोऽहमिति प्रत्ययाच्छरीरादेरात्मत्वमाशङ्क्य निराचष्टे—**न कार्याणीति**। कार्याणीति शरीरतदवयवाः। विपक्षे च शरीरादेराश्रयस्य नष्टत्वेन जन्मान्तरानुभूतसंस्काराभावेन तज्जन्यस्मृतेरयोगादुत्पन्नस्य शिशोः स्तन्ये प्रवृत्तिरेव न स्यात् इति बाधकस्तर्कः। सामानाधिकरण्यप्रत्ययस्तु 'ममेदं शरीरमिति भेदग्राहिणा प्रमाणभूतेन प्रत्ययेन बाधित इत्यप्रमाणम्। काणोऽहं बधिरोऽहमित्यादिप्रत्ययात्कार्यत्वहेतोरप्रयोजकत्वमाशङ्कमान इन्द्रियाण्येवात्मेति मन्यते। तं प्रत्याह—**न श्रोत्रादीति**। तत्त्वे वा य एवाहं रूपमद्राक्षम्, स एवाहं गन्धं जिघ्रामि इत्यैक्यावलम्बः प्रत्ययो न भवेत्। रूपगन्धग्राहकयोर्भिन्नत्वादित्यर्थः। घटेऽतिव्याप्तिपरिहाराय **अचाक्षुषेति**। आत्मनिवारणाय **अनित्येति**।

*

(जीवैकत्वनिरासः, जीवस्य सर्वगतत्वञ्च)

अस्मदाद्यात्मा द्रव्यत्वावान्तरजातिमान्, चतुर्दशगुणवत्त्वात्, उदकवत्; आत्मशब्दोऽनेकवाचकः, आत्मवाचकत्वात्, तच्छब्दवदिति नानात्वं सिद्धम्। मच्छरीरेतरमूर्तानि मदात्मयुञ्जि, मूर्तत्वान्मच्छरीरवदिति सर्वगतत्वं तस्य। ईशोऽपि सर्वगतः, आत्मत्वादेहिवत्। स नित्यः, सर्वगतत्वात् कालवत्। स बुद्ध्यादिचतुर्दशगुणवान्।

[ब. टी.] जीवैकत्ववादिनं प्रत्याह—अस्मदादीति। ईश्वरे भागासिद्धिं वारयितुम् अस्मदादीति। तावता जीवपक्षः। द्रव्यत्वादिनार्थान्तरवारणाय द्रव्यत्वावान्तरेति। ज्ञानवत्त्वेनार्थान्तरभङ्गाय जातीति। आकाशे व्यभिचारभङ्गाय चतुर्दशेति। चतुर्दशगुणविभाजकोपाध्याधाराधारत्वादित्यर्थः। तेन चतुर्दशसंयोगवत्याकाशे न व्यभिचारः। चतुर्दशत्वं दशत्वाघटितसंख्या, तेन न चतुर्भागवैयर्थ्यम्। यद्यपि य एव चतु-

---

१ निरासार्थमिति ज, ट. २ अचाक्षुषीति ज, अचाक्षुष इति ट. ३ अमावायेति ज, ट. ४ अस्मदादीत्यारभ्य उदकवदित्यन्ता पङ्क्तिर्नास्ति घ पुस्तके. ५ सदिति नास्ति घ पुस्तके. ६ सिद्धमिति नास्ति ख, ग, घ, मु. पुस्तकेषु. ७ इतराणीति ख, ग. ८ सदात्मेति ख, मु. ९ संयुञ्जीति क, ख. १० वदिति इति क, ख. ११,१२ वारणायेति घ.

देश गुणा आत्मनि त एव न पयसीति शब्दसाम्येऽपि न पक्षदृष्टान्तयोरेकहेतुता, तथापि चतुर्दशशब्दवाच्यत्वानुगतीकृतगुणविभाजकोपाध्याधाराधारत्वं हेतुः । यद्यपि संस्कारशून्यस्य पयसो न दृष्टान्तता चतुर्दशगुणवत्त्वाभावात्, तथापि हेतुमत्य आपो दृष्टान्तः । केचित्त्वारम्भकतापन्ने जले वेगनियमात् तदारम्भकेऽपि वेगनियम इत्याहुः । घटाकाशादिशब्दे बाधसिद्धसाधनवारणाय आत्मेति । एकमात्रवाचकत्वेनार्थान्तरवारणाय अनेकेति । लक्षणया शरीराद्यनेकप्रतिपादकत्वेऽपि न तत्रात्मशब्दस्य शक्तिः । एवमाकाशशब्दस्य शक्तिर्भूताकाश एव । चिदाकाशादौ लक्षणया प्रयोगः । यद्वा एकप्रवृत्तिनिमित्तपुरस्कारेणानेकधावाचकत्वं साध्यम् । आकाशादिशब्दे व्यभिचारवारणाय आत्मेति । लक्षणयात्मप्रतिपादके गगनशब्दे व्यभिचारवारणाय वाचकत्वादिति । न चात्मवाचके एतदादिशब्दे व्यभिचारः, तस्याप्यनेकवाचकत्वात् । बुद्धिस्थत्वस्य प्रयोगोपाधित्वादेकमात्रप्रयोगः । न चैतदात्मत्वपुरस्कारेणैतदात्मशब्दे हेतुर्व्यभिचारीति वाच्यम् । एतस्य वाक्यत्वेनावाचकत्वात् । देवदत्तादिशब्दः शरीरवाचको नात्मवाचक इति न व्यभिचारः । पूर्वानुमाने तात्पर्याद्वा । आत्मनो वाचकत्वं साधयति—मदिति । दृष्टान्तासिद्धिवारणाय शरीरेतरेति पक्षविशेषणम् । आश्रयासिद्धिभङ्गाय मदिति । मदतिरिक्तं ममापि शरीरं भवतीति व्यर्थविशेषणतावारणाय मच्छरीरेतराणीति निजगदे । गुणादौ बाधवारणाय मूर्तानीति । कालादौ बाधवारणाय मूर्तत्वशरीरनिवेशितपरिच्छिन्नत्वभागः । परिमाणयोगित्वं कालादौ व्यभिचारि तदर्थमविच्छिन्नपरिमाणयोगित्वलक्षणं मूर्तत्वं हेतुः । सजीव इत्यर्थः । एवञ्चेदं क्वाचित्कत्वाभिप्रायम् । यद्वा चतुर्दशगुणवद्वृत्तिद्रव्यविभाजकोपाधिमानित्यर्थः ।

[अ. टी.] अनीशात्मन्येकत्वं मन्यमानं प्रत्याह—अस्मदाद्यात्मेति । सत्तावान्तरद्रव्यत्वजातिमत्त्वेन सिद्धसाधनताव्युदासेर्थं द्रव्यत्वावान्तरपदम् । आकाशादौ व्यभिचारवारणार्थं चतुर्दशपदम् । प्रयोगान्तरमाह—आत्मशब्द इति । अत्र जीवविषय आत्मशब्दो विवक्षितः । साधारणश्चेज्जीवेश्वरवाचकत्वेन सिद्धसाधनता स्यात् । कालादिवाचकैशब्दैर्व्यभिचारवारणार्थम् आत्मवाचकत्वादित्युक्तम् । देहादिव्यतिरिक्तोऽप्यात्मा अणुरिति केचित् । केचिच्च मध्यमपरिमाण इति वदन्ति । तद्व्युदासार्थमाह—मच्छरीरेति । मच्छरीरं मदात्मसंयोगि सिद्धमिति इतरग्रहणम् । आत्मान्तरैस्सह संयोगभाञ्जि सिद्धानीति मदात्मग्रहणम् । ईशात्मापि न परिच्छिन्न इत्याह—स नित्य इति । एवं देशतः कालतश्च

१ यद्यपीति नास्ति छ पुस्तके. २ व्युदस्येति छ. ३ पङ्क्तिरियं च पुस्तके नास्ति. ४ अनेकवाचकत्वमिति च. ५ नादीति नास्ति च पुस्तके. ६ आत्मेति नास्ति च पुस्तके. ७ भङ्गायेति च. ८ मच्छरीरेति च. ९ निविष्टेति च. १० मविच्छिन्नेति छ. ११ हेतूकृतमिति छ. १२ व्युदासायेति ज, ट. १३ वारणायेति ज, ट. १४ वाचकेति नास्ति ज पुस्तके. १५ व्युदासार्थमिति ज, ट. १६ सहेति नास्ति ज पुस्तके. १७ माऽणीवि नास्ति ट पुस्तके. *रामानुजीयाः. जैनाः.

परिच्छेदशून्य आत्मेति यत्र कुत्रचिद्देशे काले च कर्मकृतो भोगस्सङ्गच्छत इति भोगस्य तदाश्रितत्वं निश्शङ्कम् । संख्यादयः पञ्चसामान्यगुणाः, बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मभावनाश्च नव विशेषगुणा इति चतुर्दश ।

[वा. टी.] परमात्मजीवस्याप्यैक्ये सुखादिव्यवस्थानुपपत्तिमाशङ्क्य भेदं साधयति–असमदादीति । आत्ममात्रपक्षीकारे सिद्धसाधनता । ईशानीशभेदेनावान्तरजातिसम्भवादीशे चतुर्दशगुणासम्भवेन भागासिद्धता च । तन्निरासार्थं प्रतिज्ञायाम् असमदादिपदम् । सिद्धसाधनपरिहाराय अवान्तरेति । द्रव्यत्वेन तां परिहर्तुं द्रव्येति । आकाशनिवारणाय चतुर्दशेति । जातिद्वारा भेदं संसाध्य साक्षाद्भेदं साधयति–आत्मशब्द इति । बहुशब्दवाचक इत्यर्थः । अन्यथेशानीशवाचकत्वेन सिद्धसाधनता स्यादिति । कालादिशब्दनिवृत्तये आत्मेति । अनुकूलप्रतिकूलवातव्याघ्रादिचलनानामदृष्टजन्यत्वात्तस्य चात्मसमवेतत्वेन सतोऽसम्बन्धाश्रयव्यापिपरिच्छिन्नत्वे तदनुपपत्तिरित्याशङ्क्याश्रयद्वारा सम्बन्धं घटयितुं व्यापकत्वं साधयति–मच्छरीरेतराणीति । तच्चदात्मसंयुक्तत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय मदिति । क्रमेण संयोगे, सिद्धसाधनतापरिहाराय युगपदिति द्रष्टव्यम् । ईशस्य परिच्छिन्नत्वे सर्वनिमित्तानुपपत्तिमाशङ्क्याह–ईशोऽपीति । आत्मनो नित्यत्वे आमुष्मिकफलभोगासम्भवेन कृतहानिरकृताभ्यागमश्चेत्याशङ्क्याह–स नित्य इति । संख्यादिपञ्चगुणसहिता बुद्ध्यादयो नव गुणाः ।

*

(मनोलक्षणम्, तत्र प्रमाणञ्च)

मूर्तत्वे सति सर्वदा स्पर्शशून्यं मनः । सुखादिज्ञानमिन्द्रियजम्, अनित्यज्ञानत्वात् रूपज्ञानवदिति तत्र प्रमाणम् । मनोऽणु, आत्मसंयोगित्वे सति निरवयवत्वात्, परमाणुवदिति मूर्तत्वं तस्य सिद्धम् । अजसंयोगनिराकरणात् न सर्वगतेन व्यभिचारः । तत्संख्याद्यष्टगुणकम् ।

इति प्रमाणमञ्जर्यां द्रव्यपदार्थः ।

[व. टी.] मूर्तत्वे सतीति । कालादावतिव्याप्तिं वारयितुं सत्यन्तम् । घटादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यभागः । प्रथमक्षणे घटादावेवातिव्याप्तिवारणाय सर्वदेति । सुखेति । लौकिकसुखसाक्षात्कार इत्यर्थः । अनुमितौ बाधवारणाय साक्षात्कार इति । अलौकिकसुखसाक्षात्कारे चक्षुरादिजन्ये बाधवारणाय लौकिकेति । रूपादिसाक्षात्कारेऽर्थान्तरवारणाय सुखेति । इन्द्रियत्वेनेन्द्रियजन्यत्वमुद्देश्यसिद्ध्ये साध्यम् । अनित्यसाक्षात्कारत्वादित्यर्थः । ईश्वरज्ञाने व्यभिचारवारणाय अनित्येति । कालादौ व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम् । घटादौ व्यभिचारवारणाय विशेष्यभागः ।

इति प्रमाणमञ्जरीव्याख्याने द्रव्यपदार्थस्समाप्तः ।

---

१ तत्र देशे इति ज, ट. २ पदमिदं नास्ति ट पुस्तके. ३ मनोद्रव्यमित्यधिकं घ पुस्तके. ४ पदार्थ उक्त इति मु. ५ प्रथमे इति घ. ६ पदमिदं नास्ति घ पुस्तके. ७ इति द्रव्यपदार्थ इति ट.

[अ. टी.] सर्वदा सर्शशून्ये कालादौ व्यभिचारवारणाय मूर्तत्वे सतीत्युक्तम्[१]। घटादिव्यवच्छेदार्थं[२] स्पर्शशून्यपदम्। पाकादौ क्षणं स्पर्शशून्यपार्थिवपरमाणुव्यवच्छेदाय सदेत्युक्तम्। ईशज्ञाने व्यभिचारव्युदासाय[३] अनित्येति। मूर्तत्वे सतीति विशेषणं साधयति–मन इति। निरवयवक्रियादौ व्यभिचारनिरासार्थम्[४] संयोगिपदम्। एवमपि घटादिसंयोगिनि व्योमादौ व्यभिचारस्स्यादत उक्तम् आत्मेति। आत्मसंयोगिघटादिव्युदासाय निरवयवपदम्। अजसंयोगपक्षे आत्मसंयोगित्वे सति निरवयवत्वं व्योमादौ[५] व्यभिचरतीत्यत आह–अजेति। सर्वगतेन व्योमादिना। संख्यादयः पञ्च परत्वापरत्ववेगा अष्टौ।

इति प्रमाणमञ्जरीटिप्पणेऽद्वयारण्ययोगिविरचिते द्रव्यपदार्थस्समाप्तः[६]।

[वा. टी.] परिशिष्टं द्रव्यं निरूपयति–मूर्तत्व इति। आकाशेऽतिव्याप्तिपरिहाराय मूर्तेति। घटेऽतिव्याप्तिपरिहाराय स्पर्शेति। पाकावस्थपरमाणुनिवारणाय सदेति। नन्विदमसम्भवि लक्षणम्, मनस एवासिद्धेः। न चेन्द्रियार्थसान्निध्येऽपि कदाचिदेव ज्ञायमानं ज्ञानं कारणं सम्पादयिष्यति, तच्च मन इति वाच्यम्। अदृष्टेनार्थान्तरत्वात्। अत आह–सुखज्ञानमिति। इन्द्रियजम् इन्द्रियकारणम्। ईशज्ञानेऽतिव्याप्तिपरिहाराय अनित्येति। ज्ञानश्चात्र साक्षात्कारः। तेन न लिङ्गजन्ये व्यभिचारः। ततश्चादृष्टस्य सामग्र्यसम्पादकत्वान्न पृथक्कारणतेत्यर्थः। ये त्विन्द्रियजमितीन्द्रियकारणकमिति व्याचक्षते, तन्मते रूपादिज्ञानस्य पक्षीकारेऽपि साध्यसिद्धेः सुखज्ञानपक्षत्वानुपपत्तिः। न च तत्र चक्षुरादिनार्थान्तरता, तत्रास्य कारणत्वेनोपजीव्यत्वादिति। ननु मनसो विभुत्वे आत्मन इव तत्तदिन्द्रियसम्बद्धार्थानां युगपत्संयोगात्सर्वज्ञानोत्पत्तिः। मध्यमत्वे चानित्यत्वं मानमित्याशयवान् अणुत्वं साधयति–मन इति। दिशि घटे चातिव्याप्तिपरिहाराय विशेषणद्वयम्। संख्यादयोऽष्टौ गुणाः।

इति प्रमाणमञ्जरीव्याख्यायां भावदीपिकाख्यायां द्रव्यपदार्थः।

■

(गुणलक्षणं तद्विभागश्च)

कर्मान्यत्वे सति सामान्यैकाश्रयो गुणः। स[७] रूपादिभेदेन चतुर्विंशतिधा।

[व. टी.] कर्मान्यत्वे सतीति। कर्मण्यतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तम्। सामान्यादावतिव्याप्तिवारणाय आश्रय इत्युक्तम्। समवायीत्यर्थः। विशेषेऽतिव्याप्तिवारणाय सामान्येति। सामान्यसमवायीत्यर्थः। सामान्यसमवायः सामान्येऽप्यस्ति, अतः सामान्यनिरूपितस्समवायो ग्राह्यः। स च द्रव्येऽप्यस्ति, तदर्थम् एकपदम्।

१ वारणार्थमिति ज, ट. २ व्यवच्छेदायेति ज, ट. ३ व्युदासार्थमिति ज, निरासार्थमिति ट. ४ निरासायेति ज, ट. ५ पदमिदं नास्ति ज पुस्तके. ६ इति प्रमाणमञ्जरीटिप्पणे द्रव्यपदार्थ इति ज, ट. ७ स इति नास्ति ख, सु. पुस्तकयोः.

[अ. टी.] एवं नवप्रकारं द्रव्यं निरूप्य गुणं निरूपयति—**कर्मान्यत्वे सतीति**। सामान्यादिव्यवच्छेदाय सामान्याश्रय इत्युक्तम्। आश्रयः समवायी। द्रव्यव्युदासाय **एकेति**। द्रव्यस्य विशेषं प्रत्याश्रयत्वान्न सामान्यैकाश्रयत्वम्। तादृक्कर्मव्यवच्छेदाय **कर्मान्यत्वपदम्**। सामान्येन सहैक आश्रयो यस्य स सामान्यैकाश्रय इति, कुतो न व्युत्पाद्यते? उच्यते—तथा सति द्व्यणुकादिद्रव्ये व्यभिचारादेवं व्याख्या। रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नगुरुत्वद्रवत्वस्नेहसंस्कारधर्माधर्मशब्दाश्चतुर्विंशतिर्गुणाः।

[वा. टी.] सर्वद्रव्यवृत्तित्वात्सामान्याधारत्वाच्च गुणं निरूपयति—**कर्मान्यत्वे सतीति**। प्रमेयत्वादिधर्माश्रये सामान्याश्रये व्यभिचारपरिहाराय **सामान्येति**। कर्मणि व्यभिचारपरिहाराय **कर्मेति**। कर्मान्यत्वञ्च कर्मत्वानधिकरणत्वम्। तेनोत्क्षेपणादन्यस्मिन् अपक्षेपणे नातिव्याप्तिः। द्रव्येऽतिव्याप्तिपरिहाराय **एकेति**। न च प्रमेयत्वाद्याश्रयत्वेनासम्भवः, आश्रयत्वेन समवायित्वस्य विवक्षितत्वात्। उत्पन्नमात्रे द्रव्येऽतिव्याप्तिपरिहाराय सदेति द्रष्टव्यम्।

*

(रूपरसगन्धस्पर्शाः)

नयनैकग्राह्यजातिमद्रूपम्। रसनैकग्राह्यजातिमान् रसः। घ्राणैकग्राह्यजातिमान् गन्धः। स्पर्शनैकग्राह्यजातिमान् स्पर्शः।

[व. टी.] **नयनेति**। सामान्यादावतिव्याप्तिभङ्गाय जातिमदिति। स्पर्शेऽतिव्याप्तिवारणाय **नयनेति**। घटादावतिव्याप्तिवारणाय **एकेति**। नयनैकेन्द्रियग्राह्यत्वमात्रग्रहे रूपत्वरूपध्वंसादावतिव्याप्तिः, प्रभायां द्रव्ये चातिव्याप्तिः, नयनैकग्राह्यविनष्टघटादावतिव्याप्तिश्च, अतीन्द्रियरूपेऽव्याप्तिश्चेति दूषणनिरासाय **जातीति**। प्रभात्वस्य जातित्वपक्षे प्रभान्यत्वे सतीति विशेषणीयम्। यद्वा प्रभा न चाक्षुषीति बोध्यम्। रूपप्रभान्यतरत्वमादाय प्रभायामतिव्याप्तिवारणाय **जातीति**। **रसनेति**। अतीन्द्रियरसेऽव्याप्तिवारणाय **जातिमानिति**। रसनग्राह्यरसवति द्रव्येऽतिव्याप्तिवारणाय जातीत्युक्तम्। धर्मपदपरिहारेण चक्षुर्ग्राह्यरूपत्वादिमत्यतिव्याप्तिवारणाय **रसनेति**। रसनग्राह्यगुणत्वादिमत्यतिव्याप्तिवारणाय **एकेति**। जातिपदार्थस्य यावान् भागो न व्यर्थस्तावान् ग्राह्यः।

[अ. टी.] जातिमतां रसादीनां व्यवच्छेदाय **नयनग्राह्येत्युक्तम्**। घटादिव्यवच्छेदाय एकपदम्। नयनैकग्राह्यं रूपमित्युक्ते परमाण्वादिरूपेऽव्याप्तिस्स्यादत उक्तम् **नयनैकग्राह्यजातिमदिति**। एवं रसादिलक्षणेऽपि। रसनग्राह्यसत्ताजातिमद्द्रव्यादिव्युदासाय एकपदम्। गुणत्वजातिमद्रूपादिव्युदासार्थञ्च तत्।

१ सप्तप्रकारमिति ढ. २ व्यवच्छेदायेमिति ज, ट. ३ समवायेनेति झ, ढ. ४ तादृशेति झ. ५ इन्द्रियमात्रेति मु. ६ नयनैकग्राह्येति च. ७ रसनग्राह्ये इति च. ८ जातिपदार्थस्याभावात् भागो न व्यर्थस्याभावाय ग्राह्य इत्यमुद्र। पाठः छ पुस्तके. ९ व्युदासायेति ज, ट. १० स्यादुक्तमिति ज, ट. ११ रूपेष्विति ज, ट. १२ रसनग्राह्येति ज, ट. १३ व्युदासायेति ज, ट.

[वा. टी.] नयनेति । रसेऽतिव्याप्तिपरिहाराय नयनेति । नयनग्राह्यसत्ताजातिमति घटादावतिव्याप्तिपरिहाराय एकेति । रूपत्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय जातीति । एवमन्यत्रापि ।

*

(रूपादीनामवान्तरविभागः, तेषां यावद्द्रव्यभावित्वञ्च)

एते यावद्द्रव्यभाव्ययावद्द्रव्यभाविभेदाद्द्वेधा।[1] पार्थिवपरमाणोरन्यत्र यावद्द्रव्यभाविनः,[2] प्रत्यक्षद्रव्ये प्रत्यक्षतस्तथा सिद्धिः।[3] द्व्यणुकादिषु रूपादयो यावद्द्रव्यभाविनः, कार्यरूपादित्वात् घटरूपादिवदिति। सलिलादिपरमाणुरूपादयो यावद्द्रव्यभाविनः, सलिलादिरूपादित्वात् सम्प्रतिपन्नवदिति।

[ब. टी.] एते रूपादयः। पीलुपाकवादिमते घटरूपादेरपाकजत्वाद्यावद्द्रव्यभावित्वात्। प्रत्यक्षतः तर्कोपबृंहितादित्यर्थः । द्व्यणुकादिष्वित्यादिपदेन घ्राणादिपरिग्रहः। यावदिति। स्वाश्रयसमानकालीनध्वंसाप्रतियोगिन इत्यर्थः। पृथिवीपरमाणुनिष्ठरूपादौ व्यभिचारवारणाय कार्यनिष्ठेति। संयोगादौ व्यभिचारवारणाय रूपादित्वादिति। रूपत्वात् रसत्वादित्यादि पृथगेव हेतुः। यत्पटादिरूपं वादिद्वयमते यावद्द्रव्यभावि, तद्दृष्टान्तयति—पटरूपादिवदिति। सलिलादीत्यनुमाने आदिपदेन तेजःप्रभृतिपरिग्रहः। परमाणुपदमुद्देश्यसिद्धये। रूपादय इत्यादिपदेन रसादेः परिग्रहः, न तु संयोगादेः। अत्र यत्परमाणौ यो विशेषगुणः स तत्र पक्षः। यद्वा सलिलादिपरमाणुविशेषगुणत्वेन पक्षता। तेन तेजःपरमाणौ रसाद्यभावे वायुपरमाणुषु स्पर्शमात्रसत्वे स्वाश्रयासिद्धिः परास्ता। तेन न वा बाधः। पृथिवीपरमाणुरूपादौ व्यभिचारवारणाय सलिलादीति। संयोगादौ व्यभिचारवारणाय रूपादित्वादिति। सम्प्रतिपन्नं जलरूपम्।

[अ. टी.] रूपादीनामवान्तरविभागमाह—एत इति। परमाणुपाकादिक्रियायां घटादिगतरूपादयो यावद्द्रव्यभाविनः। के तर्ह्ययावद्द्रव्यभाविनः पार्थिवपरमाणूनामिति विभागं विशदयति—पार्थिवेति। उभयत्र प्रमाणमाह—प्रत्यक्षद्रव्य इत्यादिना। पार्थिवगुणादौ व्यभिचारव्युदासाय कार्यरूपादित्वादित्युक्तम्।

---

१ भेदेनेति ग, घ. २ परमाणुभ्य इति क. ३ पार्थिवपरमाणूनां रूपादयो यावद्द्रव्यभाविन इति ग. ४ पदमिदं नास्ति मु. ५ सिद्ध इति ख, ग; सिद्धा इति क. ६ पदमिदं नास्ति क, ग, घ पुस्तकेषु. ७ कार्यनिष्ठरूपादित्वादिति बलभद्रोद्धृतः पाठः ८ घटादीति ग, पटादीति घ, पटेति ख. ९ आदिपदं नास्ति घ पुस्तके. १० परमाणावेव रूपादेः पाक इति ये वदन्ति ते पीलुपाकवादिनो वैशेषिकाः, तेषां मत इत्यर्थः। ते हि-अवयविनावष्टब्धेष्ववयवेषु पाको न सम्भवति, किन्तु तेजस्संयोगेनावयविषु विनष्टेषु स्वतन्त्रेषु परमाणुष्वेव पाकः। अनन्तरं पक्वपरमाणुसंयोगाद्द्व्यणुकादिक्रमेण महावयविपर्यन्तोत्पत्तिः, वह्निसूक्ष्मावयवानां विजातीयवेगाधीनक्रियावशात्पूर्वव्यूहनाशः व्यूहान्तरोत्पत्तिश्चेत्यभिप्रयन्ति। ११ ध्वंससंयोगादाविति घ. १२ पदमिदं नास्ति घ पुस्तके. १३ परमाणुगुणेति छ. १४ स्थलजलरूपमिति घ. १५ पाकप्रक्रियायामिति ज, ट. १६ तर्हि तु इति ट. १७ पार्थिवाणूनामिति ज, ट. १८ पार्थिवाणुरूपादाविति ज, ट. १९ वारणायेति ज, ट. २० रूपादित्युक्तमिति ट.

[वं. टी.] द्व्यणुकादिष्विति । कार्येत्यत्र षष्ठीसमासः । तेन न पार्थिवपरमाणुरूपादौ व्यभिचारः । कर्मण्यतिव्याप्तिपरिहारार्थं रूपेति । सलिलेति । सिद्धसाधनपरिहाराय प्रतिज्ञायां परमाणुपदम् । पार्थिवपरमाणुरूपेऽतिव्याप्तिपरिहाराय सलिलादीति । असिद्धिपरिहारार्थं रूपादीति ।

(अयावद्द्रव्यभाविनो गुणाः)

पार्थिवपरमाणुष्वयावद्द्रव्यभाविनः । तत्र प्रमाणम्—पार्थिवपरमाणौ सति रूपादयो निवर्तन्ते, अनित्यत्वात्, सम्प्रतिपन्नवत् इति । पार्थिवं द्व्यणुकम् अनित्यविशेषगुणवत्समवेतं, पार्थिवकार्यत्वात्, घटवदिति नासिद्धं साधनम् । हुतवहनिर्वहावलीढे महीखण्डे पूर्वरूपेतिलक्षणरूपादिदर्शनात्तत्रैवं तथा कल्पने सति नातिप्रसङ्ग इति तर्कः । तत्र पार्थिवपरमाणुरग्निसंयोगासमवायिकारणविशेषगुणवान्, अनित्यविशेषगुणवत्वे सति नित्यभूतत्वात्, आकाशवदिति पाकजत्वं तेषां सिद्धम् ।

[ध. टी.] सतीति । उद्देश्यसिद्धये सत्यन्तम् । अनित्यत्वात् ध्वंसप्रतियोगित्वादित्यर्थः । न चेत्थं घटादिरूपादीनामप्ययावद्द्रव्यभावित्वसिद्धिः, पक्षधर्मताबलेन प्रकृते स्वाश्रयसमानकालीनध्वंसप्रतियोगित्वसिद्धिः, अयावद्द्रव्यभावित्वसिद्धिरूपत्वात् । ननु परमाणुरूपत्वादिना नित्यत्वमेव तस्येत्यत आह—पार्थिवं द्व्यणुकमिति । घटादौ सिद्धसाधनवारणाय पृथिवीपरमाणौ च बाधवारणाय पार्थिवेति । अणुकशब्देन परमाणुरप्युच्यत इत्यतो द्वीत्युक्तम् । यद्वा द्व्यणुकशब्दो रूढः । अनित्यपदं विशेषपदञ्च सिद्धसाधनवारणाय । अनित्यविशेषः प्रागभावादि । तद्वत्समवेतत्वेनार्थान्तरवारणाय गुणेति । अनित्यविशेषगुणवद्घटादिसम्बन्धत्वेनार्थान्तरवारणाय समवेतत्वमुक्तम् । बाधवारणाय(?)वस्तुनित्यत्वसाधकमनुमानं वा (वा ? चा) पाकजत्वाद्युपा(ध्याभिहित ? द्युपहत) मिति भावः । न त्वीदृशानुमानेन जलादिपरमाणुरूपादीनामप्यनित्यत्वप्रसङ्ग इत्यत आह—हुतवहेति । कार्यगतविजातीयरूपादिदर्शनमेव कारणगतविजातीयरूपादौ तन्त्रमिति भावः । एवंमर्थमनुमानेन साधयति—पार्थिवपरमाणुरिति । अणुकादौ बाधवारणाय अणुरिति । द्व्यणुके बाधवारणाय परमेति । जलादिपरमाणौ बाधवारणाय पार्थिवेति । आश्रयत्वे गुणाश्रयत्वे विशेषगुणाश्रयत्वे चार्थान्तरमतः अग्निसंयोगासमवायिकारणकेत्युक्तम् । अभिघातरूपाग्निसंयोगासमवायिकारणकाश्रयाश्रयत्वेनार्थान्तरवारणाय गुणेति । अग्निसंयोगासमवायिकारणको यो

१ निवहेति नास्ति ख पुस्तके. २ देमेति मु. ३ रूपादीति क. ४ तत्रैवेति ख, ग, घ, मु. ५ तथाकल्पे सतीति मु, तथेति नास्ति क पुस्तके. ६ तर्क इति नास्ति ख मुद्रितपुस्तकयोः. ७ तथेति नास्ति क पुस्तके. ८ गुणाश्रय इति ग, घ. ९ सतीति मु. १० नित्यत्वादिति घ. ११ न चेदिति छ. १२ घातित्येति छ. १३ गुणवतो घटादीति छ. १४ एतदर्थमिति छ. १५ द्व्यणुकेति घ. १६ विशेषेति नास्ति घ पुस्तके. १७ अभिघातेति छ. १८ य इति नास्ति घ पुस्तके.

विभागः तदाश्रयत्वेनार्थान्तरवारणाय विशेषेति । यद्वा अग्निसंयुक्तवायुपरमाण्वादिना सह पार्थिवपरमाणोरग्निसंयोगासमवायिकारणकसंयोगवत्त्वेनार्थान्तरवारणाय विशेषपदम् । अदृष्टवदात्मसंयोगादिजनितरूपादिमत्त्वेन सिद्धसाधनतावारणाय अग्नीति । अग्निसंयोगासमवायिकारणकविशेषः विभागादिरेव स्यादतो गुणेति । जलादिपरमाणौ व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम् । अनित्यसंयोगादिरस्त्येवेति व्यभिचारतादवस्थ्यवारणाय सत्यन्तान्तर्गतो विशेषभागः । अनित्यविशेषस्संयोगादिरस्त्येवेत्यत आह—सत्यन्ते गुणवत्त्वम् । घटादौ व्यभिचारवारणाय नित्येति । आत्मनि व्यभिचारवारणाय भूतत्वादिति । आकाशवदिति । यो वंशादौ अग्निसंयोगे घटपटाशब्दो जायते तमादाय साध्यसत्त्वम् ।

[अ. टी.] पार्थिवा गुणा रूपादयो नित्यत्वमसिद्धमित्यत आह—पार्थिवं ... । ... ताव्युदासार्थं अनित्यपदम् । अपाकजत्वोपाध्युपहतं पूर्वमाभासानुमानमिति भावः । नन्वाप्यद्व्यणुकादेरप्येवं साधनसम्भवाज्जलादिपरमाणूनामनित्यरूपादिप्रसङ्ग इत्यत आह—हुतवहेति । आप्यादिकार्ये विलक्षणरूपादिदर्शनस्यानुकूलस्याभावात् नातिप्रसङ्गः । यथा शुक्लः पटः शुक्लतन्त्वारब्धः, एवं लोहितो महीपिण्डस्तद्कारणारब्ध इति परम्परया परमाणूनां पाकजं लौहित्यमुक्तम् । तदनुमानारूढं करोति—पार्थिवेति । अग्निसंयोगोऽसमवायि-

पार्थिवाणोरनङ्गीकारेण धार्थः स्यादतः अग्निपदम् । भूतत्वादित्युक्ते आप्यद्व्यणुकादौ व्यभिचारस्स्यादत उक्तं नित्येति । जलादिपरमाणुषु व्यभिचारवारणाय अनित्यविशेषगुणवत्त्वे सतीत्युक्तम् । तेषां लोहितरूपादीनाम् ।

[वा. टी.] पार्थिवमिति । सिद्धसाधनपरिहारार्थम् अनित्येति । अनित्यगुणसंयोगादिमत्परमाणुद्वयसमवेतत्वेन सिद्धसाधनपरिहारार्थं विशेषेति । आप्यद्व्यणुकेऽतिव्याप्तिपरिहाराय पार्थिवेति । सिद्धे हेतौ पाकजत्वं साधयति—हुतवहेत्यादिना सिद्धमित्यन्तेन । तत्र तथा सति

१ इत आरभ्य अर्थान्तरवारणायेत्यन्तो भागस्त्रुटितः छ पुस्तके. २ जनितत्वे इति छ. ३ एतदनन्तरम् असमवायिसिद्धये असमवायीति । अग्निनिष्ठस्य संयोगातिरिक्तस्यासमवायित्वसिद्धिवारणाय असमवायीति पाठ उपलभ्यते च पुस्तके. ४ इत आरभ्य नित्येति इत्यन्तो भागो नास्ति छ पुस्तके. ५ संयोगाद्घटपटेति च. ६ पार्थिवाण्विति अ, ट. ७ जलाण्विति ज, ट. ८ पदमिदं नास्ति ट पुस्तके. ९ गुणसमवेतेति ज. १० व्युदासार्थमिति ज, ट. ११ न्याय इति ट. १२ अभावादत्र च भावाश्चेति ज, अभावादत्र तद्भावाच्चेति ट. १३ तादृग्रेण्वारब्ध इति ट. १४ पार्थिवपरमाणुरिति ज, ट. १५ व्युदासायेत्यारभ्य स्यादित्यन्तो भागो नास्ति ज पुस्तके. १६ निरासाय अग्नीति ज, ट. १७ बाधव्युदासायेति ज, ट.

साधितेऽनित्यत्वे, एवं कल्पने कल्प्यतेऽनेनेति कल्पनमनुमानम्, तस्मिन् क्रियमाणे नातिप्रसङ्ग इत्यन्वयः। तदाह–पार्थिवेति। सिद्धसाधनतापरिहाराय अग्निसंयोगेति। आप्यद्व्यणुकेऽतिव्याप्तिपरिहाराय नित्येति। आप्याणौ व्यभिचारपरिहाराय अनित्येति। घटेऽतिव्याप्तिपरिहाराय नित्येति। आत्मनि व्यभिचारवारणाय मूर्तेति। तर्ह्यतिप्रसङ्ग एव, आप्याणूनामपि तथा साधयितुं शक्यत्वादत आह–हुतवहेति। अयमाशयः–अनलसमाकुलपृथिव्यवयवपूर्वरूपपरावृत्त्या रूपान्तरदर्शनात्कार्यवैलक्षण्येन कारणवैलक्षण्यानुमानस्य रक्तपटदर्शनेन रक्ततन्तुवत्सप्रसरत्वात्परम्परया परमाणूनामपि तथा साधनान्नातिप्रसङ्ग इति। नन्वन्त्यावयविन्येवाग्निसंयोगात् पूर्वरूपनाशे संयोगान्तरेण पुनरन्योत्पत्तौ नेयं कल्पनेति चेन्न; तदा नष्टेऽवयविन्यवयवरूपे रूपान्तरदर्शनं न स्यात्, तथास्तीत्याह–खण्ड इति।

*

(संख्यालक्षणम् तद्विभागश्च)

गुणत्वावान्तरजात्या द्व्यणुकपरिमाणासमवायिकारणसजातीया संख्या। सा द्वेधा–अयावद्द्रव्यभावियावद्द्रव्यभाविभेदेन।

[प. टी.] गुणत्वावान्तरेति। द्व्यणुकपरिमाणस्यासमवायिकारणं परमाणुद्वित्वम्, तस्य गुणत्वावान्तरजातिपुरस्कारेण सजातीया संख्येत्यर्थः। सत्तया द्वित्वसजातीयरूपादावतिव्याप्तिभङ्गाय अवान्तरेति। गुणत्वेन द्वित्वसजातीयरूपादावतिव्याप्तिवारणाय गुणत्वेति। रूपद्वित्वान्यतरत्वादिना रूपादावतिव्याप्तिभङ्गाय जात्येति। जातिपदेन समवेतो धर्म इह गृहीतस्तेन न नित्यपदव्यर्थता। गुणत्वावान्तरजाती रूपत्वादिरत उक्तं द्व्यणुकेत्यादि। घटपरिमाणासमवायिकारणसजातीये परिमाणेऽतिव्याप्त्यभावाय द्व्यणुकेति। द्व्यणुकासमवायिकारणसंयोगसजातीयसंयोगेऽतिव्याप्तिभङ्गाय परिमाणेति। द्व्यणुकपरिमाणे निमित्तकारणज्ञानादिसजातीयेऽतिव्याप्तिवारणाय असमवायीति। सा द्वेधा–अयावद्द्रव्यभावियावद्द्रव्यभाविभेदादिति पाठः। यावद्द्रव्यभाव्ययावद्द्रव्यभाविभेदादिति पाठेऽपि अयावद्द्रव्यभाविन एव पूर्वनिर्देशो योग्यः। अल्पस्वरत्वात्तु यावद्द्रव्यभाविनः पूर्वः पाठः।

[अ. टी.] सजातीया संख्येत्युक्ते ईश्वरज्ञानादिना निमित्तकारणेन सजातीयसंयोगादिना व्य-
[illegible]। संयोगाद्यसमवायिकारणसजातीयक्रियाविशे-
[illegible] तूलादिपरिमाणविशेषासमवायिकारणप्रशिथिलावयवसंयोगादौ व्यभिचारवारणार्थं द्व्यणुकपदम्। तथापि गुणत्वसत्ताभ्यां द्व्यणुकपरिमाणासमवायिकारणसजातीयरूपादौ व्यभिचारवारणाय गुणत्वावान्तरजात्येत्युक्तम्। अनेकद्रव्यमाश्रयो यस्य तदनेकद्रव्यम्, तादृशमसमवायिकारणं यस्य तदनेकद्रव्यासमवायिकारणम्।

---

१ भेदादिति क, ख, ग, घ. २ वारणायेति घ. ३ निरासायेति घ. ४ द्वित्वादिनेति घ. ५ नियमेति छ. ६ निरासायेति च. ७ अभावायेति च. ८ अपीति नास्ति च पुस्तके. ९ स्वल्पस्वरत्वादिति छ. १० तस्य स्पष्टप्रतिपत्त्यर्थमिति ज, ट. ११ निरासार्थमिति ज, ट. १२ वारणार्थमिति ज, ट. १३ सत्ताभ्यामिति ज, ट. १४ व्यभिचारस्यादृत उक्तमिति ज, ट. १५ आश्रयमूर्तमिति ज, ट.

[वा. टी.] **गुणत्वेति** । कालादिनिवृत्तये **असमवायीति** । रूपनिवृत्तये **परिमाणेति** । परिमाणनिवृत्तये **द्व्यणुकेति** । घटादिसंख्यायामव्याप्तिनिवृत्तये **सजातीयेति** । सत्तया सजातीये घटेऽतिव्याप्तिपरिहाराय **अवान्तरेति** । अवान्तरजात्या गुणत्वेन सजातीये गन्धेऽतिव्याप्तिपरिहाराय **गुणत्वेति** । तथाच संख्यात्ववती संख्येत्युक्तं भवति । एवं परिमाणादिलक्षणेऽप्यवगन्तव्यम् ।

*

(द्वित्वसंख्यासिद्धिः, तस्या अयावद्द्रव्यभावित्वञ्च)

पूर्वत्र प्रमाणम्—परिमाणत्वं, संयोगातिरिक्तानेकद्रव्यासमवायिकारणवृत्ति, परिमाणजातित्वात्, सत्तावदिति । परमाणुपरिमाणम्, असमवायिकारणं न भवति, नित्यपरिमाणत्वात्, आकाशपरिमाणवदिति परपक्षव्युदासः । द्वित्वम्, अयावद्द्रव्यभावि, अनेकगुणत्वात्, संयोगवदिति । द्वित्वसामान्यं, बुद्धिजवृत्ति, द्वित्वजातित्वात्, सत्तावदिति बुद्धिजत्वम् ।

[च. टी.] **परिमाणत्वमिति** । अनेकं द्रव्यं समवायि यस्य तदसमवायिकारणं यस्य तत्र वर्तत इत्यर्थः । एतावता द्व्यणुकपरिमाणस्यासमवायिकारणं परिमाणं न भवति, किन्तु द्वित्वसंख्येति सिद्धम् । संयोगातिरिक्तवृत्तित्वे सिद्धसाधनता, संयोगातिरिक्तासमवायिकारणकवृत्तित्वेऽपि सिद्धसाधनता, अनेकद्रव्यन्तु पिण्डावयवसंयोगः, तदसमवायिकारणकवृत्तित्वेऽपि सिद्धसाधनता, संयोगातिरिक्तानेकद्रव्यवृत्तित्वे बाधः, अतो विशिष्टसाध्यनिर्देशः । कालत्वे व्यभिचारवारणाय जातित्वादिति । दिक्कालवृत्तित्वे व्यभिचारवारणाय जातिनिवेशित्वभागः । विशेषे व्यभिचारवारणाय अनेकसमवेतत्वभागः । घटत्वे व्यभिचारवारणाय परिमाणेति । सत्तायां विभागजविभागवृत्तित्वेन साध्यसिद्धिः । ननु परमाणुपरिमाणमेव च द्व्यणुकपरिमाणासमवायिकारणमित्यत आह—**परमाण्विति** । कपालादिपरिमाणे बाधवारणाय परमाण्विति । उद्देश्यसिद्धये परमेति । द्व्यणुकपरिमाणस्याप्यसमवायिकारणत्वाभावात् परमाणुर्नासमवायिकारणमित्युक्ते सिद्धसाधनम् । परमाणुनिष्ठं नासमवायिकारणमित्युक्ते तद्रूपादौ बाधः, विशेषादौ सिद्धसाधनञ्च । न कारणमित्युक्ते बाधः, तस्य योगिज्ञानादिजनकत्वात्, अखण्डाभावे वैयर्थ्याभावाच्च । उद्देश्यसिद्ध्यर्थत्वाच्च न समवायिकारणमित्युक्ते सिद्धसाधनम् । परमपरिमाणस्य पक्षीकरणे गगनपरिमाणादौ सिद्धसाधनमतः अण्विति । उद्देश्यसिद्धये च तत् । अनित्य-

१ वृत्तिजातित्वादिति मु. २ द्रव्यगुणत्वादिति मु. ३ पदमिदं नास्ति मुद्रितपुस्तके. ४ एतावतेत्यारभ्य द्वित्वसंख्येत्यन्तो भागः नास्ति छ पुस्तके. ५ द्रव्यस्थलेति घ. ६ कारणेति नास्ति घ पुस्तके. ७ एतदनन्तरं घ पुस्तके पाठ एवमुपलभ्यते—अनेकद्रव्यं द्व्यणुकादि, तदसमवायिकारणकवृत्तित्वेऽपि सिद्धसाधनता इति । ८ पङ्क्तिरियं नास्ति छ पुस्तके. ९ चेति नास्ति च पुस्तके. १० परमेति छ. ११ पक्षीकारे इति छ.

परिमाणे व्यभिचारवारणाय नित्येति। नित्यरूपादौ व्यभिचारवारणाय परिमाणत्वादिति। परमाणुपरिमाणस्य कारणत्वे द्व्यणुकेऽणुतरत्वप्रसङ्गः, कपालापेक्षया घटे महत्तरत्ववत्। द्वित्वमिति। द्रव्यभावित्वे सिद्धसाधनत्वमतः अयावदिति। अयावद्भावीत्युक्ते यत्किञ्चिद्यावद्भावित्वसत्त्वाद्बाधः। यत्किञ्चिदयावद्भावित्वात् सिद्धसाधनञ्च। तदर्थं द्रव्यपदं स्वाश्रयपरम्। अनेकगुणत्वात् अनेकाश्रयगुणत्वादित्यर्थः। परिमाणादौ व्यभिचारवारणाय अनेकेति। जातौ व्यभिचारवारणाय गुणत्वादिति। यद्यपि सर्वं द्वित्वं नायावद्द्रव्यभावि, ईश्वरापेक्षाबुद्धिजद्वित्वादेर्घटादिनाशेनापि नाशसम्भवात्, तथापि अयावद्द्रव्यभाविजातीयत्वं तत्राप्यस्त्येवेति भावः। न च घटरूपेऽपीत्थमयावद्द्रव्यभावित्वं स्यात्। अयावद्द्रव्यभाविपार्थिवपरमाणुरूपसजातीयत्वादिति वाच्यम्। अवयविवृत्त्ययावद्द्रव्यभाविसजातीयत्वस्य गुणत्वव्याप्यजात्या विवक्षितत्वात्। शब्दे सुखादौ चातादृशमेवायावद्द्रव्यभावित्वमित्यवगन्तव्यम्। न चैकत्वेऽतिप्रसङ्गः, गुणत्वव्याप्यव्याप्यजातेरुक्तत्वात्। यद्वा व्यासज्यवृत्तीनां व्यासज्यवृत्तित्वमेवायावद्द्रव्यभावित्वमित्यर्थः। अयावद्द्रव्यता विजातीयत्वे सति व्यासज्यवृत्तित्वमेव वा। न च जातीयत्वाद्वैयर्थ्यम्, अयावद्द्रव्यभाविपदार्थस्य यावद्द्रव्यभावित्वघटिततया वक्तव्यत्वात्, प्रवृत्तिनिमित्ते वैयर्थ्याभावात्। शब्दसुखपृथिवीपरमाणुरूपादीनान्तु स्वाश्रयसमानकालीनध्वंसप्रतियोगित्वमेवायावद्द्रव्यभावित्वम्। न च घटादिरूपेऽतिप्रसक्तिः, तस्य स्वाश्रयसमानकालीनप्रागभावप्रतियोगित्वेऽपि तत्समानकालीनध्वंसप्रतियोगित्वाभावात्। यद्वा यद्द्वित्वमाश्रयनाशजन्यध्वंसप्रतियोगि तद्भिन्नः पक्षः। हेतुरपि तद्भिन्नत्वेन योज्यः। एवं तादृशसंयोगादिभिन्नत्वेनापि विशेष्यः। तेन न बाधव्यभिचारौ। उपहितानुपहितभेदेन हेतुसाध्ययोर्भेद इति साध्यवैशिष्ट्यम्। यद्वा एकत्रात्यन्ताभावोऽन्यत्रान्योन्याभावो निवेशनीय इति भेदः। तावता प्रथमो हेतुः यावद्द्रव्यभाविद्वित्वादिपृथक्त्वादिसंयोगविभागभिन्नानेकवृत्तिगुणत्वादित्येवंरूपः। द्वितीयस्तु यावद्द्रव्यभाविभिन्नत्वादित्येवं हेतुः। यदि च साध्यं यावद्द्रव्यभावित्वराहित्यं, यदि वा साध्यं यावद्द्रव्यभाविभिन्नत्वं, तदा द्वितीयो हेतुः यावद्द्रव्यभावित्वराहित्यम्। अनित्यमनेकवृत्तिगुणत्वं न देयमेव। द्वित्वसामान्यमिति। द्वित्वमात्रवृत्तिसामान्यमित्यर्थः। असाधारणबुद्धिजन्यवृत्तित्वं साध्यम्। तेन नेश्वरबुद्धिजन्यवृत्तित्वेनार्थान्तरम्। आत्मादौ बाधवारणाय पक्षे द्वित्वेति। उद्देश्यसिद्धये पक्षे धर्मपदं विहाय सामान्यपदम्। पक्षातिरिक्ते नमोद्वित्वान्यतरत्वादौ सन्दिग्धव्यभिचारवारणाय जातित्वादिति। यद्वा बुद्धिजन्यसमवेतत्वं साध्यम्। तेनेदृशान्यतरत्वादौ निश्चितव्यभिचारवारणाय जातित्वादिति।

१ साधनेति छ. २ भावित्वादिति घ. ३ जन्येति घ. ४ व्याप्याव्याप्येति घ. ५ इदर्थं इति नास्ति घ पुस्तके. ६ भिन्नत्वेनाबाध्य इति छ. ७ न साध्यावैशिष्ट्यमिति घ. ८ भपरत्रेति घ. ९ वृत्तित्वेति घ. १० त्वादीत्येवमिति छ. ११ भिन्नत्वं तदा द्वितीयो हेतुः, यावद्द्रव्यभावित्वराहित्यम्, अनेकगुणत्वं न देयमेवेति घ पुस्तकपाठः. १२ आत्माद्यावादाविति घ. १३ स्वीयबुद्धिजसमवेतत्वमिति घ.

पक्षेऽपि सामान्यपदमेतद्वित्वादौ बाधवारणाय। आत्मादौ व्यभिचारवारणाय द्वित्वेति। बुद्धिजेच्छावृत्तित्वेन सत्ताया दृष्टान्तता। अन्ये त्वपेक्षाबुद्धिजवृत्तित्वं साध्यम्। न च व्याप्यत्वासिद्धिः, परत्वादेरपेक्षाबुद्धिजन्यत्वसिद्धित्वाभिप्रायेण दृष्टान्तसिद्धिः। न चेश्वरापेक्षाबुद्धिजन्यवृत्तित्वेनार्थान्तरम्, अपेक्षाबुद्धित्वेन तद्बुद्धिजन्यवृत्तित्वस्याप्युद्देश्यत्वात्। न चाननुगमः, अपेक्षाबुद्धिप्रतिपाद्यत्वेनानुगमादित्याहुः। न च संख्यात्वे व्यभिचारः, तस्य पक्षसमत्वात्।

[अ. टी.] परिमाणत्वं तद्वृत्तीत्युक्ते, तादृशतूलपरिमाणवृत्तित्वेन सिद्धसाधनता स्यात्तद्व्युदासाय संयोगातिरिक्तेति। संयोगातिरिक्तवृत्तीत्युक्ते परिमाणवृत्तित्वेन सिद्धसाधनता स्यादत उक्तम् अनेकद्रव्येति। संयोगातिरिक्तानेकद्रव्यवृत्तीत्युक्तेऽपि बाधस्स्यात्, परिमाणस्य नियतैकद्रव्यवृत्तित्वादत आह–असमवायिकारणेति। संयोगातिरिक्तासमवायिकारणवृत्तीत्युक्तेऽपि स्थूलतन्तुपरिमाणासमवायिकारणकपटपरिमाणवृत्तित्वेन सिद्धसाधनता स्यादत उक्तम् अनेकद्रव्येति। परिमाणत्वं तावत्परिमाणमात्रवृत्ति। तत्र संयोगपरिमाणाभ्यामन्यदसमवायिकारणं परिमाणस्यानेकद्रव्यद्वित्वादिसंख्यैव सङ्गच्छत इति परिमाणत्वेन तदारब्धपरिमाणवृत्तित्वेन संख्यासिद्धिः। सत्तायाः संयोगातिरिक्तानेकद्रव्यविभागासमवायिकारणकविभागवृत्तेर्दृष्टान्तसिद्धिः। ननु व्यणुकपरिमाणासमवायिकारणं परमाणुगतद्वित्वसंख्येत्युक्तम्। तत्र परमाणुपरिमाणस्येव तद्व्यादिवत्कारणत्वसम्भवादत आह–परमाणुपरिमाणमिति। समवायिकारणं न भवतीति सिद्धसाधनता, व्यवहारे निमित्तकारणञ्च भवतीति बाधस्स्यात्, तदुभयव्युदासाय असमवायिकारणग्रहणम्। तन्त्वादिपरिमाणे व्यभिचारवारणाय नित्यपरिमाणत्वादित्युक्तम्। तूलपरिमाणस्य विजातीयाप्रशिथिलावयवसंयोगादुत्पत्तिदर्शनात्संख्यातोऽपि समानपरिमाणतन्त्वोरारब्धे पटे परिमाणविशेषोदयावलोकनाच्च। परमाणुद्वित्वस्य व्यणुकपरिमाणकारणत्वे सम्भवति न नित्यपरिमाणकारणकत्वकल्पना युक्तेति भावः। एवं द्वित्वं प्रसाध्य तस्यायावद्द्रव्यभावित्वं साधयति–द्वित्वमिति। रूपादौ व्यभिचारवारणाय अनेकपदम्। द्वित्वञ्चापेक्षाबुद्धिजन्यमिति तस्य साधनमाह–द्वित्वसामान्यमिति। संयोगत्वादौ व्यभिचारवारणाय द्वित्वजातित्वादित्युक्तम्। सत्ताया बुद्धिजन्य इच्छादौ वृत्तिरिति दृष्टान्तसिद्धिः।

[वा. टी.] परिमाणत्वमिति। परिमाणासमवायिकारणकपरिमाणवृत्तित्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय अनेकद्रव्येति। अनेकं द्रव्यमाश्रयत्वेन यस्य तत्तया तदसमवायिकारणं यस्येति विग्रहः। प्रशिथिलावयवसंयोगासमवायिकारणकतूलपिण्डपरिमाणवृत्तित्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय संयोगातिरिक्तेति। रूपत्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय परिमाणेति। संयोगातिरिक्तानेकद्रव्यपदाभ्यां संयोग-

---

१ आत्मत्वादाविति घ. २ बुद्धिजत्वावृत्तीति छ. ३ तस्या व्युदासायेति ज, ट. ४ मात्रेति नास्ति ज. ५ तत्रेति नास्ति झ पुस्तके. ६ वृत्तित्व इति ज, ट. ७ गता इति ज. ८ परमाण्विति नास्ति ट पुस्तके. ९ स्यादिति नास्ति ज, ट पुस्तकयोः. १० कारणं न भवतीत्युक्तमिति ज, ट. ११ आरब्धपटे इति ज, ट. १२ परिमाणे कारणत्वमिति ट. १३ वृत्तित्वमिति झ. १४ व्युदासायेति ट.

परिमाणनिरासे परिशेषात् द्वित्वमसमवायिकारणमिति द्वित्वसंख्यासिद्धिः । दृष्टान्ते च विभागजविभागवृत्तित्वेन सिद्धिः । अनित्यपरिमाणेऽतिव्याप्तिपरिहाराय नित्येति । रूपेऽतिव्याप्तिपरिहाराय अनेकेति । रूपत्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय द्वित्वेति । दृष्टान्ते च सुखादिवृत्तित्वेन सिद्धिः । द्वित्वबुद्धिजन्यत्वश्चैवम्—आदाविन्द्रियसम्बन्धादेकमिति सामान्यतो बुद्धिर्भवति । तत एकमिदमिदमेकमित्येकत्वयुगलविषयापेक्षाबुद्धिर्भवति, ततो द्वित्वोत्पत्तिः । तत्र द्वे द्रव्ये समवायिकारणम्, तदेकत्वेऽसमवायिकारणम्, अपेक्षाबुद्धिर्निमित्तकारणमिति । तदाहुः—

'आदाविन्द्रियसन्निकर्षघटनादेकत्वसामान्यधी-
रेकत्वोभयगोचरा मतिरतो द्वित्वं ततो जायते ।
द्वित्वस्य प्रमितिस्ततोऽपि परतो द्वित्वप्रमानन्तरं
द्वे द्रव्ये इति धीरियं निगदिता द्वित्वोदयप्रक्रिया' ॥ इति ।

*

(संख्याया यावद्द्रव्यभावित्वे प्रमाणम्)

उत्तरत्र प्रमाणम्—संख्यात्वं यावद्द्रव्यभाविवृत्ति, द्वित्वत्रित्वजातित्वात्, सत्तावदिति, तदेवैकत्वम् । संख्या गुणः, सामान्यैकाश्रयत्वे सति अकर्मत्वात्, रूपवदिति परपक्षव्युदासः । एवंभूतायास्संख्यायाः पदार्थान्तरत्वे स्वीकृते रूपमपि पदार्थान्तरं भवेत् ।

[ब. टी.] **संख्यात्वमिति** । उद्देश्यसिद्धये **यावदिति** । यावद्द्रव्याश्रयभाविवृत्तीत्यर्थः । तेनाकाशादिसमानकालीनध्वंसप्रतियोगित्वेऽपि घटाद्येकत्वस्य न क्षतिः । संयोगत्वादौ व्यभिचारभङ्गाय **द्वित्वत्रित्वेति** । संयोगादि द्रव्यनाशान्नश्यति । तस्याप्ययावद्द्रव्यभावित्वं यथा तथोक्तमधस्तात् । द्वित्वत्वे त्रित्वत्वे व्यभिचारवारणायैतदुभयवृत्तित्वमुक्तम् । एतदुभयान्यतरत्वादौ व्यभिचारवारणाय (जातिपदम् ?) । जातिपदार्थस्य व्यर्थत्वभङ्गार्थं (?) । गुणत्वं साधयति—**संख्येति** । सामान्यादौ व्यभिचारवारणाय **सामान्येति** । घटे व्यभिचारवारणाय **एकेति** । कर्मणि व्यभिचारवारणाय **कर्मान्यत्वादिति** । जातिमात्रसमवायित्वे सति कर्मभिन्नत्वादिति समुदायार्थः । धर्ममात्रस्य समवायित्वं द्रव्येऽप्यस्ति । धर्ममात्रसम्बन्धित्वन्त्वसिद्धमतो विशिष्टो हेतुः । विपक्षे बाधकमाह—**एवमिति** ।

[अ. टी.] **उत्तरत्र** यावद्द्रव्यभाविसंख्यायाम् । संयोगत्वादौ व्यभिचारव्युदासाय **द्वित्वत्रित्वजातित्वादि**त्युक्तम् । यावद्द्रव्यभाविनी च संख्या एकत्वसंज्ञेत्याह—**तदेवेति** । संख्याया गुणत्वे सिद्धे सर्वमेतद्युक्तं स्यात्तदेव कुत इत्यत आह—**संख्या गुण**

१ वृत्तीति नास्ति घ पुस्तके. २ कर्मान्यत्वादिति बलदेवोद्धृतः पाठः. ३ संख्या गुण इत्यधिकं ग, घ. पुस्तकयोः. ४ वारणायेति च. ५ नाशायेति च. ६ जातिपदार्थस्यापार्थक्यभाग इति च. ७ मात्रसमवायित्वमिति च. ८ निरासायेति अ, ट. ९ संख्येति ड.

इति। अकर्मत्वादित्युक्ते सामान्यादौ द्रव्ये च व्यभिचारस्स्यादत उक्तम् सामान्यैकाश्रयत्वे सतीति। एवं गुणत्वान्न संख्यायाः पदार्थान्तरत्वम्, अन्यथातिप्रसङ्गादित्याह–एवंभूताया इति।

[वा. टी.] द्वित्वे त्रित्वे व्यभिचारनिरासाय द्वित्वत्रित्वे इति। संख्यायाः पदार्थान्तरत्वं निषेधति–संख्या गुण इति। सामान्येऽतिव्याप्तिपरिहाराय सामान्याश्रय इति। द्रव्येऽतिव्याप्तिपरिहाराय एकेति। कर्मण्यतिव्याप्तिपरिहाराय अकर्मत्वादिति। कर्मत्वानधिकरणत्वादित्यर्थः। यस्तु गुणादिषु संख्याव्यवहारस्स एकाश्रयसमवायिनिमित्त इति।

*

(परिमाणलक्षणं तद्विभागश्च)

गुणत्वावान्तरजात्या पृथक्त्वान्याप्रत्यक्षात्मगतयावद्द्रव्यभाविसजातीयं परिमाणम्। आत्मा पृथक्त्वान्याप्रत्यक्षयावद्द्रव्यभाविगुणवान्, सर्वगतत्वात्, दिग्वत्। सर्वं द्रव्यं, परिमाणाधिकरणं, द्रव्यत्वादात्मवदिति। तच्चतुर्विधम्–अणुमहद्दीर्घह्रस्वभेदात्। द्व्यणुकेऽणुत्वमङ्गीकृत्य ह्रस्वत्वं निराकुर्वाणं प्रति इदमनुमानम्–द्व्यणुकम्, अणुपरिमाणातिरिक्तपरिमाणाधिकरणं, कार्यद्रव्यत्वात्, पटवदिति। दीर्घत्वमनङ्गीकुर्वाणं प्रति इदमनुमानम्–पटो महत्वव्यतिरिक्तपरिमाणाधिकरणं, कार्यद्रव्यत्वात्, द्व्यणुकवदिति।

[व. टी.] गुणत्वावान्तरेति। सजातीयत्वमात्रं घटादावतिप्रसङ्गि, अत उक्तं गुणत्वेति। गुणत्वजात्या गुणत्वावान्तरजात्या सजातीयं गुणमात्रं भवति, अत उक्तम् आत्मगतेति। सुखादौ गतमत आह–अप्रत्यक्षेति। पृथक्त्वे गतमत आह–पृथक्त्वान्येति। संयोगादौ गतमत आह–यावद्द्रव्यभावीति। आत्मैकत्वं तु प्रत्यक्षमेव। आत्मपदेनैव गुरुत्वादिवारणम्। आत्मनि तादृशं गुणं साधयति–आत्मेति। पृथक्त्वेनार्थान्तरवारणाय पृथक्त्वान्येति। एकत्वेनार्थान्तरवारणाय अप्रत्यक्षेति। संयोगादिनार्थान्तरवारणाय यावद्द्रव्यभावीति। विशेषेणार्थान्तरभङ्गार्थं गुणेति। दिशि तादृशो गुण एकत्वम्। आत्मैकत्वाप्रत्यक्षत्वपक्षे आत्मैकत्वान्येति विशेषणीयम्। आत्मनि प्रसाध्यान्यत्र तं गुणं साधयति–सर्वमिति। आत्मातिरिक्तं सर्वमित्यर्थः। गुणे बाधवारणाय द्रव्यमिति। आत्मनि सिद्धसाधनवारणाय आत्मान्यत्वम्। उद्देश्यसिद्ध्यै सर्वमिति। यन्मतेनांशतः सिद्धसाधनं दोषस्तन्मते आत्मातिरिक्तं न देयम्। अधिकरणत्वं सिद्धमेवातः परिमाणेति। द्व्यणुकमिति। परमाणावर्थान्तरभङ्गाय द्वीति। अणुत्वेनार्थान्तर-

---

१ साधये इति ट. २ पृथक्पृथक्सर्वेति ग. ३ घट इति ख. ४ उक्तमिति नास्ति च पुस्तके. ५ गुणान्यसजातीयरूपादावतिप्रसङ्गभङ्गाय अवान्तरेति। गुणमात्रमिति च. ६ पङ्क्तिरियं त्रुटिता छ पुस्तके. ७ वारणायेति च. ८ प्रत्यक्षाश्रयक इति छ. ९ आत्मैकान्येति च. १० रिक्तत्वं नेति च.

वारणाय अतिरिक्तान्तम् । बाधवारणाय अण्विति । अणुद्रव्येऽतिरिक्तमणुपरिमाणं भवत्वेवेत्यत उक्तम् अतिरिक्तविशेषणम् परिमाणेति । रूपादिनार्थान्तरभङ्गायाति-रिक्तत्वविशेष्यं परिमाणेति । यन्मते परमाणोर्न ह्रस्वत्वं तन्मते व्यभिचारभङ्गाय कार्येति । द्रव्येतरस्मिन् व्यभिचारभङ्गाय द्रव्यत्वादिति । घट इति । कुतश्चिदतिरिक्तं परिमाणं महत्त्वमप्यत उक्तम् महत्त्वेति । महत्त्वेनार्थान्तरवारणाय व्यतिरिक्तान्तम् । रूपादिनार्थान्तरवारणाय परिमाणेति । यन्मते आकाशे महत्त्वातिरिक्तं परिमाणं नास्ति तन्मते कार्येति । सन्दिग्धव्यभिचारवारणाय वा तत् । रूपादौ व्यभिचार-वारणाय त्वादन्तम् ।

[अ. टी.] सजातीयपरिमाणमित्युक्ते द्रव्यादौ व्यभिचारस्स्यादतो गुणत्वावान्तरजात्ये-त्युक्तम् । एवमपि संयोगादौ व्यभिचारोऽतं उक्तम् यावद्द्रव्यभावीति । घटरूपादि-सजातीयरूपान्तरव्यवच्छेदार्थम् आत्मगतेति पदम् । तथाप्यात्मगतैकत्वे व्यभिचारोऽतः अप्रत्यक्षपदम् । तर्हि तद्गतपृथक्त्वेऽतिव्याप्तिः स्यादतः पृथक्त्वान्येत्युक्तम् । पृथक्त्वान्याप्रत्यक्षात्मगतयावद्द्रव्यभाविसजातीयं परिमाणमित्युक्तेऽपि गुणत्वेनाभिमतात्मगत-परिमाणेन सह सत्तया सजातीयद्रव्यादौ व्यभिचारस्स्यादतो गुणत्वजात्येत्युक्तम् । गुणत्वजात्या सजातीयर्व्यवच्छेदार्थम् अवान्तरपदम् । आत्मनि तादृग्गुणसिद्धौ तत्सजा-तीयं परिमाणं सिध्येत् । तत्सिद्धिरेव कुत इत्यत आह—आत्मेति । आत्मनो बुध्यादिगुण-वत्त्वस्य सिद्धत्वात् यावद्द्रव्यभाविपदम् । एकत्वैकपृथक्त्वाभ्यां सिद्धसाधनताव्युदासाय पृथक्त्वान्याप्रत्यक्षेत्युक्तम् । दिशि यथोक्तो गुण एकत्वम् । आत्मनि पृथक्त्वान्योऽ-प्रत्यक्षो यावद्द्रव्यभावी गुणः परिमाणमेव । इदानीं गुणत्वावान्तरजात्या तत्सजातीयमन्य-त्रापि साधयति—सर्वमिति । आत्मातिरिक्तं सर्वमित्यर्थः । एकदेशिमतमपाकरोति—द्व्यणुक इत्यादिना । परमाणुषु मनसि च व्यभिचारवारणाय कार्यत्वविशेषणम् । आकाशादिषु मह-त्त्वातिरिक्तपरिमाणाभावात् कार्येति पदम् । कर्मादौ व्यभिचारवारणाय द्रव्यपदम् ।

[वा. टी.] गुणत्वेति । रूपेऽतिव्याप्तिपरिहाराय आत्मेति । आत्मैकत्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय अप्रत्यक्षेति । आत्मैकपृथक्त्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय पृथक्त्वान्येति । संयोगेऽतिव्याप्तिपरिहाराय यावद्द्रव्येति । घटादिपरिमाणेऽव्याप्तिनिरासाय सजातीयेति । सजातीयासजातीये घटेऽतिव्या-प्तिपरिहाराय अवान्तरेति । रूपेऽतिव्याप्तिपरिहाराय गुणत्वेति । ननु घटादिस्वरूपस्यैव परि-माणत्वादसम्भवमिदं लक्षणमिति चेन्न; स्वरूपोपलब्धावपि ह्रस्ववितस्त्यादिविशेषानुपलम्भात् । अतोऽतिरिक्तं वाच्यम् । अस्ति च तत्त्वे प्रमाणमित्याह—आत्मेति । संयोगेन सिद्धसाधनतापरि-

१ वारणायेति च. २ द्रव्यत्वमिति छ. ३, ४ वारणायेति च. ५ घट इति नास्ति च पुस्तके. ६ कुतश्चिन्नीति च. ७ महत्त्वेति च. ८ स्यादत इति ज. ९ गतपदमिति ज, ट. १० आत्मैकत्व इति ज. ११ स्यादतोऽप्रत्यक्षेत्युक्तमिति ज, ट. १२ अतिव्याप्तिः, तत इति ज, अतिव्याप्तिः तन्निरासार्थं तद्गतेति ट. १३ लक्षणत्वेनेति ज, ट. १४ रूपादिष्वेवेति ज, ट. १५ वारणार्थमिति ज, ट. १६ कार्य-द्रव्यत्वादित्युक्तमिति ज, कार्येत्युक्तमिति ट. १७ पङ्क्तिरियं नास्ति ज, ट पुस्तकयोः.

हाराय यावद्द्रव्येति । संख्यया सिद्धसाधनतापरिहाराय अप्रत्यक्षेति । पृथक्त्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय पृथक्त्वान्येति । दृष्टान्ते च संख्यया सिद्धिः । पक्षे च तस्या अप्रत्यक्षपदेन निरासादनुपपत्त्या परिमाणसिद्धिः । द्व्यणुकमिति । सिद्धसाधनतापरिहाराय अणुपरिमाणेति । परमाणौ व्यभिचारपरिहाराय कार्येति ।

*

(पृथक्त्वलक्षणं तद्विभागश्च)

संख्यातिरिक्तदिक्कालगतात्यन्तसजातीयं पृथक्त्वम् । तद्द्वेधा–अयावद्द्रव्यभावियावद्द्रव्यभाविभेदात् । तत्र प्रमाणम्–कालः संख्यातिरिक्तदिग्गतगुणवान्, द्रव्यत्वात्, पटवदिति अयावद्द्रव्यभाविपृथक्त्वसिद्धिः । पृथक्त्वसामान्यम्, अस्मदादिबुद्धिजवृत्ति, पृथक्त्वजातित्वात्, सत्तावदिति बुद्धिजत्वं सिद्धम् । तत्सामान्यं कारणगुणपूर्ववृत्ति, पृथक्त्वजातित्वात्, सत्तावदिति । तत्सामान्यं यावद्द्रव्यभाविवृत्ति, द्विपृथक्त्वत्रिपृथक्त्वजातित्वात्, सत्तावदित्येकपृथक्त्वसिद्धिः ।

[व. टी.] संख्यातिरिक्तेति । घटादावतिव्याप्तिवारणाय अत्यन्तेति । गुणत्वावान्तरजात्येत्यर्थः । संख्यायामतिव्याप्तिवारणाय संख्यातिरिक्तेति । रूपादावतिव्याप्तिं वारयितुं दिक्कालगतेति । दिक्कालमात्रगतत्वं तदर्थः । तेन न संयोगादावतिव्याप्तिः । दिक्पक्षेणैकं लक्षणम्, कालपक्षेणैकं लक्षणम् । परिमाणातिरिक्तत्वमपि विशेषणं देयम् । यद्वा दिक्कालयोरुभयोर्गतत्वं विवक्षितम्, तेन परिमाणव्यवच्छेदः । दिक्कालगतद्वित्वसजातीयसंख्यायामतिव्याप्तिवारणाय अतिरिक्तान्तम् । काल इति । परिमाणेनार्थान्तरवारणाय दिग्गतेति । जात्यार्थान्तरवारणाय गुणेति । द्वित्वादिनार्थान्तरवारणाय अतिरिक्तान्तम् । पृथक्त्वेति । ईश्वरबुद्धिजवृत्तित्वेनार्थान्तरभङ्गाय अस्मदादीति । अदृष्टद्वारास्मदादिबुद्धिजवृत्तित्वेनार्थान्तरवारणायादृष्टाद्वारकत्वं विशेषणमूह्यम् । इदं विशेषणं द्वित्वादिस्थलेऽपि बोध्यम् । न चैकपृथक्त्वे व्यभिचारः, पृथक्त्वाव्याप्यपृथक्त्ववृत्तिजातित्वस्य हेतुत्वात् । एकपृथक्त्वं साधयति–तत्सामान्यमिति । पृथक्त्वमित्यर्थः । स्वसमवायिकारणनिष्ठपूर्ववृत्तीत्यर्थः । यद्यपि पृथक्त्वद्वयजन्यद्विपृथक्त्ववृत्तित्वेऽपि जनकीभूतैकपृथक्त्वं सिध्यत्येव, तथापि पृथक्त्वजन्यमप्येकपृथक्त्वं सिध्यतु इत्यभिप्रायेणेदृशसाध्यनिर्देशः । न च कपालपृथक्त्वघटपृथक्त्वाभ्यां जनितद्विपृथक्त्ववृत्तित्वेनार्थान्तरम्, कारणगुणपूर्वकस्याव्यासज्यवृत्तित्वेनेति विशेषणात् । न वा व्यासज्यवृत्तित्वमेव साध्यतामिति वाच्यम्, उद्देश्यसिध्यर्थं विशेषणस्योपात्तत्वात् । अत एवापेक्षाबुद्धिपूर्वकवृत्तित्वेनादृष्टपूर्वकवृत्तित्वेन चार्थान्तरम् । मनस्त्वादौ व्यभिचार-

१ घटवदिति क. २ इत आरभ्य जातित्वादित्यन्तो भागो नास्ति क पुस्तके. ३ द्विपृथक्त्वत्रिपृथक्त्वेति नास्ति ग, घ पुस्तकयोः. ४ भङ्गायेति च. ५, ६ प्रक्षेपेणेति क. ७ मतिरिक्तमपीति छ. ८ पृथक्त्वावृत्तीति छ. ९ जन्यमपीति छ. १० वृत्तित्वेनेति नास्ति छ. ११ साध्यमिति च.

वारणाय पृथक्त्वेति। घटपटनिष्ठद्विपृथक्त्वाकाशान्यतरत्वे व्यभिचारवारणाय जातित्वादिति। पृथक्त्वसमवेतधर्मत्वादित्यर्थः। न च द्विपृथक्त्वे व्यभिचारः, गुणत्वव्याप्याव्याप्यपृथक्त्ववृत्तिजातेरुक्तत्वात्। सत्तायां तादृशरूपादिवृत्तित्वेन साध्यसिद्धिः। द्विपृथक्त्वत्रिपृथक्त्वेति विशेषणे द्विपृथक्त्वत्रिपृथक्त्वयोर्व्यभिचारवारणायैतदुभयवृत्तिपरे। द्विपृथक्त्वत्रिपृथक्त्वान्यतरत्वे व्यभिचारवारणाय जातित्वमुक्तम्।

[अ. टी.] रूपादिसजातीये व्यभिचारवारणार्थं दिग्गतेत्युक्तम्। तथापि दिक्कालयोरेकैकवृत्तिपरिमाणसजातीयपरिमाणेऽतिव्याप्तिरत उक्तम् दिक्कालगतेति। उभयगतत्वमेकव्यक्तेर्विवक्षितम्, तर्हि दिक्कालगतद्वित्वसंख्यया सजातीयसंख्यायामतिव्याप्तिरत उक्तम् संख्यातिरिक्तेति। अत्यन्तपदेन सत्तागुणत्वाभ्यां सजातीयद्रव्यगुणकर्मव्यवच्छेदः। कालो गुणवानित्युक्ते परिमाणवत्त्वेन सिद्धसाधनता, अत उक्तं दिग्गतेति। द्वित्वसंख्या तथा भवतीति तद्वत्त्वेनोक्तदोषव्युदासार्थं संख्यातिरिक्तपदम्। अयावद्द्रव्यभाविद्विपृथक्त्वसिद्धिरित्यर्थः। अस्याप्यपेक्षाबुद्धिजन्यत्वं द्वित्ववदभिप्रेतं, तत्साधयति–पृथक्त्वसामान्यमिति। ईश्वरबुद्धिजवृत्तित्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थम् अस्मदादिपदम्। घटादिगतद्विपृथक्त्वस्यास्मदादिबुद्धिजत्वमपि द्वित्ववदनेन सिद्धम्। इदानीं यावद्द्रव्यभाविपृथक्त्वं साधयति–तत्सामान्यमिति। अपेक्षाबुद्धिलक्षणगुणपूर्वद्विपृथक्त्वादिवृत्तित्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं कारणपदम्। कारणञ्च समवायि विवक्षितम्। नित्यगतैकपृथक्त्वस्य कारणगुणपूर्वकत्वाभावेऽपि न बाधः, घटादिगतैकपृथक्त्वस्यैव विवक्षितत्वात्।

[बा. टी.] संख्येति। कालगतं पृथक्त्वमित्युक्ते कालघटसंयोगेऽतिव्याप्तिस्तदर्थं दिगिति। दिग्वृत्तित्वे सति कालवृत्तीत्यर्थः। द्वित्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय संख्यातिरिक्तेति। घटादिपृथक्त्वेऽव्याप्तिनिरासाय सजातीयेति। घटेऽतिव्याप्तिपरिहाराय अत्यन्तेति। गुणत्वावान्तरजात्यर्थः। काल इति। द्वित्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय संख्यातिरिक्तेति। दृष्टान्ते संयोगेन सिद्धिः। पक्षे चाविभुत्वेन तस्यानुपपत्तौ द्विपृथक्त्वसिद्धिः। ईशबुद्धिजन्यवृत्तित्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय अस्मदादीति। रूपत्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय पृथक्त्वेति। दृष्टान्ते द्वित्वादिवृत्तित्वेन सिद्धिः। तत्सामान्यमिति। अपेक्षाबुद्धिगुणपूर्वद्विपृथक्त्ववृत्तित्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय कारणेति। कारणञ्च समवायिकारणम्, तस्य गुण आरम्भकत्वेन यस्य तत्तथेति।

*

(संयोगलक्षणं, तत्र प्रमाणम्, तद्विभागश्च)

गुणत्वावान्तरजात्या द्रव्यासमवायिकारणसजातीयः संयोगः। तत्र प्रमाणम्–संयोगपदं सद्वाच्यम्, वाचकत्वात्, स्वलक्षणपदवदिति

---

१ निरासायेति घ. २ द्विपृथक्त्वत्रिपृथक्त्वेति। पृथक्त्वान्यतरत्वे व्यभिचारवारणाय जातित्वमुक्तम्। द्विपृथक्त्वे व्यभिचारवारणाय त्रिपृथक्त्वेति। त्रिपृथक्त्वे व्यभिचारवारणाय द्विपृथक्त्वेति इति घ. ३ दिक्कालेति ज, ट. ४ सत्त्वेति ट. ५ कर्मविशेषेति ज, ट. ६ ईश्वरेत्यारभ्य अपेक्षेत्यन्तो भागो नास्ति ट पुस्तके.

परिशेषात् [1]संयोगसिद्धिः। स त्रिविधः–अन्यतरकर्मजोभयकर्मजसंयोगजभेदात्। तत्रोभयं प्रसिद्धम्। तृतीये प्रमाणम्–संयोगत्वं संयोगासमवायिकारणवृत्ति, संयोगवृत्तिजातित्वात्, सत्तावदिति। विप्रतिपन्ना आत्मादयः, आकाशेन न संयुज्यन्ते, सर्वगतत्वात्, आकाशवदिति अजसंयोगासिद्धिः। अयावद्द्रव्यभावित्वं तस्य प्रसिद्धम्।

[व. टी.] गुणत्वावान्तरेति[2]। संयोगरूपान्यतरत्वादिना संयोगसजातीयरूपादावतिव्याप्तिनिरासाय जातित्वमुक्तम्। रूपासमवायिकारणे[3]रूपसजातीयेऽतिव्याप्तिवारणाय द्रव्येति। तन्निमित्तकारणासजातीये ज्ञानादावतिव्याप्तिवारणाय असमवायीति। संयोगपदमिति। घटादिपदेऽर्थान्तरवारणाय संयोगेति। संयोगरूपेऽर्थे बाधवारणाय पदमिति। संयोगे त्वस्याखण्डत्वात्पदत्वम्। यद्वा तदन्तर्गता प्रकृतिः पक्षः। सद्वस्तु वाच्यं यस्येति साध्यार्थः। विभागाभावादिवाचकत्वेनार्थान्तरवारणाय[4] सदिति। यद्वा सत्ताजातिरहित (?) सिध्यर्थान्तरवारणाय सदिति। न चाभावपदे व्यभिचारः, उभयवादिसिद्धासद्वाचकभिन्नवाचकत्वस्य हेतुत्वात्। यद्वा वाचकत्वमात्रं साध्यम्, सत्पदन्तु पक्षधर्मताबललभ्यार्थकथनाय। स्वलक्षणपदेन घटादिपदमुच्यते। परिशेषादिति। अन्यद्वाच्यं न सम्भवति, यद्वाच्यं संयोग इत्यर्थः। अन्ये तु स्वस्य संयोग[5]पदस्य यल्लक्षणं यत्पदं इदं संयोगपदमिति वाचकशब्दः तद्वदित्यर्थं इत्याहुः। संयोगत्वमिति। सकारणवृत्तित्वेऽर्थान्तरम्, असमवायिकारणवृत्तित्वेऽपि तथेत्यत आह–संयोगेति। संयोगकारणकवृत्तित्वसाधने दिक्संयोगादृष्टवदात्मसंयोगजन्यसंयोगवृत्तित्वेनार्थान्तरमतः असमवायीति। स्नेहत्वे व्यभिचारभङ्गाय संयोगेति। अन्यतरकर्मजन्यतावच्छेदकजातौ व्यभिचारवारणाय जातिपदं गुणत्वव्याप्याव्याप्यजातिपरम्। घटादिवृत्तित्वेन सत्तायां साध्यसिद्धिः। संयोगसमवेतत्वादिति क्वचित्पाठस्तु समीचीन एव, अन्यथा जातिपदार्थान्तर्गतानेकवृत्तित्वादिभागस्य वैयर्थ्यापत्तेः। नन्वजसंयोगस्य सत्त्वात् कथं संयोगत्रैविध्यमत आह–विप्रतिपन्ना इति। आकाशनिरूपितसंयोगवन्तो न भवन्तीति साध्यार्थः। घटादिसंयोगवत्वेन बाधवारणाय आकाशेति। आकाशनिरूपितसुखादिमत्त्वेन बाधवारणाय संयोगेति। (न संयुज्यन्त इति ?) आकाशजनितज्ञानजन्यं सुखम्, आकाशजनितं द्वित्वमात्मनीति प्रतीतावाकाशस्य निरूपकत्वात्। वस्तुतस्तु नित्यसंयोगसिद्धौ तुल्यन्यायेन विभागस्यापि तादृशस्य सिद्धिप्रसक्त्या एकदा विरुद्धद्वयसमावेशापत्तिरेव दोषः।

---

१ पदमिदं नास्ति क, ग, घ पुस्तकेषु. २ एतदनन्तरम्–सत्तायां गुणत्वेन च सजातीयरूपादावतिव्याप्तिवारणाय गुणत्वावान्तरेति इति पाठश्च पुस्तके. ३ कारणेनेति छ. ४ विभागो भावादिरपीति छ. ५ संयोगस्येति घ. ६ संख्यानेति छ. ७ वृत्तित्वेनेति छ. ८ कारणेति छ. ९ वारणायेति घ. १० वृत्तित्वेन नेति छ. ११ संयोगस्य वादिति घ. १२ संयोगवत्त्वे बाधेति छ. १३ इत आरभ्य विभागनिरूपणसमाप्तिपर्यन्तं छ पुस्तके पत्रयो व्यत्यस्ताः त्रुटिताश्च वर्तन्ते। घ पुस्तके सत्यप्यशुद्धिबाहुल्ये कथञ्चित्पङ्क्तयस्सन्निवेशिताः.

[अ. टी.] **कारणसजातीयस्संयोग** इत्युक्तौ[1] समवायिनिमित्तकारणसजातीये द्रव्यादौ व्यभिचारस्स्यादत उक्तम् **असमवायीति** । तर्हि रूपाद्यसमवायिकारणसजातीयरूपादौ व्यभिचारस्स्यादतो द्रव्यपदम् । तथापि सत्तादिना द्रव्यासमवायिकारणसजातीयद्रव्यादावेवातिव्याप्तिस्ततो गुणत्वावान्तरजात्येत्युक्तम् । सद्वस्तु वाच्यं यस्य तत् **सद्वाच्यम्** । स्वशब्देन संयोगपदं तल्लक्षणमिदं संयोगपदमिति वाचकश्शब्दो वाच्यान्तरासम्भवात्परिशेषात्संयोग एव वाच्य इत्यर्थः । पक्षिणः स्थाणुसंयोगोऽन्यतरकर्मजः, मल्लमेषादेः परस्परसंयोग उभयकर्मजः प्रत्यक्षसिद्धः । संयोगत्वं कर्मासमवायिकारणकसंयोगवृत्ति सिद्धमतो उक्तम् **संयोगेति** । समवेतत्वं रूपादौ व्यभिचरतीति **संयोगसमवेतत्वादित्युक्तम्** । संयोगजातित्वादिति पाठेऽपि तत्र च आत्मत्वादौ च जातित्वं व्यभिचरतीति **संयोगपदम्** । जलाणुरूपादिवृत्तिसत्तायाः संयोगासमवायिकारणकद्रव्यवृत्तित्वेन दृष्टान्तसिद्धिः । अजसंयोगोऽपि कैश्चिदिष्यते, ततः कथं त्रिविध एव संयोग इत्यत आह—**विमतिपन्ना इति** । आत्मादयो घटादिभिः संयुज्यन्त इति बाधव्युदासार्थं **आकाशेनेत्युक्तम्** । संयोगश्चायावद्द्रव्यभावीष्ट इति तत्र प्रमाणमाह—**अयावद्द्रव्यभावीति** ।

[बा. टी.] **गुणत्वेति** । कर्मण्यतिव्याप्तिपरिहाराय **द्रव्येति** । घटपटसंयोगेऽव्याप्तिनिरासाय **सजातीयेति** । घटेऽतिव्याप्तिपरिहाराय **अवान्तरेति** । रूपेऽतिव्याप्तिपरिहाराय **गुणत्वेति** । सत् विद्यमानं वाच्यं यस्येति विग्रहः । स्वलक्षणपदवत् स्वरूपपदवदित्यर्थः । पर्यवसितवाच्ये रूपादीनामसम्भवादिदमनेन संयुक्तमिति व्यवहारदर्शनात् संयोग एवास्य वाच्यमित्याह—**इतीति** । **संयोगत्वमिति** कर्मासमवायिकारणसंयोगवृत्तित्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय **संयोगेति** । रूपत्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय **संयोगेति** । नन्वनुपपन्नो विभागः, चतुर्थस्य नित्यसंयोगस्य सम्भवादत आह—**विमतिपन्ना इति** । बाधवारणाय **आकाशेति** । न चाकाशे आकाशनिरूप्यभेदराहित्यमुपाधिः, व्यतिरेके क्रियावत्वस्योपाधित्वादिति ।

■

(विभागलक्षणं, तत्र प्रमाणम्, तद्विभागश्च)

संयोगविरोधी गुणो विभागः । तत्र प्रमाणम्—आकाशः संयोगातिरिक्तकर्मजगुणाधारः, द्रव्यत्वात्, शरीरवदिति । विप्रतिपन्नं सर्वं द्रव्यं विभागवत्, द्रव्यत्वात्, आकाशवत् । स द्विविधः—कर्मजविभागजभेदात् । आद्यो द्वेधा—अन्यतरकर्मजोभयकर्मजभेदात् । तत्र प्रमाणम्—विभागत्वम् एकानेककर्मासमवायिकारणवृत्ति विभागजातित्वात् सत्तावदिति कर्मजविभागसिद्धिः । विभागत्वम् अकर्मजवृत्ति, विभागवृत्तिजातित्वात्

---

१ उक्ते इति अ, ट. २ व्यभिचारस्तत्र इति अ, ट. ३ सत्वे इति ४ संयोगजन्यत्वेति स. ५ तत्र इति अ, ट. ६ संयोगपदमिति स. ७ घटादिभिरिति ट. ८ व्युदासार्थमिति अ, ट. ९ भावीति नास्ति अ, ट पुस्तकयोः. १० आकाशादीनि क, ख, घ. ११ कर्मत्वात्प्र सत्तावदित्यन्तं नास्ति क, ध पुस्तकयोः.

सत्तावदिति । विभागजविभागसिद्धिस्तु परिशेषात् । विभागत्वं विभागासमवायिकारणवृत्ति, विभागवृत्तिजातित्वात्, सत्तावदिति मानम् ।

[व. टी.] **संयोगेति** । ध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय गुण इति । रूपादावतिव्याप्तिभङ्गाय विरोध्यन्तम् । विभागविरोधिनि संयोगेऽतिव्याप्तिवारणाय संयोगेति । अदृष्टादावतिव्याप्तिवारणायासाधारणविरोधित्वमुक्तम् । ननु यस्मिन् काले विभागस्तस्मिन् काले संयोगः, एवं दैशिकमपि सामानाधिकरण्यं विनश्यदवस्थसंयोगेन विभागस्यास्तीति चेत्-न; निवर्त्यनिवर्तकभावलक्षणविरोधस्योक्तत्वात् । न च गुणपदवैयर्थ्यम्, संयोगध्वंसस्य संयोगनिवृत्तिरूपतया संयोगनिवर्तकत्वाभावादेवातिप्रसङ्गाभावादिति वाच्यम् । गुणपदस्यासाधारणगुणपरतयादृष्टादावतिव्याप्तिवारकत्वात् । यद्वा विभागत्वजातौ लक्षणं बोध्यम् । **आकाश इति** । संयोगेनार्थान्तरवारणाय संयोगातिरिक्तेति । शब्दादिनार्थान्तरवारणाय **कर्मजेति** । अदृष्टद्वारा तीर्थगमनादिजनितशब्दत्वेनार्थान्तरवारणायादृष्टाद्वारकत्वं विशेषणं बोध्यम् । गुणत्वेन विभागसिध्यर्थं गुणपदम् । शरीरे कर्मजगुणो वेगः, कालादीनां पक्षसमत्वात् । **विप्रतिपन्नमिति** । आकाशातिरिक्तमित्यर्थः । **विभागत्वमिति** । विभागजविभागवृत्तित्वेनार्थान्तरवारणाय **कर्मेति** । उद्देश्यसिध्यर्थम् **एकानेकेति** । यदप्युभयकर्मजन्यं तदप्येककर्मजन्यमित्यर्थान्तरमिति चेत्-न; एकमात्रेत्युक्ते यदप्येकेन कर्मणा जन्यं तदपि मूर्तकर्मणा जन्यत एवेति बाध इति तद्वारणाय उद्देश्यसिद्धये वा **समवायीति** । तादृशसंयोगवृत्तित्वेन दृष्टान्तसिद्धिः । विभागजन्यतावच्छेदकजातौ व्यभिचारवारणाय गुणत्वव्याप्यजात्यव्याप्यत्वं विशेषणं बोध्यम् । एवमुत्तरत्रापि क्रियाजन्यविभागवृत्तिजातौ व्यभिचारवारणाय गुणत्वव्याप्यजात्यव्याप्यत्वं विशेषणं बोध्यम् । विभागत्वमित्यपि क्रियासमवायिकारणकभिन्नवृत्तित्वं साध्यम् । तर्ह्यन्यदेवासमवायिकारणमित्यत आह-**विभागजविभागसिद्धिस्त्वति** । **परिशेषात्** कर्माजन्यविभागस्य विभागातिरिक्तासमवायिकारणाजन्यत्वादित्यर्थः । अन्यथा कथं वंशदलयोः परस्परविभागे तयोराकाशेन विभागस्स्यात् । क्रियाया वंशदलद्वयविभागजननेनैवोपक्षीणत्वात् । कर्मणः सजातीयकार्यजनने विरम्यव्यापाराभावाच्च विशेषतोऽनुमानमाह—**विभागत्वमिति** । कर्मजन्यतावच्छेदकभिन्नविभागवृत्तिजातित्वादित्यर्थः । विभागजशब्दवृत्तित्वेन दृष्टान्तसिद्धिः । असमवायिपदमुद्देश्यसिद्धये । केचित्तु धनुर्गुणविभागजन्यबाणकर्मणि सत्तास[12]त्वात् दृष्टान्तसिद्धिरित्याहुः, तन्न; कर्मणो विभागासमवायिकारणकत्वस्य राद्धान्तविरुद्धत्वात्, अयौक्तिकत्वाच्चेति दिक् । किन्तु नोदना तत्रासमवायिकारणमिति पर्यालोचनीयम् । अपरविशेषणप्रयोजनं स्फुटम् ।

१ गु इति नास्ति क, ग, घ, ङ पुस्तकेषु २ यानुमानमिति क, प्रमाणमिति ङ. ३ असाधारणायासाधारणेति च. ४ निवर्त्येति नास्ति घ पुस्तके. ५ अदृष्टाधिष्ठानादाविति च. ६ संयोगेत्यारभ्य पङ्क्तिद्वयं नास्ति छ पुस्तके. ७ समतेति च. ८ पूर्वकर्मणेति घ. ९ विभागमात्रेति च. १०, ११ पदमिदं नास्ति च पुस्तके. १२ सत्त्वादिति नास्ति च पुस्तके.

[अ. टी.] रूपादिगुणव्युदासार्थं **संयोगविरोधीत्युक्तम्** । संयोगप्रध्वंसादिव्युदासाय **गुणपदम्** । कर्मजपदं संयोगजसंयोगाधारत्वेन सिद्धसाधनतानिरासार्थम् । शरीरस्य संयोगातिरिक्तः कर्मजो गुणो वेगः । कर्म असमवायिकारणं यस्येति विग्रहः । सिद्धसाधनताव्यवच्छेदार्थम्[1] एकानेकपदम् । रूपत्वादौ व्यभिचारवारणाय **विभागजातित्वादित्युक्तम्** । कथं तर्हि विभागजविभागसिद्धिरित्यत आह—**विभागजेति** । वंशदलयोर्मिथो विभागे सति[3] नभसापि[4] तयोर्विभागो जायते, स न वंशदलक्रियाजन्यः, तस्या दलविभागजननेनैवोपक्षीणत्वात्, पारिशेषाद्विभागजन्य[5] इत्यर्थः । साक्षात्प्रमाणमाह—**विभागत्वमिति** । धनुर्गुणविभागजन्यबाणकर्मणि सत्तावर्तिदृष्टान्तलाभः ।

[वा. टी.] **संयोगेति** । रूपेऽतिव्याप्तिपरिहाराय **विरोधीति** । सुखेऽतिव्याप्तिपरिहाराय **संयोगेति** । संयोगाभावेऽतिव्याप्तिपरिहाराय **गुण इति** । यत्तु संयोगध्वंस एव विभाग इति मतम् तन्न; आश्रयध्वंसात्संयोगध्वंसे विभागबुद्ध्यभावाद्वर्तमानयोस्संयोगनाशस्य विभागत्वे सावधित्वेन व्यवहारबाधप्रसङ्गात् । अतोऽतिरिक्त एव विभाग इत्याशयवांस्तत्र प्रमाणमाह—**आकाश इति** । द्रव्यत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय **गुण इति** । संख्यया सिद्धसाधनतापरिहाराय **कर्मजेति** । संयोगेन सिद्धसाधनतापरिहाराय **संयोगातिरिक्तेति** । संयोगातिरिक्तकर्मजक्रियाधारत्वसाधने बाधः, तन्निरासाय **गुणाधार इति** । दृष्टान्ते वेगेन सिद्धिः । **विभागत्वमिति** । विभागासमवायिकारणकविभागवृत्तित्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय **एकेति** । एकगतमनेकगतं कर्म असमवायिकारणं यस्येति । यद्वा एककर्मासमवायिकारणवृत्ति । अनेन कर्मासमवायिकारणवृत्तीति साध्यभेदेन प्रमाणद्वयं द्रष्टव्यम् । दृष्टान्ते च संयोगादिवृत्तित्वेन सिद्धिः । **विभागत्वमिति** । कर्मजवृत्तित्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय प्रतिज्ञायाम् अकारः । संयोगत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय **विभागेति** । रूपादिवृत्तित्वेन दृष्टान्तसिद्धिः । साक्षात्प्रमाणे च विभागासमवायिकारणशब्दवृत्तित्वेन दृष्टान्तसिद्धिः ।

*

(परत्वापरत्वयोर्लक्षणं प्रमाणञ्च)

परव्यवहारे यद्विशेषणतया निमित्तं तत्परत्वम् । अपरव्यवहारे यद्विशेषणतया निमित्तं तदपरत्वम् । तत्र प्रमाणम्—घटोऽस्मदादिबुद्धिजैकद्रव्यजातीयवान्, अनेकविशेषगुणसमवायिकारणत्वात्, आत्मवत् । विप्रतिपन्नं परत्वादिसंयोगासमवायिकारणकम्, अस्मदादिबुद्धिजैकद्रव्यत्वात्, सुखादिवदिति पारिशेषात्[7] कालपिण्डसंयोगासमवायिकारणत्वं सिद्धमनयोः ।

---

१ व्यवच्छेदार्थमिति ज, ट. २ संयोगगुणेति ट. ३ सतीति नास्ति ज, ट पुस्तकयोः. ४ नभसोऽपीति ह. ५ पारिशेष्यादिति ह. ६ गुणेति ज, ट. ७ पारिशेष्यात्सिद्धमात्मनोर्गुणः पाठः.

[व. टी.] परेति । ईश्वरज्ञानादावतिव्याप्तिभङ्गाय[1] विशेषणतयेति । व्यवहार्यसमवायितयेत्यर्थः । द्व्यादिव्यवहारकारणे द्वित्वादावतिव्याप्तिवारणाय परेति । परं प्रति परत्वं न कारणम् इत्यसम्भववारणाय व्यवहार इति । व्यवहारोऽत्र ज्ञानम् । शब्दादिप्रयोगरूपस्य तस्य विषयाजन्यत्वात् । यद्वा निमित्तं प्रयोजकम् । अत एव नातीन्द्रियपरत्वादावव्याप्तिः । यद्वा विशेषणतयाऽसाधारणतयेत्यर्थः । घट इति । रूपादिनार्थान्तरवारणाय बुद्धिजेति । ईश्वरबुद्धिजेन तेनैवार्थान्तरवारणाय अस्मदादीति । द्वित्वादिनार्थान्तरवारणाय एकद्रव्येति । ईश्वरबुद्धिजनितपरत्वादिकसाध्ये विपये वेशयितुं(?) जातीयेति । काले व्यभिचारवारणाय विशेषेति । आकाशे तद्वारणाय अनेकेति । कालादौ व्यभिचारवारणाय समवायीति । आत्मन्यस्मदादिबुद्धिजन्यसुखादिमत्त्वेन साध्यसिद्धिः । दिक्कालजन्यत्वेऽनुमानमाह–विप्रतिपन्नमिति । अदृष्टवदात्मसंयोगेनार्थान्तरवारणाय असमवायीति । यथादृष्टवदात्मसंयोगो नासमवायिकारणं तथा प्रपञ्चितमन्यत्र । उद्देश्यसिद्धये संयोगेति । विप्रतिपन्नत्वं जातिविशेषवैशिष्ट्यम्, न तु दिक्कृतभिन्नत्वम्, प्रतियोग्यप्रसिद्धेः । परिमाणे व्यभिचारवारणाय बुद्धिजेति । तथापि तत्रैव व्यभिचारवारणाय अस्मदादीति । यद्यप्यदृष्टद्वारास्मदादिबुद्धिजत्वमस्ति, तथापि अदृष्टाद्वारकेति विशेषणीयम् । द्वित्वादौ व्यभिचारवारणाय एकद्रव्येति । एकमात्रनिष्ठत्वादित्यर्थः । दिक्कालयोस्तादृशासमवायिकारणकत्वेन करणत्वं सिद्धमित्यभिप्रायेणाह–परिशेषादिति । यथाकाशादिसंयोगो नासमवायिकारणं परत्वापरत्वयोः, तथा विशदमन्यत्र ।

[अ. टी.] परापरव्यवहारकारणेश्वरप्रयत्नादावतिव्याप्तिनिरासार्थं विशेषणतयेत्युक्तम् । विशेषणतया व्यवहार्यनिमित्ततयेत्यर्थः । अस्मदादिबुद्धिजन्यं यदेकस्मिन्नेव वर्तते तज्जातीयवान् घट इति प्रतिज्ञा । घटैकद्रव्यवृत्तिरूपादिजातीयत्वेन सिद्धसाधनता स्यादत उक्तम् बुद्धिजेति । तथापीश्वरबुद्धिजरूपादिमत्त्वेनोक्तदोषः स्यादतः अस्मदादिग्रहणम् । कालादौ व्यभिचारवारणाय विशेषगुणपदम् । आकाशे तन्निरासाय अनेकपदम् । आत्मन्यस्मदादिबुद्धिजं सुखादि, तथापि तयोर्दिक्कालजत्वे किं मानमित्याह–विप्रतिपन्नमिति । परत्वादेरसमवायिकारणान्तरानङ्गीकाराद्बाधव्युदासार्थं संयोगपदम् । एकद्रव्ये रूपादौ व्यभिचारवारणाय अस्मदादिबुद्धिजग्रहणम् । सुखादिकमात्ममनस्संयोगासमवायिकारणकम् । तत्र द्रव्यान्तरसंयोगस्य परत्वादिना सहान्वयव्यतिरेकयोरभावेन दिक्कालसंयोगस्य च तद्भावात्परिशेषात् स एव कारणमित्याह–पारिशेष्यादिति । पिण्डः शरीरं, दिवसमासादिना परत्वापरत्वे कालसंयोग[16]पूर्वके । यद्यपि दिवसादिशब्दवाच्याः परिस्पन्दा आदि-

---

१ वारणायेति घ. २ इत आरभ्य पङ्क्तिद्वयं नास्ति छ पुस्तके. ३ भिन्नत्वे इति घ. ४ तत्तु इति छ. ५ भिन्नभिन्नत्वमिति छ. ६ भादीति नास्ति च. ७ गुणतयेति ग. ८ सिद्धयेति ज, ट. ९ द्रव्ये वर्तते इति ज, ट. १० जातीयवत्त्वेनेति ज, ट. ११ गुण इति नास्ति ट. १२ जन्यत्व इति ज. १३ रूपत्वादाविति ट. १४ वारणार्थमिति ज, ट. १५ अभावादिति ज, ट. १६ अत्र छ पुस्तके पङ्क्त्यो व्यत्ययः.

त्वसमवेताः, तथापि आदित्यसंयुक्तकालस्य पिण्डसंयोगस्तदुपनायकत्वात् । पिण्डे परत्वादिहेतुस्तथा । यद्यपि परिमाणदण्डादिसंयोगा देशविशेषसमवेताः, तथापि दिक्संयोगो देशपिण्डाभ्यामविशिष्ट इति पिण्डदेशसंयोगोपनायकत्वेन परत्वादिहेतुः । तदुक्तम्–'क्रियोपनायकः कालः संयोगोपनायकत्वात्' इति ।

[वा. टी.] परेति । अयं पर इति व्यवहारे यद्व्यवहार्यव्यावर्तकत्वेन निमित्तं तत्परत्वमिति । व्यवहार्यनिवृत्तये विशेषणतयेति । एवमपरत्वस्यापि । घट इति । संयोगसजातीयत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय एकद्रव्येति । एकं द्रव्यमाश्रयत्वेन यस्येति रूपसजातीयत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय बुद्धिजेति । ईशबुद्धिजेन सिद्धसाधनतापरिहाराय अस्मदादीति । जातीयपदन्तु नार्थवत् । सामान्येऽतिव्याप्तिपरिहाराय समवायीति । दिश्यतिव्याप्तिपरिहाराय विशेषगुणेति । आकाशनिवृत्तये अनेकेति । सुखादिना दृष्टान्तलाभः । सिद्धसाधनतापरिहाराय संयोगेति । रूपादिनिवृत्तये बुद्धिजेति । ईशबुद्धिजे तस्मिन् अतिव्याप्तिपरिहाराय अस्मदादीति ।

(बुद्धेर्लक्षणं तद्विभागश्च)

अर्थावग्रहो बुद्धिः । सा द्वेधा–नित्यानित्यभेदात् । पूर्वा भगवतो महेश्वरस्य । सा परीक्षिता आत्मप्रकरणे । उत्तरा अनीशानां मानसप्रत्यक्षसिद्धा ।

(अविद्यात्मिका बुद्धिः)

सा द्वेधा–अविद्याविद्याभेदात् । बाधिता अविद्या । सा द्वेधा–निश्चयानिश्चयभेदात् । तत्र पूर्वो विपर्ययः । तत्र प्रमाणम्–विवादास्पदं रजतधीविषयः, रजतेच्छुप्रवृत्तिविषयत्वात्, हट्टगतरजतवत् । उत्तरः संशयः । इदम् आहोस्विन्नेदम् इति व्यवहारो व्यवहार्यज्ञानपूर्वकः, व्यवहारत्वात्, सम्मतिपक्षवदिति तत्र प्रमाणम् । अनध्यवसायस्येहान्तर्भावः, स्वप्नस्य विपर्यये ।

[व. टी.] अर्थेति । यद्यप्यर्थावग्रहो बुद्धिः, तदा पर्यायत्वान्न लक्षणवाक्यता, तथाप्यन्याश्रयणार्थनिष्ठविषयताप्रतियोगित्वं बुद्धित्वम्, अन्यानधीनविषयत्वमिति यावत् । द्रव्यादयस्तु परतन्त्रविषयत्ववन्त इति नातिव्याप्तिः । यद्वा अर्थावग्रह इत्यनेन ज्ञानपदवाच्यत्वं लक्ष्यतावच्छेदकत्वमुक्तम् । बुद्धिरित्यनेन बुद्धित्वं लक्षणम्, अर्थपदन्तु ज्ञानातिरिक्तार्थबोधनपरम् । बाधितेति । बाधितार्थेत्यर्थः । अनिश्चयः संशयः । पूर्वोऽबाधितार्थो

१ पदमिदं नास्ति ट पुस्तके. २ इत आरभ्य तदुक्तमित्यन्तः पूर्वो भागो नास्ति ट पुस्तके. ३ पदमिदं नास्ति घ पुस्तके. ४ विद्याविद्येति क, ग, घ; विद्येत्यारभ्य सा द्वेधा इत्यन्तं नास्ति ट पुस्तके. ५ बाधिता धीरिति क. ६ विवादाध्यासितमिति ग, घ; विवादपदं रजतधीपदमिति क, ख. ७ रजतार्थिप्रवृत्तिं ख, ग, घ. ८ सत्यरजतेति ख, मु. ९ नेदमिति ग, घ. १० व्यवहारार्थमिति क. ११ इत्याद्युपरिष्टात् घ. १२ इत्यर्थं इत्यधिकं घ पुस्तके.

निश्चयः। विवादपदं शुक्त्यादिप्रवृत्तिजनकरजतत्वप्रकारकज्ञानविषयत्वं साध्यम्। तेन सर्वं रजतमित्याहार्यज्ञानेन नार्थान्तरम्। सर्वं रजतमिति स्वारसिको भ्रमः सम्भवत्येव, न; तत्सम्भवेऽपि तज्ज्ञानं न प्रवर्तकं, रजतत्वेन यस्य कस्य ज्ञानस्य प्राप्तत्वात्। एवञ्च या व्यक्तिः न प्रवर्तकरजतबुद्धिविषया, तत्र व्यभिचारवारणाय रजतेच्छुपदम्। न च रजतेच्छाविषयत्वमेव हेतुरस्तु, यथोक्तविशेष्यविशेषणभावे वैयर्थ्याभावात्। न च शुक्तिरजतेति समूहालम्बनमादायैवार्थान्तरं प्रवृत्तिविषयांशे रजतत्वविशिष्टावगाहिज्ञानविषयत्वस्य साध्यत्वात्। इदमाहोस्विदेवमिति व्यवहारः पक्षः, व्यवहार्यज्ञानमागच्छत्पक्षधर्मताबलादेकधर्मिगततया विरुद्धनानाधर्मावगाहि सिध्यति। तदेव संशयः। ईश्वरज्ञानपूर्वकत्वेनार्थान्तरवारणाय व्यवहार्येति। न हीश्वरज्ञानं विरुद्धकोटिरूपव्यवहार्यविषयकं, तस्य भ्रान्तत्वापत्तेः। व्यवहार्यपूर्वकत्वमात्रे साध्ये बाधः, व्यवहार्यस्य व्यवहाराजनकत्वात्, उद्देश्यासिद्धिश्चेत्यत आह—ज्ञानेति। घटादिव्यवहारे सिद्धसाधनमतः आहोस्विदेवमिति। इहेति। उत्कटकोटिकसंशयान्तर्भाव इत्यर्थः। किंसंज्ञकोऽयं वृक्ष इत्याद्यनध्यवसायस्य बाधितसंज्ञाविषयत्वांशे भ्रमत्वमिति बोध्यम्। स्वप्नस्येति। कस्यचिद्विरुद्धोभयकोटिकस्य स्वप्नस्य संशयेऽन्तर्भाव इति केचित्। परे तु स्वप्नत्वं निश्चयत्वव्याप्यमित्याहुः। स्वप्नत्वसंशयत्वे मानसत्वव्याप्ये। एवं संशयत्वं चाक्षुषानुमित्यादावपीति केचित्।

[अ. टी.] अर्थस्य शब्दादेरवग्रहः स्फुरणं बुद्धिः। ज्ञानातिरिक्तार्थसङ्ग्रहाय अर्थपदम्। **बाधिता** अपह्नुतविषया बुद्धिरविद्या। **विवादपदं** शुक्त्यादि। घटार्थिनः प्रवृत्तिविषये रजतबुध्यनालम्बने व्यभिचारवारणाय **रजतादिपदम्**। नन्वनध्यवसायः स्वप्नश्चाविद्याभेदौ किमिति नोच्येते? तत्राह—**अनध्यवसायश्चेति**। किंसंज्ञकोऽयं वृक्ष इत्याद्यनध्यवसायस्यानिश्चयात्मकत्वेऽपि बाधाभावात् कथमविद्यात्मकत्वमिति चेदुच्यते—संज्ञाविशेषस्यानिश्चयदशायां देशादिभेदेनानेकधा स्फुरतो व्यवस्थितैकसंज्ञानिश्चयेन कोट्यन्तरस्यापहारादविद्यात्वं न दुष्यति। स्वप्नस्य जाग्रद्बोधेन बाधादविद्यात्वं स्फुटमेव। न च निद्रादुष्टमनोजन्यज्ञानं स्वप्न इति लक्षणं भेदकम्, अतीन्द्रियदोषभेदादविद्याभेदप्रसङ्गात्।

[वा. टी.] **अर्थेति**। अवग्रहणम् ग्रहः, ज्ञानमिति यावत्। अर्थशून्यवदिति निरासाय **अर्थपदम्**। **मानसेति**। जानामीति मनोजन्यापरोक्षप्रत्यये सिद्धे इत्यर्थः। **बाधिता** अपहृतविषयेत्यर्थः। यन्मतम्—इदं रजतमिति पुरोवर्तिग्रहणदेशान्तरस्थस्मरणात्मकं ज्ञानद्वयम् (न?) विशिष्टमेकं विपर्ययाख्यं ज्ञानम्, प्रमाणाभावादिति तद्दूषयति—**विवादपदमिति**। शुक्त्यादीत्यर्थः। घटेऽतिव्याप्तिपरिहाराय **रजतेच्छ्विति**। अतो यदरजते रजतबुद्धिस्सैव विपर्यय इति। इदमिति पुरोवर्ति, एवमाहोस्विदिति स्थाणुरस्यात्रेति, स्थाणोरन्यः पुरुषो वेत्यर्थः। व्यवहार्यो

१ भागे इति च. २ न चैतदिति समूहेति छ. ३ विषयत्वसाध्येति च. ४ इदमाहोस्विदिति घ. ५ संशयं तत्रैवेति छ. ६ मानसत्वे इति छ. ७ अतद्रूतेति ट. ८ विवादास्पदमिति झ. ९ घटार्थीनि ट. १० रजतादिस्नुपदमिति ज, ट. ११ यस्येति ज, ट. १२ जाग्रत्वे बाध इति ट.

स्थाणुपुरुषौ । अतो यदनेककोटिद्योतकमनिश्चयात्मकं ज्ञानं स एव संशयः । अनवगतसंज्ञकोऽनवधारणरूपोऽनुभवोऽनध्यवसाय उत्कटैककोटिकस्सन्देह ऊहः । एतयोरनवधारणत्वाविशेषादुक्तस्संशयानतिक्रमः, मिथ्यावधारणात्मकत्वात्स्वप्नस्य विपर्ययानतिक्रमः ।

(विद्यात्मिका बुद्धिः)

अबाधिता धीर्विद्या । सा द्वेधा–प्रमितिरन्यथा चेति । सम्यगनुभूतिः प्रमितिः । सा द्वेधा–प्रत्यक्षा इतरा चेति । तत्रापरोक्षा सा प्रत्यक्षा, परोक्षा सेतरा चेति । पूर्वा द्वेधा–प्रकृष्टधर्मजेतरभेदात् । पूर्वा योगिप्रत्यक्षा । तत्र प्रमाणम्–धर्मः कस्यचित्प्रत्यक्षः, प्रमेयत्वात्, वासोवदिति । यस्य स प्रत्यक्षः स योगी । उत्तरा अस्मदादीनां प्रत्यक्षा ।

(सविकल्पकबुद्धिः)

सा प्रकारान्तरेण द्वेधा–सविकल्पकनिर्विकल्पकभेदात् । विशिष्टविषयं सविकल्पकम् । तत्र प्रमाणम्–सविकल्पिका बुद्धिः प्रमा, स्मृतिव्यतिरिक्तत्वे सति अबाधितबुद्धित्वात्, निर्विकल्पकवत् इति ।

[व. टी.] अन्यथाचेति । स्मृतिरित्यर्थः । धर्म इति । बाधवारणाय कस्यचिदिति । सामान्यज्ञानप्रत्यासत्यजन्मजन्यप्रत्यक्षविषयत्वं साध्यम् । अनुमित्यादिमतासदादिनार्थान्तरवारणाय प्रत्यक्षस्त्वमुक्तम् । विषयत्वादित्येव हेतुः । आकाशादौ न व्यभिचारस्तस्य पक्षसमत्वात् । विशिष्टेति । विशिष्टविषयकमित्यर्थः । तेन विशिष्टपदार्थस्य विशेषणादिघटितत्वेन न व्यर्थता । तत्र प्रमाणमिति । अत्र यथार्थानुभवत्वं साध्यम् । स्मृतौ व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम् । भ्रमे व्यभिचारवारणाय अबाधितेति । अबाधितार्थकबुद्धित्वादित्यर्थः । न त्वबाधिता चासौ बुद्धिश्चेत्यर्थः । भ्रमस्यापि स्वरूपेणाबाधिततया व्यभिचारापत्तेः । इच्छादौ व्यभिचारवारणाय बुद्धित्वादिति । न च साध्यसमतया हेत्वसिद्धिः, संवादिप्रवृत्तिजनकत्वादिना हेतुसिद्धेः[11] । न च साध्यवैशिष्ट्यम्, प्रकृते हेतुसाध्ययोर्भिन्नरूपत्वात् ।

[अ. टी.] अन्यथा चेति । स्मृतिरित्यर्थः । कस्तर्हि योगीत्यत आह–यस्येति । गौरः कुण्डली ब्राह्मणोऽयं गच्छतीत्यादि सविकल्पकम्, कथमस्य प्रमाणत्वम् ? तत्राह–तत्प्रमाणमिति । विपर्यासादौ व्यभिचारवारणार्थमबाधितत्वादिरुक्तम् । अबाधितार्थे व्यभिचारवारणाय बुद्धिपदम् । अबाधितबुद्धित्वं स्मृतौ व्यभिचरतीति स्मृतिव्यतिरिक्तत्वे सतीत्युक्तम् ।

---

१ सेति नास्ति मुद्रितपुस्तके. २ पूर्वमिति घ. ३ प्रत्यक्षमिति क, ख, ग, घ. ४ पदमिदं नास्ति क, ख. पुस्तकयोः. ५ दासोवदिति क, सामान्यवदिति ग. ६ स प्रत्यक्षो यस्य स इति ग, घ. ७ प्रत्यक्षमित्यधिकं मु. ८ पदत्रयं नास्ति क, ख, पुस्तकयोः, प्रमेयत्वनन्तरं ज्ञानं प्रमाणमित्यधिकं ग पुस्तके, ९ प्रत्यक्षमित्यधिकं मु. १० अस्मदादीनामिति घ. ११ द्रव्यादाविति घ. १२ सिद्धिरिति घ.

[वा. टी.] इन्द्रियंजत्वमपरोक्षशब्दार्थः । धर्म इति । प्रत्यक्षत्वश्चात्रेन्द्रियजन्यज्ञानविषयत्वम् । तेन नेश्वरेण सिद्धसाधनता । निर्विकल्पकनिवृत्तये विशिष्टेति । विपर्ययनिवृत्तये अबाधितेति । स्मृतिनिवृत्तये स्मृतीति । सविकल्पकत्वादेवास्य प्राप्तं विपर्ययवदप्रामाण्यमपाकरोति—तत्प्रमाणमिति । कुत इत्यत आह—सविकल्पकेति । सविकल्पिका बुद्धिरविसंवादिनी घटादिबुद्धिः । तेन न भागासिद्धिरिति ।

(निर्विकल्पकबुद्धिः)

वस्तुस्वरूपमात्रावभासो निर्विकल्पकम् । ज्ञानानां सविकल्पकत्वाद्दृष्टान्तासिद्धिरिति चेत्—न; प्रमाणोपपत्तेः । सर्वे विकल्पा ज्ञानव्यावृत्तजातिमन्तः, जातिमत्त्वात्, पटवत् ।

[व. टी.] वस्त्वित्ति । यद्यपि मात्रपदेनावस्तु न व्यवच्छेद्यं, तस्याप्रतीतेः । न च वैशिष्ट्यं व्यावर्त्यं, तस्यापि वस्तुत्वात्, व्यक्तित्वाच्च; तथापि वैशिष्ट्यानवगाहित्वं निर्विकल्पकलक्षणम् । सर्व इति । अनुमितौ यत्किञ्चिज्ज्ञानव्यावृत्तजातिरनुमितित्वमित्यर्थान्तरवारणाय सर्वे इति । ज्ञानव्यावृत्ता जातिः सविकल्पकत्वं सेत्स्यतीति भावः । न च निर्विकल्पकसंविकल्पकरूपनरसिंहाकारज्ञाने सविकल्पकत्वस्याव्याप्यवृत्तित्वं प्रसङ्गः(?) । यद्वा घटोऽयमित्यादिज्ञानस्य वैशिष्ट्यावगाहितया सर्वांशे सविकल्पकत्वस्वीकारात् । यद्वा जातिपदं धर्ममात्रपरम् । घटादिव्यावृत्तज्ञानत्वादिजात्यर्थान्तरवारणाय ज्ञानेति । ज्ञाननिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगिधर्मवन्तः । सर्वे सविकल्पका इति समुदायार्थः । केचित्तु ज्ञानगोचरजातिमत्त्वं साध्यमित्याहुः । तत्र जातिगोचरज्ञानस्य सविकल्पस्यैव साध्यापत्तेः । धर्मवत्त्वसाध्यपक्षे धर्मवत्त्वं हेतुः, जातिमत्त्वसाध्यपक्षे जातिमत्त्वं हेतुः । सविकल्पत्वं न जातिरित्येव पक्षः । अत एव सैद्धान्तिके ध्वनिनिर्विकल्पकसिद्धौ प्रत्यक्षत्वसविकल्पकत्वयोर्न साङ्कर्यम् ।

[अ. टी.] लक्षिते निर्विकल्पके प्रमाणाभावेन सर्वज्ञानानां सविकल्पकत्वे दृष्टान्ताभाव इति शङ्कते—ज्ञानानामिति । प्रमाणाभावोऽसिद्ध इति प्रत्याह—नेति । विकल्पाः सविकल्पज्ञानानि । ज्ञानव्यावृत्ता या जातिस्तद्वन्त इति साध्यम्, तच्च ज्ञानार्थयोर्जातिगोचरम् । प्रत्यक्षं ज्ञानं निर्विकल्पकम् । उक्तञ्च भट्टपादैरपि—

मुद्गमाषतिलादौ च यत्र भेदो न गृह्यते ।
तत्रैकबुद्धिर्निर्ग्राह्या जातिरिन्द्रियगोचरा ॥ इति ।

आपातजस्य वस्तुस्वरूपमात्रप्रत्ययस्य प्राणिमात्रप्रत्यक्षत्वाच्च । यद्वा ज्ञानव्यावृत्ताः कस्मिंश्चिज्ज्ञाने वर्तमाना जातिस्तद्वन्तो विकल्पा इति साध्यम् । सत्तादिमत्त्वेन सिद्धसाधनतानिरासार्थं ज्ञानव्यावृत्तपदम् ।

---

१ वस्त्विति नास्ति ग, घ पुस्तकयोः. २ सविकल्पकेति नास्ति छ पुस्तके. ३ सविकल्पकस्येति घ. ४ सिध्यापत्तेरिति घ. ५ हेतुरिति नास्ति च. ६ श्लोकवार्तिके. ७ व्युदासार्थमिति ज, ट.

[वा. टी.] आक्षिपति—ज्ञानानामिति । तथाचाह—

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यश्शब्दानुगमादृते ।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वंशब्देन जन्यते ॥ इति ।

तन्निराकरोति—सर्वं इति । विकल्पाः सविकल्पज्ञानानि । कुतश्चिद्व्यावृत्ता या जातिस्तद्वन्तीत्यर्थः । गुणत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय ज्ञानेति । तत्र ज्ञानत्वादीनामनुवृत्तत्वात्सविकल्पकत्वमेव व्यावृत्तं वाच्यम् । तद्यतो व्यावृत्तं तन्निर्विकल्पकमित्यर्थः । पटत्वादिना दृष्टान्तलाभः । तथा चाहुः—

अस्ति ह्यालोचनं ज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पकम् ।
बालमूकादिविज्ञानसदृशं शुद्धवस्तुजम् ॥ इति ।

*

(लैङ्गिकी बुद्धिः, अन्वयव्यतिरेकनिरूपणञ्च)

उत्तरा लैङ्गिकी । लिङ्गं पुनः साध्याव्यभिचारित्वे सति पक्षधर्मतावत् । तद्द्वेधा भिद्यते—अन्वयव्यतिरेकभेदात् । यस्य साध्येन साहचर्यनियमस्तदन्वयि । तद्द्विधा—सति विपक्षे असति च । पूर्वमन्वयव्यतिरेकि । तद्यथा—नित्योऽनित्यः, कृतकत्वात्, यदेवं तदेवम्, यथा घटः, तथा चेदं तस्मात्तथा । यत्पुनरनित्यं न भवति तत्पुनः कृतकमपि न भवति, यथाकाशम्, न चेदं न तथा, तस्मान्न च न तथा । उत्तरं केवलान्वयि । यथा स्थितिस्थापकः प्रत्यक्षः, प्रमेयत्वात्, यदेवं तदेवं, यथा पृथिवी, तथा च प्रकृतं, तस्मात्तथा । असति सपक्षे यस्य साध्याभावेनाभावनियमस्तद्व्यतिरेकि । सर्वं कार्यं सर्ववित्कर्तृकम्, कार्यत्वात् न यदेवं न तदेवम्, यथा परमाणुः, न चेदं न तथा, तस्मान्न तथेति ।

[व. टी.] उत्तरा परोक्षा । लिङ्गमिति । व्याप्यत्वासिद्धेऽतिव्याप्तिवारणाय प्रकृतसाध्याव्यभिचारित्वमुक्तम् । आश्रयासिद्धे स्वरूपासिद्धे चातिव्याप्तिनिरासाय पक्षधर्मतावदित्युक्तम् । साध्येनेति । केवलव्यतिरेकिण्यतिव्याप्तिभङ्गाय साध्येनेति । व्यभिचारिण्यतिव्याप्तिभङ्गाय नियमग्रहणम् । असति सपक्ष इति । अन्वयव्यतिरेकिण्यतिव्याप्तिभङ्गाय असति सपक्ष इत्युक्तम् । विरुद्धव्यतिरेकिण्यतिव्याप्तिवारणाय नियमपदम् । सर्वमिति । आकाशादीनां पक्षत्वे बाधवारणाय कार्यमिति । अन्वये दृष्टान्ताभावं बोधयितुं सर्वकार्यस्य पक्षत्वसूचनाय सर्वमिति । किञ्चिज्ज्ञानबाधवारणायेश्वरसिद्धये च सर्वविदिति । कर्तृत्वेन तत्सिद्धये च कर्तृकेति ।

---

१ पक्षधर्म इति क, ख, घ. २ स्थ इति क, ग, घ. ३ पुनरिति नास्ति क. ४ न तथेदं तस्मात्र भवतीति क. ५ साध्याभावेऽभावेति क; साध्याभावे साधनाभाव इति घ. ६ यथा सर्वमिति. क. ७ कादाचित्कत्वादिति मु. ८ न चेदं तथा तस्मात्तथेति क. ९ वारणायेति घ. १०, ११, १२ वारणायेति घ. १३ उक्तमिति नास्ति घ. १४ ग्रहणमिति घ. १५ अन्वय इति छ. १६ किञ्चिज्ज्ञेनेति छ. १७ कर्त्रेति छ.

[अ. टी.] उत्तरा परोक्षा प्रमितिः। असिद्धव्युदासार्थं पक्षधर्मतापदम्। अनेकान्तिवारणाय साध्येत्यादि। केवलव्यतिरेकिव्युदासाय साध्येनेति पदम्। नित्यत्वसाध्येनामूर्तत्वस्य साहचर्यमात्रं विद्यते, न तु तल्लिङ्गत्वमतो नियमग्रहणम्। निनदः शब्दः। साध्याभावेऽभावनियमोऽन्वयव्यतिरेकिणोऽप्यस्ति। तेनोक्तम् असति सपक्ष इति। कर्तृमात्रपूर्वकत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासाय सर्वविद्ग्रहणम्।

[वा. टी.] लिङ्गं पुनरिति। असिद्धनिवारणाय पक्षधर्मवदिति। अनैकान्तिकनिवारणाय साध्येति। साध्याव्यभिचारित्वञ्च साध्यनिरूप्यव्याप्तिमत्वम्। साध्यव्याप्यत्वमिति यावत्। न च केवलव्यतिरेकिण्यव्याप्तिः, तत्रापि कादाचित्कत्वं सर्वविक्कर्तृकत्वव्याप्यं, तदत्यन्ताभावनियतात्यन्ताभाववत्त्वात्, यद्यदत्यन्ताभावनियतात्यन्ताभाववत् तत्तस्य व्याप्यम्। यथा वह्निमत्वात्यन्ताभावनियतात्यन्ताभाववद्धूमवत्वं वह्निमत्वव्याप्यमिति साध्यव्याप्यत्वानुमानादिति। व्यतिरेकिनिरासाय साध्येति। अनैकान्तिकनिरासाय नियमग्रहणम्। अन्वयव्यतिरेकिनिरासाय अन्वयीति।

*

(हेत्वाभासलक्षणम्, तद्विभागश्च)

लिङ्गलक्षणरहिता लिङ्गाभिमानविषया लिङ्गाभासाः। ते चासिद्धविरुद्धानैकान्तिकासाधारणबाधितविषयसत्प्रतिपक्षभेदात् षट्प्रकाराः[1]। पक्षधर्मतयाज्ञातोऽसिद्धः। यथा शब्दो नित्यः, चाक्षुषत्वात्। पक्षविपक्षयोरेव वर्तमानो विरुद्धः[2]। यथा शब्दोऽनित्यः, श्रोत्रग्राह्यत्वात्। पक्षत्रयवृत्तिरनैकान्तिकः[3]। यथा शब्दोऽनित्यः, प्रमेयत्वात्। सपक्षविपक्षव्यावृत्तः पक्षे वर्तमानोऽसाधारणः। यथा पृथिवी नित्या, गन्धवत्त्वात्। प्रमाणविरोधी बाधितविषयः कालात्ययापदिष्टः। यथा अनुष्णोऽग्निः, प्रमेयत्वात्। समबलविरुद्धहेतुद्वयसमावेशः सत्प्रतिपक्षः। यथा शब्दो नित्यः श्रोत्रग्राह्यत्वादित्युक्ते, न नित्यः, सामान्यवत्त्वे सत्यस्मदादिबाह्येन्द्रियग्राह्यत्वात् इति षोढा व्यूढः। शेषं भाष्ये।

[अ. टी.] लिङ्गलक्षणे व्यावर्त्यलिङ्गाभासज्ञानाय तल्लक्षणमाह—लिङ्गेति। सल्लिङ्गेऽतिव्याप्तिवारणाय रहिता इत्यन्तम्। प्रत्यक्षाभासादावतिव्याप्तिवारणाय विषया इत्यन्तम्। लिङ्गत्वेन ज्ञानगोचरा इत्यर्थः, न तु भ्रमगोचरा इत्यर्थः। अन्यथा रहितान्तस्य वैयर्थ्यापत्तेः। लिङ्गत्वमबाधितासत्प्रतिपक्षव्याप्तपक्षधर्मत्वम्। केचित्तु रहितान्तविषयान्तयोर्व्याख्यानव्याख्येयभावं वर्णयन्ति। पक्षधर्मतयेति। व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मतयेत्यर्थः। व्याप्यत्वासिद्धेऽव्याप्तिभङ्गार्थं व्याप्तिविशिष्टेत्युक्तम्। स्वरूपासिद्धे आश्रयासिद्धे चाव्याप्तिनिरासाय पक्षवृत्तित्वेनाज्ञातेति। केवलव्यतिरेकिण्यतिव्याप्तिनिरासाय च

१ अपरा प्रमितिरिति झ. २ पक्षधर्मत्वेनेति झ. ३ साधनाभावे इति ट. ४ तत उक्तमिति न, ट. ५ हेतुर्विरुद्ध इति मु. ६ पक्षविपक्षसपक्षत्रयेति मु. ७ सपक्षेत्यारभ्य प्रमेयत्वादित्यन्तो भागो नास्ति ग पुस्तके. ८ पदमिदं नास्ति घ पुस्तके. ९ स नेति ग, घ. १० वारणायेति च.

पक्षधर्मतयेति। एवञ्च सद्धेतुरपि व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानदशायामसिद्धः। असद्धेतुरपि च तज्ज्ञानदशायां नासिद्ध इत्यालोचनीयम्। उदाहरति—शब्द इति। इदं स्वरूपासिद्धेर्व्याप्यत्वासिद्धेश्चोदाहरणम्। काञ्चनमयोऽयमद्रिः अग्निमान्, धूमवत्त्वादित्यादि तु विशेषणाभावादिना आश्रयासिद्धेरुदाहरणम्। पक्षविपक्षयोरेवेति। पक्षादित्रिकवृत्तावतिव्याप्तिवारणाय एवेति। वस्तुतस्तु साध्यासहचरितो हेतुर्विरुद्धः। अत एव जलं गन्धवत् जलत्वादित्यादेस्सङ्ग्रहः। अन्ये तु स्वरूपासिद्धे केवलविपक्षगामिन्यतिव्याप्तिवारणाय पक्षग्रहणम्। अनैकान्तिकेऽतिव्याप्तिवारणाय एवकारः। केवलपक्षे वर्तमानेऽतिव्याप्तिवारणाय विपक्षग्रहणम्। जलं गन्धवत् जलत्वात् इत्यादौ न विरुद्धतेत्याहुः। अन्ये तु पक्षातिरिक्तेऽगृहीतसहचार एव वा विरुद्ध इत्याहुः। पक्षत्रयेति। स्वरूपासिद्धेऽतिव्याप्तिवारणाय पक्षवृत्तित्वमुक्तम्। विपक्षाव्यावृत्तसद्धेतावतिव्याप्तिवारणाय विपक्षवृत्तित्वमुक्तम्। विरुद्धेऽतिव्याप्तिं वारयितुं सपक्षवृत्तित्वमुक्तम्। सपक्षेति। विपक्षाव्यावृत्ते सद्धेतावतिव्याप्तिवारणाय सपक्षव्यावृत्तत्वम्, विपक्षगतेऽतिव्याप्तिवारणाय विपक्षव्यावृत्तत्वम्। शब्दं आकाशगुणः रूपत्वादित्यादिस्वरूपासिद्धेऽतिव्याप्तिभङ्गाय पक्ष इति। न चैवमेवकारवैयर्थ्यम्, तदर्थस्यैव व्यावृत्तान्तेनोक्तत्वात्। प्रमाणेति। सममल्पप्रमाणप्रसिद्धेऽतिव्याप्तिवारणाय प्रमाणेत्युक्तम्। अधिकप्रमाणबोधितसाध्यविपर्ययकत्वं लक्षणं बोध्यम्। प्रमाणाभासविरुद्धेऽतिव्याप्तिवारणाय प्रमाणेत्युक्तम्। समबलेति। अधिकबलहीनबलयोर्हेत्वोः परस्परं प्रतिक्षेप्यप्रतिक्षेपकभावापन्नयोरतिव्याप्तिवारणाय समबलेति। बलं व्याप्तिपक्षधर्मता। यद्यपि वास्तवं समबलत्वं प्रतिरोधेन सम्भवति, तथापि समबलत्वेन ज्ञायमानत्वं विवक्षितम्। नदीतीरे पञ्च फलानि सन्ति, नदीतीरे पञ्च फलानि न सन्तीत्यादिविरुद्धवाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय हेतुत्वमुक्तम्। हेत्वाभासतानिर्वाहकस्य सत्प्रतिपक्षत्वस्य हेतावेव स्वीकारात्। अविरुद्धहेतुद्वयेऽतिव्याप्तिवारणाय विरुद्धेति। द्रव्यत्वादिना समाने व्याप्यत्वादिना वा समाने हेतावतिव्याप्तिभङ्गाय बलेति। विरुद्धयोर्हेतुवाक्ययोरतिव्याप्तिवारणाय द्वयेत्युक्तम्। घटादौ व्यभिचारवारणाय श्रोत्रेति। शब्दत्वं दृष्टान्तः। न च शब्दप्रागभावे व्यभिचारः, शब्दनित्यत्ववादिमते तदभावात्। न च सन्दिग्धे व्यभिचारः, भावत्वविशेषणस्य देयत्वात्। न च व्यर्थविशेषणत्वशङ्का, एतद्विशेषणमन्तरेणैव व्यभिचारास्फूर्तिदशायां सत्प्रतिपक्षस्वीकारात्। अत एव सत्प्रतिपक्षस्यानित्यदोषता, व्यभिचारस्फूर्तौ तदस्वीकारात्। जातौ व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम्। समवेतधर्मत्वं तदर्थः। योगिग्राह्ये परमाण्वादौ व्यभिचारवारणाय अस्मदादीति। अस्मदादिपदं लौकिकप्रत्यासत्तिजत्व-

१ इत्यवबोध्यमिति घ. २ काञ्चनायोऽयमिति घ. ३ पदमिदं नास्ति छ. ४ भङ्गायेति घ. ५ पदमिदं नास्ति च. ६ विपक्षावृत्तित्वमिति च. ७ विपक्षाव्यावृत्तत्वमिति घ. ८ इतः पदचतुष्टयं नास्ति च. ९ वारणायेति घ. १० व्यावृत्तत्वेनेति च. ११ प्रतिरुद्धे इति घ. १२ बलप्रमाणेति घ. १३ समप्रमाणेति घ. १४ हेतुत्वेति घ. १५ व्यवहार इति छ. १६ व्यभिचारादीति घ. १७ पदादीति छ.

परम्, विपर्यजत्वावच्छिन्नपरं वा । तेनास्मदादिसामान्यप्रत्यासत्तिजन्यग्रहविषये परमाण्वादौ न व्यभिचारः। आत्मनि व्यभिचारनिराकृतये बाह्येति । बाह्यशरीरग्राह्ये तत्रैव व्यभिचारवारणाय इन्द्रियेति । षोढेति । षड्विधा लिङ्गाभासा इत्यर्थः । भाष्ये प्रशस्तपादभाष्ये ।

[अ. टी.] लिङ्गलक्षणे व्यवच्छेद्यलिङ्गाभासज्ञानाय तल्लक्षणमाह—**लिङ्गलक्षणेति** । **अभिमानः** प्रत्ययविशेषः । सद्धेतुव्यभिचारवारणाय **लिङ्गलक्षणरहिता** इत्युक्तम् । प्रत्यक्षाभासादिव्यवच्छेदाय **लिङ्गाभिमानविषय इति** । अज्ञातोऽसिद्ध इत्युक्ते सपक्षादिधर्मत्वेनाज्ञातस्याप्यसिद्धत्वं स्यादत उक्तम **पक्षधर्मतयेति** । सद्धेतुव्यभिचारवारणाय **विपक्षग्रहणम्** । अनित्यश्शब्दो विभुत्वादित्यादेः केवलविपक्षगामिनो व्युदासाय **पक्षग्रहणम्** । अनैकान्तिकव्युदासाय **चैवकारः** । अनित्यत्वे शब्दस्य साध्यमाने श्रोत्रग्राह्यत्वं विपक्षे शब्दत्वे शब्दे च पक्षे वर्तते, नान्यत्रेति विरुद्धता । विरुद्धादिव्युदासाय **पक्षत्रयग्रहणम्** । विरुद्धादिव्युदासाय **विपक्षव्यावृत्त** इत्युक्तम् । अन्वयव्यतिरेकिव्युदासाय **सपक्षव्यावृत्त इति** । सत्यपि सपक्षे सपक्षाव्यावृत्तत्वस्य विवक्षितत्वान्न केवलव्यतिरेकिण्यतिव्याप्तिः । प्रमाणाभासविरोधस्सद्धेतोरपि सम्भवति, ततस्तत्रातिव्याप्तिनिरासार्थं **प्रमाणविरोधीत्युक्तम्**। **बाधितविषय इति** कालात्ययापदिष्टसंज्ञा । आत्मा नित्यः, सत्त्वे सत्यकारणकत्वात् निरवयवद्रव्यत्वाच्चेत्यविरुद्धहेतुसमावेशव्यवच्छेदाय **विरुद्ध**पदम् । अनित्यश्शब्दः, कृतकत्वात्; नित्यश्शब्दः, निरवयवत्वात् इति विरुद्धहेतुसमावेशव्यवच्छेदाय **समबलग्रहणम्** । श्रोत्रग्राह्यत्वेन नित्यत्वे शब्दत्वं दृष्टान्तः । अनुमानयोगीन्द्रियाभ्यां ग्राह्यपरमाण्वादिषु व्यभिचारवारणाय **अस्मदादीन्द्रियग्राह्यत्वादि**त्युक्तम् । अस्मदादिमनोग्राह्ये आत्मनि व्यभिचारवारणाय **बाह्य**पदम् । सामान्यादौ तन्निरासाय **सामान्यवत्वे सतीत्युक्तम्** । इति षोढा षड्विधो लिङ्गाभास इति पूर्वेणान्वयः । असिद्धादिभेदविशेषा दृष्टान्ततदाभासौ च किमिति नोच्यन्त इति तत्राह—**शेषं भाष्य इति** । सङ्ग्रहाधिकारान्नात्र विशेषविस्तारोक्तिः । प्रशस्तभाष्याद्युक्तौ साक्षाद्द्रष्टव्येत्यर्थः ।

[वा. टी.] सपक्षेऽनैकान्तिकनिरासाय **विपक्षव्यावृत्त इति** । अन्वयव्यतिरेकिनिरासाय **सपक्ष इति** । भूर्नित्या शशविषाणोल्लिखितत्वादित्यत्रातिव्याप्तिपरिहाराय **पक्षेति** । भूर्नित्या नित्यरूपवत्वादिति भागासिद्धिनिरासाय **एवेति** । पक्षव्याप्तिश्चैवकारार्थः । पूर्वप्रमाणविरुद्धेन

---

१ जन्यस्येति च. २ निराकृतयेति च. ३ पदमिदं नास्ति च. ४ पादेति नास्ति छ. ५ ज्ञापनायेति ट. ६ लिङ्गेनेति इति स. ७ व्यावृत्त्यर्थमिति ज, ट. ८ व्यवच्छेदायेति ज, ट. ९ व्युदासार्थमिति ज, व्यवच्छेदार्थमिति ट. १० चेति नास्ति ज, ट पुस्तकयोः. ११ व्यवच्छेदार्थमिति ज, ट. १२, १३ व्यवच्छेदायेति ज, ट. १४ इत्युक्तमिति ट. १५ कार्यत्वादिति ज, ट. १६ वारणार्थमिति ज, ट. १७ ग्राहकत्वादिति स. १८ अनेकान्तव्युदासार्थमिति ज, व्यवच्छेदार्थमिति ट. १९ निरासार्थमिति ज, ट. २० आभासादयश्चेति ज, ट.

बाधितविषयत्वं न सम्भवतीति प्रमाणविरोधाद्धेत्वन्तरनिवृत्तये विरुद्धेति। व्यूहः प्रपञ्चः। ननु स्वरूपासिद्धादीनामपि सत्वात्कथमेषामेव प्रदर्शनमत आह–शेषमिति। भाष्यं प्रशस्तपादभाष्यम्। सङ्ग्रहाधिकारान्नात्रोक्तिः।

■

(शब्दार्थापत्त्यनुपलब्धीनामन्तर्भावः)

वाक्याद्वाक्यार्थधीः, असन्निहितविषयेऽभावधीः, असतो गेहे जीवतो बहिस्सत्वबुद्धिरनुमितिः, प्रत्यक्षेतरप्रमितित्वात्, सम्प्रतिपन्नवदिति। सन्निहितविषयेऽभावप्रमा प्रत्यक्षा, अनुमित्यन्यप्रमात्वात्, सम्प्रतिपन्नवदित्यन्तर्भावः। शेषं भाष्ये।

[व. टी.] शब्दमनुपलब्धिमर्थापत्तिञ्च पराभिमतं मानान्तरमनुमानेऽन्तर्भावयितुमनुमानमाह–वाक्यादिति। एतावता पराभिमता शाब्दी बुद्धिः पक्षीकृता। शाब्दबुद्धित्वेन न पक्षता। अनुमानान्तर्भाववादिमते (?) शाब्दत्वजातेरभावात्। अतो वाक्यजन्यवाक्यार्थगोचरधीत्वेन पक्षता। वाक्यजन्यत्वन्तूभयवादिमतेऽप्यस्ति। तदनुमानविधया शब्दविधया वेत्यत्र परं विवादः। यद्यपि न्यायमते वाक्यत्वं (न ?) जनकतावच्छेदकं, तथाप्यन्वयाविरोधिपदत्वादिना वाक्यस्यैव जनकत्वमिति तत्त्वम्। यद्यपि नैयायिकमतेऽप्यनुमानविधया वाक्यजन्या धीरस्त्येवेति तामादाय सिद्धसाधनम्, तथापि विवादपदं तादृशधीः पक्षः। यद्यपि वाक्यजन्या तत्र न वर्णावगाहिनी श्रोत्रधीः प्रत्यक्षेऽन्तर्भवति, तथापि तज्जन्या वाक्यार्थधीरनुमितावेवान्तर्भवतीति भावः। पदजनिते पदार्थस्मृतिजनितवाक्यार्थधीः काचित् मानसबोधेऽन्तर्भवतीति बोध्यम्। असन्निहितेति। असन्निहितेन विशेषणेन सन्निहिताभावबुद्धेः प्रत्यक्षान्तर्भावस्सूचितः। अनुपलब्धेरन्तर्भावोऽभावेति विशेषणेन प्राप्तः। अर्थापत्तिमन्तर्भावयति–असत इति। गृहेऽसतो जीवतो देवदत्तादेः बहिस्सत्वबुद्धिरित्यर्थः। गृहेऽवर्तमानस्य बहिस्सत्वबुद्धिः प्रमा न भवत्यतो गृहासत्वमुक्तम्। तादृशस्य मृतस्य बहिस्सत्वबुद्धिः प्रमा न भवत्यतो जीवत इति। ईदृशस्य गेहबुद्धिः प्रमा न भवत्यतो बहिरिति। पक्षस्सर्वत्र यथार्थानुभवो ग्राह्यः। प्रत्यक्षे व्यभिचारवारणाय अप्रत्यक्षेति। असिद्धिव्यभिचारयोर्वारणाय इतरेति। विपर्यये व्यभिचारवारणाय प्रमितित्वादिति। साध्यमप्यनुमितिप्रमात्वमुद्देश्यम्। सम्प्रतिपन्नवत् अनुमितिप्रमावदित्यर्थः। असन्निहितविशेषणेन सूचितमनुमानमाह–सन्निहितेति। अभावविपर्यये बाधवारणाय प्रमेति। सन्निकर्षस्योभयवादिमतेऽभावज्ञानजनकत्वेऽपि स्वरूपसदनुपलब्धिजप्रमापक्षः। अर्थजन्यत्वमात्रे साध्येऽर्थान्तरमतः

१ सत्येति नास्ति क पुस्तके; सत्वबुद्धिप्रमेति ग, घ. २ अप्रत्यक्षेति बलदेवपाठः. ३ प्रत्यक्षजेति क, ग, घ. ४ वाक्यजन्येति घ. ५ तज्जन्यधीर्वाक्यार्थधीरिति घ. ६ बोधेऽपीति घ. ७ पदमिदं नास्ति घ. ८ इत आरभ्य अत इत्यन्तो भागो नास्ति ङ पुस्तके.

प्रत्यक्षत्वं साधितम्। अनुमितौ व्यभिचारवारणाय अनुमितीति। विपर्यये व्यभिचारवारणाय प्रमितित्वम्।

[अ. टी.] तथापि परोक्षा प्रमितिर्लैङ्गिक्येवेति भवतां नियमो न सम्भवति शब्दादिप्रमितिसम्भवादित्यत आह–**वाक्यादिति**। असन्निहितविषये प्रत्यक्षागोचरेत्यर्थः। जीवतो गृहे चासतो बहिस्सत्वबुद्धिरित्यर्थापत्तिमपि पक्षीकरोति–**असत इति**। प्रत्यक्षप्रमितौ व्यभिचारवारणाय प्रत्यक्षेतरपदम्। ननु यद्यप्यागमार्थापत्त्योरनुमानेऽन्तर्भावोऽभावस्य पुनस्सन्निहितविषय इह भूतले घटाभाव इति प्रामाण्याङ्गीकारात्कथमनुमानेऽन्तर्भाव इत्यत आह–**सन्निहितविषयेति**। अनुमितौ व्यभिचारव्युदासार्थं तदन्यपदम्। **सम्प्रतिपन्नवत्** प्रत्यक्षप्रमावदित्यर्थः। तथापि प्रत्यक्षानुमाने द्वे एव प्रमाणे कथम्? उपमानादिसम्भवादित्यत आह–**शेषं भाष्य इति**। प्रत्यक्षेतरप्रमितित्वमनुमानान्तर्भावगमकमुपमित्यादौ यद्यपि तुल्यम्, तथाप्यधिकमन्यत्र द्रष्टव्यमिति भावः। एवं विद्यायाः प्रमितिलक्षणो भेदः प्रपञ्चितः।

[वा. टी.] ननु शाब्दादिप्रमितीनामपि सम्भवात् द्वैविध्यमसङ्गतमत आह–**वाक्यादिति**। प्रत्यक्षप्रमानिवृत्तये **प्रत्यक्षेति**। अयमाशयः–वाक्यं हि स्वार्थं संसर्ग(मर्यादया?) बोधयल्लिङ्गस्वरूपेणैवानुसन्धीयमानमविनाभावबलेनैव बोधयति। तथाहि–देवदत्त गामभ्यानयेत्यत्रैतानि पदानि स्वस्मारितार्थसंसर्गज्ञानपूर्वकाणि, विशिष्टपदत्वात्, सम्प्रतिपन्नवदिति लिङ्गरूपेणावगतेन वाक्येन संसर्गबोधः क्रियत इति युक्तं शब्दजन्यप्रमितेरनुमितित्वम्। अर्थापत्तिरप्यनुपपद्यमानार्थदर्शनादुपपादके बुद्धिः, साप्यनुमानमेवाविनाभावसम्भवात्। तद्यथा विमतो देवदत्तः बहिस्सन् (जाग्रवाहे? जीवन् गृहे) असत्वात् यदेवं तदेवं यथाहमिति युक्तं तत्प्रमितेरप्यनुमितित्वम्। अनुपलब्धिजन्यया प्रमया त्रैविध्यं परिहरति–**सन्निहितेति**। प्रत्यक्षधर्मिप्रतियोगिकाभावविषयेति यावत्। **अनुमित्यन्येति**। न चेन्द्रियाभावयोरसम्बन्धाभावादनध्यक्षत्वमिति वाच्यम्। पञ्चविधसम्बन्धान्यतमसम्बन्धसम्बद्धपदार्थविशेषणविशेष्यभावस्यसम्भवादिति। समाख्याभावस्त्वागमादिनेति। तथाप्युपमानसम्भवान्न द्वैविध्योपपत्तिरित आह–**शेषमिति**। अतिदेशवाक्यार्थ (स्मरणाचतः? स्मरणाच्च) पुंसो यद्गोपिण्डे गोसदृशोऽयमिति ज्ञानं तत्प्रत्यक्षमेव नोपमानम्। संज्ञासंज्ञिप्रमितिस्तु वाक्यफलमिति सूक्तं द्वैविध्यम्।

*

(स्मृतिनिरूपणम्)

उत्तरा स्मृतिः। सा अप्रमा, स्वविषये प्रत्यक्षानुमानान्यत्वात् इति सिद्धा बुद्धिः।

[ब. टी.] **उत्तरा** अविद्येत्यर्थः। यद्यपि व्यधिकरणप्रकारकत्वरूपमविद्यात्वं सर्वत्र स्मृतौ न सम्भवति, यथार्थानुभवजनितस्मृतेर्यथार्थत्वात्, तथाप्यनुभवत्वराहित्यप्रयुक्त-

१ विषये च भूतल इति ट, विषय एव भूतल इति ज. २ वारणायेति ज, अनुमितिव्युदासार्थमिति झ. ३ मसम्भवादत इति ज, ट. ४ अनुमितीति ज, ट. ५ भावाङ्गमिति ट. ६ अनुमित्यन्यप्रमात्वादिति मु. ७ विद्येति क ख; अविद्येति मु.

यथार्थानुभवत्वराहित्यरूपाप्रमात्वसत्त्वान्न दोषः । **स्वविषय इति** साध्यविशेषणमुद्देश्यसिद्धये । प्रत्यक्षानुमित्योर्व्यभिचारवारणाय प्रत्यक्षानुमानेत्यन्यत्वविशेषणम् ।

[अ.टी.] स्मृतिलक्षणं द्वितीयं प्रपञ्चयति–**उत्तरेति**। तस्याः प्रमान्यत्वे प्रमाणमाह–**साऽप्रमेति** । स्मृतेरपि कार्यतया स्वकारणसंस्कारैर्लिङ्गतया प्रमाणत्वाद्बाधव्युदासार्थं **स्वविषये** इत्युक्तम् । प्रत्यक्षान्यत्वमनुमानेऽनुमानान्यत्वञ्च प्रत्यक्षे व्यभिचरति, अत उभयान्यत्वग्रहणम् ।

[वा. टी.] **साऽप्रमेति**। स्मृतेः कार्यतया स्वकारणे संस्कारे लिङ्गत्वेन प्रामाण्यात् बाधनिवारणाय **स्वे विषये इति** । अनुमितौ प्रत्यक्षे च व्यभिचारपरिहाराय पदद्वयम् । न च साधनविकल्पत्व-विपर्ययस्येन्द्रियसन्निकर्षव्याप्तलिङ्गजन्यत्वाभावेन साधनस्य तत्र वर्तमानत्वादिति । नच तत्वज्ञानादेव प्रमात्वं साधनीयम्, स्वतोऽर्थानवधारणात् । तदाहुः–

तत्र यत्पूर्वविज्ञानं तस्य प्रामाण्यमिष्यते ।
तदुपस्थापनेनैव स्मृतेस्स्याच्चरितार्थता ॥

इति युक्तमप्रमात्वम् ।

(सुखदुःखयोर्निरूपणम्)

यस्मिन्ननुभूयमाने तत्साधनेष्वभिष्वङ्गः[3] तत्सुखम् ।

यस्मिन्ननुभूयमाने तत्साधनेषु द्वेषः तद्दुःखम् । ते बुद्धिजे, तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात्, यदेवं तदेवं यथा घटः, तथा च प्रकृतम् तस्मात्तथा ।

[अ.टी.] **यस्मिन्निति**। अनुभूयमानमात्रं घटादावतिव्याप्तमतः तत्साधनेष्वभिष्वङ्ग इति । एवमपि पुण्ये गतं, सुखसाधनतया ज्ञायमानस्य पुण्यस्य साधने यागादौ ? विधादर्शनादिति चेत्–न; अन्यसाधनतया ज्ञायमाने यस्मिन् भावे येन रूपेण ज्ञातेऽन्यत्रेच्छा तद्रूपाक्रान्तसुखमित्यर्थात् । अतएव (न ?) दुःखाभावेनापि सुखत्वभ्रमगोचरतापन्ने चन्दनादावतिव्याप्तिः ।

यस्मिन्निति । अन्यसाधनतया ज्ञायमाने यस्मिन् येन रूपेण ज्ञाते तत्साधने द्वेषस्वरूपाक्रान्तं दुःखमित्यर्थः । तेन दुःखत्वभ्रमगोचरतापन्ने पापादौ नातिव्याप्तिः । **तदन्वयेति** । स्वतश्चतदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वादित्यर्थः । तेनान्यथासिद्धं व्यभिचारवारणम् ।

[अ. टी.] **अभिष्वङ्गः** अनुरागः । यस्मिन्ननुभूयमाने स्वसमवेततयेति पूरणीयम् । अन्यथा स्वर्णव्रीह्यादावनुभूयमाने तत्साधनेषु वाणिज्यकर्षणादिष्वभिष्वङ्गदर्शनादतिव्याप्तिः स्यात् । एवं

१ स्वेति नास्ति ढ. २ कारणे संस्कारे इति ज, ढ. ३ तत्साधनेष्वनुषङ्गः तत्समवेत इत्यधिकं मुद्रितपुस्तके. ४ च समवेत इत्यधिकं मुद्रितपुस्तके. ५ अभिद्वेष इति घ. ६ मनुषङ्ग इति छ. ७ अन्यत्रेति नास्ति च पुस्तके. ८ मूलेत्वमिति छ. ९ सुखयोरिति ज, ढ.

दुःखलक्षणेपूह्यम् । तयोरिष्टानिष्टबुद्धिजन्यत्वस्वीकारात्तत्र प्रमाणमाह—ते बुद्धिज इति । अनुविधानमनुवर्तनम् ।

[वा. टी.] यस्मिन्निति । आत्मनिवारणाय तत्साधनेति । अभिष्वङ्गः अनुरागः । रागादिनिवृत्तये आत्मसमवेतेति द्रष्टव्यम् । एवं दुःखस्यापि सत्यां रागादिबुद्धौ सुखादि भवति नान्यथेति तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वम् ।

*

(इच्छा तद्विभागो द्वेषश्च)

प्रार्थना इच्छा । सा द्वेधा—नित्यानित्यभेदेन । महेश्वरस्य नित्या, ईशविशेषगुणत्वात् तद्बुद्धिवदिति । विप्रतिपन्नानि कार्याणि ईशेच्छाजन्यानि, कार्यत्वात्, सम्प्रतिपन्नवदिति । सर्वोत्पत्तिनिमित्तत्वमीशेच्छायाः । अनित्या अनीशानाम्, अनीशविशेषगुणत्वात्, तद्बुद्धिवदिति । रोषो द्वेषः । सोऽनित्यः, जीवविशेषगुणत्वात्, तद्बुद्धिवत् । बुद्धिजत्वं तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वादिति ।

[व. टी.] प्रार्थनेति । प्रार्थनापदवाच्यम् इच्छात्वजातिमदित्यर्थः । घटरूपादौ व्यभिचारवारणाय ईशेति । ईशसंयोगे व्यभिचारवारणाय विशेषेति । असदादीच्छायां बाधवारणाय महेश्वरस्येति । महेश्वरसंयोगादौ व्यभिचारवारणाय इच्छेति । विप्रतिपन्नानीति । अङ्कुरादौ पक्षधर्मताबलान्नित्येच्छाजन्यत्वसिध्यनन्तरं घटादिकं कार्यं पक्षीकृत्य नित्येच्छाजन्यत्वं साध्यते । अङ्कुरादिसम्प्रतिपन्नो दृष्टान्तः । अङ्कुरादौ सिद्धसाधनवारणाय विप्रतिपन्नानीति । ईशमात्रकर्तृकभिन्नानीत्यर्थः । आकाशादौ बाधवारणाय कार्याणीति । अर्थान्तरवारणाय ईशेति । ईश्वरबुध्यार्थान्तरवारणाय इच्छेति ।

[अ. टी.] जीवविशेषगुणेषु शब्दादिषु च व्यभिचारवारणार्थम् ईशेति । ईशेच्छैव कुतस्सिद्धा, तस्यास्सर्वोत्पत्तिनिमित्तत्वञ्च कुत इत्यत आह—विप्रतिपन्नानीति । अङ्कुरादीनीत्यर्थः । इच्छाजन्यानीशेच्छाजन्यानीति च द्विविधप्रयोगो ज्ञेयः । प्रथमप्रयोगान्नित्येच्छासिद्धौ पूर्वत्र दृष्टान्तीकृतघटादेर्नित्येश्वरेच्छाजन्यत्वमङ्कुरादिवत्साध्यम् । नित्यपरिमाणादौ व्यभिचारवारणार्थं विशेषपदम् । ईशादिविशेषगुणेष्वनैकान्तिकव्युदासाय जीवपदम् ।

[ज्ञा. टी.] इदं भूयादिति प्रार्थनाशब्दार्थः । रोषो द्वेष इत्यत्र पर्यायत्वेऽपि प्रसिद्धत्वाप्रसिद्धत्वाभ्यां लक्ष्यलक्षणभावो युक्तः, खं छिद्रमितिवत् ।

---

१ धीवदिति ख, ग, घ. २ दोष इति मु. ३ वदिति नास्ति क पुस्तके. ४ इत आरभ्य तद्विशेषगुणत्वाद्बुद्धिवदित्यन्तो भागो नास्ति मुद्रितपुस्तके. ५ बाधवारणायेति च. ६ इह दृष्टान्त इति च. ७ ईशपदमिति ज, ट. ८ उत्पत्तिमदिति ट. ९ द्वेषेति ज, ट. १० घटादीति ज, घटाद्राविति ट.

*

(प्रयत्नः तद्विभागश्च)

गुणत्वावान्तरजात्या बुद्धीच्छान्येश्वरविशेषगुणगततत्सामान्याधारः प्रयत्नः। सोऽस्मदादीनां प्रत्यक्षः। ईशस्य तु पुरुषत्वात्सिद्धः। स नित्यानित्यभेदाद्द्वेधा। नित्यस्सर्वज्ञस्य तद्विशेषगुणत्वाद्बुद्धिवत्। अनित्यो द्वेधा–इच्छाद्वेषान्यतरपूर्वको जीवनपूर्वकश्चेति। पूर्वो मानसप्रत्यक्षसिद्धः, उत्तरोऽनुमानसिद्धः। सुषुप्तप्राणक्रिया अस्मदादिप्रयत्नजा प्राणक्रियात्वात् जाग्रतः प्राणक्रियावदिति।

[प्र. टी.] गुणत्वावान्तरेति। सामान्यादावतिव्याप्तिवारणाय सामान्येति। घटादावतिव्याप्तिवारणाय गुणगतेति। संख्यादावतिव्याप्तिवारणाय विशेषेति। रूपादावतिव्याप्तिवारणाय ईश्वरेति। बुद्धीच्छयोरतिव्याप्तिवारणाय बुद्धीच्छान्येति। सत्तामादायातिप्रसङ्गवारणाय अवान्तरेति। गुणत्वमादायातिव्याप्तिवारणाय गुणत्वेति। रूपप्रयत्नान्यतरत्वादिनातिप्रसक्तिनिरासाय सामान्येति। इच्छाद्वेषेति। इच्छापूर्वको द्वेषपूर्वकश्चेत्यर्थः। द्वेषपूर्वकस्तु प्रयत्नो न नव्यमते सिद्धः। जीवनेति। जीव्यतेऽनेनेति जीवनमदृष्टम्। सुषुप्तप्राणक्रियेति। जलादिक्रियायां बाधवारणाय प्राणेति। प्राणे बाधवारणाय क्रियेति। प्राणायामे सिद्धसाधनवारणाय सुषुप्तेति। सुषुप्तशरीरक्रियायां स्पर्शनवद्वेगवल्लोष्ठादिसंयोगजन्यायां बाधवारणाय प्राणेति। ईश्वरप्रयत्नेनार्थान्तरवारणाय अस्मदादीति। अस्मदादिगतत्वेनार्थान्तरवारणाय प्रयत्नेति। अदृष्टाद्वारकप्रयत्नजन्यत्वं समुदायार्थः। तेन नादृष्टद्वारकप्रयत्नजन्यत्वेनार्थान्तरम्। क्रियात्वं पतनादौ व्यभिचारि, तदर्थं प्राणक्रियात्वं हेतूकृतम्। प्राणत्वं साधनविकलमत उक्तं क्रियात्वम्। प्राणक्रियाविशेषो हेतुरतो न प्राणवाय्वादिसंयोगजन्यप्राणक्रियायां व्यभिचारः। पक्षेऽपि स एव, तेन नांशतो बाधः।

[अ. टी.] **सामान्याधारः प्रयत्न** इत्युक्ते द्रव्यकर्मणोरतिव्याप्तिः स्यादत उक्तं **गुणगतेति**। संयोगादौ व्यभिचारवारणाय विशेषपदम्। रूपादावतिव्याप्तिव्युदासार्थम् **ईश्वर**पदम्। तर्हि ज्ञानेच्छयोर्व्यभिचारस्स्यात्ततो **बुद्धीच्छान्ये**त्युक्तम्। बुद्धीच्छान्येश्वरविशेषगुणगतसत्तागुणत्वलक्षणसामान्याधारे द्रव्यादौ गुणमात्रे चातिव्याप्तिनिरासार्थं **गुणत्वावान्तरजात्ये**त्युक्तम्। किं तदनुमानमित्यत आह–**सुषुप्तप्राणक्रियेति**। ईशप्रयत्नजन्यत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थम्। **अस्मदादि**पदम्। क्रियात्वं मेघगत्यादौ व्यभिचरतीत्यत उक्तं **प्राणक्रियात्वादिति**।

---

१ जातीयेति घ. २ सदिति नास्ति ख, ग, घ. ३ प्रत्यक्षसिद्ध इति घ. ४ तु इति नास्ति ख, ग, घ. ५ धीवदिति ख, ग, घ. ६ सुप्तेति ख, घ. ७ भङ्गायेति घ. ८ अतिव्याप्तेनेति ज, ट. ९ किमिति नास्ति ट पुस्तके. १० इतीति नास्ति ट पुस्तके.

[बा. टी.] **गुणत्वेति** । संयोगेऽतिव्याप्तिपरिहाराय **विशेषेति** । गन्धेऽतिव्याप्तिपरिहाराय **ईश्वरेति** । ज्ञानेच्छयोरतिव्याप्तिपरिहाराय **बुद्धीच्छान्येति** । जीवप्रयत्नेऽव्याप्तिनिरासाय **तद्गतसामान्येति** । घटेऽतिव्याप्तिपरिहाराय **गुणत्वेति** । रूपनिवारणाय **अवान्तरेति** । जीवनं प्राणधारणम् ।

*

(गुरुत्वलक्षणं तत्र प्रमाणञ्च)

आद्यपतनासमवायिकारणात्यन्तसजातीयं गुरुत्वम् । तत्र प्रमाणम्–प्रथमं पतनम्, असमवायिकारणपूर्वकम्, क्रियात्वात्, सम्प्रतिपन्नवदिति । परिशेषाद्गुरुत्वसिद्धिः । द्रुतं सर्पिः, यावद्द्रव्यभाव्यतीन्द्रियवत्, चतुर्दशगुणवत्त्वात् बहुविशेषगुणवत्त्वाच्च, आत्मवदिति मानद्वयम् । तत्रान्यस्यासम्भवात् । घटगुरुत्वं यावद्द्रव्यभावि, अक्रियाजन्यत्वे सति अबुद्धिजन्यत्वे सति घटसमवेतत्वात्, घटरूपवत् । सर्वत्र गुरुत्वं यावद्द्रव्यभावि, गुरुत्वात्, घटगुरुत्ववदिति साधनीयम् । अत एव कारणगुणपूर्वकत्वं तद्दृष्टान्तेन साधनीयम् । घटगुरुत्वमप्रत्यक्षं, गुरुत्वात्, परमाणुगुरुत्ववत् ।

[बा. टी.] **आद्येति** । द्वितीयपतनासमवायिकारणे प्रथमपतनजन्यवेगेऽतिव्याप्तिवारणाय **आद्येति** । नोदनजन्याद्यकर्मासमवायिकारणे नोदनेऽतिव्याप्तिवारणाय **पतनेति** । यत्रापि नोदनादिना फलसंयोगाभावो भवति, तत्रापि पतनस्य (न ?) नोदनासमवायिकारणता । नोदनस्य संयोगध्वंसजनकपतनभिन्नकर्मजननेनैवोपक्षीणत्वात् । अतएव संयोगध्वंसेनोपक्षीणनोदनजन्यकर्मादिना पतनासमवायिकारणपतनात्यन्तसजातीयत्वं गुरुत्वे सम्भवति (?) तदर्थं **कारणेति** । कालादौ गतमत आह—**असमवायीति** । सत्तादिना सजातीये घटादावतिव्याप्तिवारणाय **अत्यन्तेति** । तेन गुणत्वव्याप्यजात्या साजात्यं प्राप्तम् । अत एव पतनासमवायिकारणनिष्ठान्यतरत्वादिमति रूपादौ नातिव्याप्तिः । पतनत्वं गुरुत्वप्रयोज्यो जातिविशेषः, न त्वधस्संयोगफलकक्रियात्वम् । सूर्यकरकर्मणि तदसमवायिकारणे वा पतनलक्षणस्य गुरुत्वलक्षणस्य च नातिप्रसक्त्यापत्तिः, न वाऽदृष्टवदात्मसंयोगेऽतिव्याप्तिः, तस्य पतननिमित्तत्वेऽपि तदसमवायिकारणत्वाभावात् । अजनितपतनके नष्टगुरुत्वेऽव्याप्तिवारणाय सजातीयत्वमुक्तम् । **प्रथममिति** । प्रथमशरक्रियादावर्थान्तरवारणाय **पतनमिति** । द्वितीयादिपतनेऽर्थान्तरवारणाय **प्रथममिति** । अदृष्टादिनार्थान्तरवारणाय **असमवायीति** । **परिशेषादिति** ।

---

१ आद्यपतनमिति ख, ग, घ; प्रथमपतनमिति क. २ चेति नास्ति क, ख, घ पुस्तकेषु; वा इति ग. ३ आत्मवदिति नास्ति घ पुस्तके. ४ घटेति घ. ५ जन्यत्वे सतीति घ. ६ कारणपूर्वकमिति ग, घ; कारणगुणपूर्वकमिति क ७ जन्यमत इति छ. ८ उपक्षीण नोदनजन्यं कर्मापि न पतनेति छ. ९ कारकक्रियात्वेनेति च. १० क्रियैवेति च.

अन्यथा गुरुत्वोत्कर्षेण पतनोत्कर्षो न स्यादिति भावः। द्रुतमिति। रूपादिनार्थान्तरवारणाय अतीन्द्रियेति। आकाशवृत्तिद्वित्वेनार्थान्तरवारणाय यावदिति। न च गगननिरूपितवृत्तिनिष्ठसंयोगेनार्थान्तरं, तस्यापि यावद्द्रव्यभावित्वाभावात्, व्याप्यवृत्तित्वविशेषणस्य देयत्वाद्वा। न च स्थितस्थापकेनार्थान्तरम्, तद्भिन्नत्वेन विशेषणात्। न च द्रुतपदवैयर्थ्यम्, द्रुतसर्पिष्ट्वेन प्रतीतेरुद्देश्यत्वात्। प्रत्यक्षतेजसि व्यभिचारवारणाय चतुर्दशेति। प्रमेयत्वादिचतुर्दशधर्मवति तत्रैव व्यभिचारवारणाय गुणेति। तेजसि व्यभिचारवारणाय घटेति। अनेकगुणवति तत्रैव व्यभिचारवारणाय विशेषेति। उक्तसाध्यविशेषणं साधयति घटेति। उद्देश्यसिद्धये घटेति। द्वित्वादौ बाधवारणाय रूपादौ सिद्धसाधनवारणाय च गुरुत्वमिति। उद्देश्यसिद्धये यावदिति। स्वाश्रयसमानकालीनध्वंसप्रतियोगीत्यर्थः। रूपप्रागभावे व्यभिचारवारणाय असमवेतत्वादिति। शब्दे व्यभिचारवारणाय घटेति। घटद्वित्वे व्यभिचारवारणाय अबुद्धिजत्वे इति। असाधारणबुद्धिजत्वनिषेधे सतीत्यर्थः। तेन नासिद्धिः। संयोगादिषु व्यभिचारवारणाय अक्रियाजत्वे सतीति। संयोगादिभिन्नत्वे सतीत्यर्थः। तेन न संयोगजसंयोगादौ व्यभिचारः नैवा वेगे। अन्ये तु अक्रियाजत्वे सति संयोगजसंयोगादिभिन्नत्वे सतीत्याहुः। परे तु अक्रियाजत्वं क्रियाप्रयोज्यभिन्नत्वं, संयोगजसंयोगादिः क्रियाप्रयोज्य एवेति न तत्र व्यभिचारो नैवा वेग इत्याहुः। साधनीयं यावद्द्रव्यभावित्वमिति शेषः। अत एवेति। घटसमवेतत्वे सति यावद्द्रव्यभावित्वादित्यर्थः। तद्दृष्टान्तेन घटरूपदृष्टान्तेन। तर्हि तद्वत् किं तत्प्रत्यक्षम्? नेत्याह—घटेति। परमाणुगुरुत्वे सिद्धसाधनवारणाय घटेति। घटनिष्ठाकाशसंयोगादौ सिद्धसाधनवारणाय घटरूपादौ च बाधवारणाय गुरुत्वमिति। गुरुत्वादित्यर्थः।

[अ. टी.] सजातीयं गुरुत्वमित्युक्ते कालादौ व्यभिचारवारणार्थम्—**असमवायिकारणे**त्युक्तम्। तर्हि सत्त्वया समवायिकारणसजातीये द्रव्येऽतिव्याप्तिस्स्यादत उक्तम् अत्यन्तेति। तथापि संयोगादौ व्यभिचारस्स्यादत उक्तं **पतने**ति। एवमप्युत्तरपतनासमवायिकारणात्यन्तसजातीये प्रथमपतनोत्थसंस्कारेऽतिव्याप्तिस्स्यादत उक्तम् आद्यपदम्। जातमात्रनष्टगुरुत्वेऽव्याप्तिनिरासार्थं **सजातीयपदम्**। सम्प्रतिपन्नमुत्तरं पतनम्। प्रयोगान्तरमाह—द्रुतं **सर्पिरिति**। अतीन्द्रियवदित्युक्ते कालादिसंयोगवत्त्वेन सिद्धसाधनतास्यादत उक्तम् **यावद्द्रव्यभावीति**। यावद्द्रव्यभावि युक्तमित्युक्ते रूपादिमत्त्वेन सिद्धसाधनता अत उक्तम् **अतीन्द्रियवदिति**। स्थितस्थापकान्यत्वस्य विवक्षितत्वान्न तेन सिद्धसाधनता। गुणवत्त्वादित्युक्ते तेजोविकारे स्थूलसुवर्णे व्यभिचारस्स्यादत उक्तम्

1, 2 निराकृतस्य इति च. 3 इतः पदत्रयं नास्ति च पुस्तके. 4 सर्वाणि नास्ति च. 5, 6 पदत्रयं नास्ति च पुस्तके. 7 भावित्वादेवेति च. 8 महादाविति छ. 9 पदमिदं नास्ति ज, ढ पुस्तकयोः. 10 द्रव्यगुरुत्वेति ज. 11 तत इति ज, ढ. 12 मन्यत्वं दृष्टव्यमिति ज.

चतुर्दशेति । रूपस्पर्शविशेषगुणद्वयवति स्थूल[1]तेजसि व्यभिचारवारणाय बहुपदम् । द्रवी[2]भूतसर्पिषि तादृशं गुणान्तरं स्यान्न गुरुत्वमिति तत्राह–तत्रेति । प्रकारान्तरेणोक्तं साध्यविशेषणं साधयति–घटगुरुत्वमिति । समवेतत्वादित्युक्ते शब्दबुद्ध्यादौ व्यभिचारस्स्यादतो घटपदम् । घटसमवेतद्वित्वादावनैकान्तिकत्वव्युदासाय बुद्धिजत्वविशेषणम् । अबुद्धिजन्य[3]त्वे सति घटसमवेतसंयोगादिना व्यभिचारवारणायाक्रियाजन्यत्वविशेषणम् । घटसमवेतसंयोगजसंयोगविभागजविभागाभ्यां व्यभिचारवारणार्थं[4] तदन्यत्वविशेषणमपि द्रष्टव्यम् । तथाप्यन्यत्र कथं तस्य यावद्द्रव्यभावित्वसिद्धिस्तत्राह–सर्वत्रेति । साधनीयं यावद्द्रव्यभावित्वमिति शेषः । घटादिगुरुत्वस्य किं कारणं तदाह–अत एवेति । अत एव घटसमवेतत्वे सति यावद्द्रव्यभावित्वादेवेत्यर्थः । तद्दृष्टान्तेन घटरूपनिदर्शनेनेत्यर्थः । तर्हि रूपवत्प्रत्यक्षमपि किं गुरुत्वं, तत्राह–घटगुरुत्वमिति ।

[शा. टी.] आद्येति । रूपनिवारणाय पतनेति । वेगनिवारणाय आद्येति । अपतनगुरुत्वेऽतिव्याप्तिनिवारणाय सजातीयमिति । घटनिवृत्तये अत्यन्तेति । संयोगनिवृत्तये एकवृत्तीति द्रष्टव्यम् । न च लघुत्वाभावस्यैव गुरुत्वादसम्भवादलक्षणमिति वाच्यम् । तथात्वे कारणापेक्षया कार्ये सति दोषस्तदुपालम्भो न स्यादतिशयस्य भावधर्मत्वादतोऽतिरिक्तमेव गुरुत्वमित्याशयवांस्तत्र प्रमाणमाह–तत्रेति । स्पष्टम् । द्रुतं द्रवशीलमुदकम् । सर्पिर्घृतम् । अन्यथा तादृशपदवैयर्थ्यादिति । दिक्संयोगेन सिद्धसाधनपरिहाराय यावद्द्रव्येति । सुवर्णादौ व्यभिचारपरिहाराय चतुर्दशेति । गुरुत्वानङ्गीकारे चतुर्दशगुणवत्वस्य हेतोरसिद्धिमाशङ्क्य हेत्वन्तरमाह–बहुविशेषगुणवत्वाद्वेति । आकाशवारणार्थं बहुपदम् । स्थितिस्थापकान्यत्वञ्च द्रष्टव्यम् । दृष्टान्ते एकपृथक्त्वादिनासिद्धि (परिहाराय ?) यावद्द्रव्यभावित्वं साधयति–घटेति । द्वित्वनिवारणाय अबुद्धीति । संयोगनिवारणाय अक्रियेति । तथापि संयोगजसंयोगविभागजविभागनिवारणाय तदन्यत्वमुपादेयम् । अतएवेति । अक्रियाजन्यत्वादेव । तद्दृष्टान्तेन घटरूपदृष्टान्तेनेत्यर्थः । गुरुत्वस्पर्शनगम्यत्वं निराकरोति–घटगुरुत्वमिति । न चाश्रयाप्रत्यक्षत्वमुपाधिः, धर्मादौ साध्याव्याप्तेः । अतिप्रसङ्गस्तु प्रत्यक्षादिबाधेन परिहरणीय इति ।

*

(द्रवत्वलक्षणं तद्विभागश्च)

आद्यस्यन्दनासमवायिकारणात्य[5]न्तसजातीयं द्रवत्वम् । त[6]द्द्वेधा–नित्यानित्य[7]भेदेन । सलिलपरमाणुषु नित्यम् । तत्र[8] प्रमाणम्–सलिलद्व्यणुकं यावद्द्रव्यभाविद्रवत्ववत्समवायिकार्यं[9],कार्यत्वे सति सलिलत्वात्,सम्प्रतिपन्नसलिलवत् । पार्थिवतैजसपरमाणुषु द्रवत्वमनित्यम्, अ[10]सलिलद्रवत्वात्,

---

१ स्थूले इति श. २ द्रवीकृतेति ट. ३ जत्वे सतीति ज, ट. ४ मङ्गायेति ज. ५ अत्यन्तेति नास्ति घ पुस्तके. ६ तच्चेति मु. ७ भेदादिति मु. ८ पूर्वत्रेति क. ९ समवायिकारणकमिति ग, कारणमिति ख, कारणकार्यमिति मु. १० सलिलातिरिक्तद्रवत्वादिति ग.

सम्प्रतिपन्नवदितीतरसिद्धिः। पार्थिवाः परमाणवो रूपादिचतुष्टयातिरिक्ताग्निसंयोगजैकद्रव्यगुणयोगिनः, अनित्यविशेषगुणवत्त्वे सति नित्यभूतत्वात्, आकाशवदिति परिशेषादग्निसंयोगजत्वं द्रवत्वस्य सिद्धम्। तेजःपरमाणुषु[2] द्रवत्वम् अग्निसंयोगजम्, उदकानधिकरणत्वे सति परमाणुद्रवत्वात्[3], पार्थिवपरमाणुद्रवत्ववदिति।

[व. टी.] आद्येति। द्वितीयस्यन्दनासमवायिकारणे वेगेऽतिव्याप्तिवारणाय आद्येति। नोदनादावतिव्याप्तिनिरासाय[4] स्यन्दनेति। अदृष्टादावतिव्याप्तिवारणाय असमवायीति। सैत्वे[5] तत्सजातीये घटादावतिव्याप्तिवारणाय अत्यन्तेति। गुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजात्या साजात्यं विवक्षितम्। तेन रूपद्रव्यत्वान्यतरत्वेन[6] तत्सजातीये रूपादौ नातिव्याप्तिः। अजनितस्पन्दनके द्रवत्वेऽव्याप्तिवारणाय सजातीयत्वमुक्तम्। सलिलद्व्यणुकमिति। घटादिद्व्यणुके बाधवारणाय सलिलेति। सलिलपरमाणौ बाधवारणाय द्व्यणुकमिति। उद्देश्यसिद्धये यावद्द्रव्यभावीति। रूपादिनार्थान्तरभङ्गाय द्रवत्वेति। तादृशद्रवत्ववत्त्वमात्रसाधने[7] नित्यं द्रवत्वं नायात्यतो द्रवत्ववत्समवायिकार्यत्वमुक्तम्। जलशरीरद्व्यणुकस्य द्रवत्ववत्पार्थिवपरमाणूपष्टम्भकत्वसम्भवेनार्थान्तरवारणाय समवायीति। परमाणौ व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम्। घटादौ व्यभिचारवारणाय पक्षम्यन्तम्। सम्प्रतिपन्नवदिति। स्थलजलवदित्यर्थः। प्रकृते पक्षधर्मताबलाद्द्रवत्वस्य नित्यत्वसिद्धिः। सम्प्रतिपन्नवदिति। घृतद्रवत्ववदित्यर्थः। असलिलेति। सलिलपरमाणुद्रवत्वे[8] व्यभिचारवारणाय असलिलेति। असलिलनिष्ठत्वादिति वक्तव्ये आकाशादेकत्वे व्यभिचारः, तदर्थं द्रवत्वस्यादित्युक्तम्। जलपरमाणुद्रवत्वे बाधवारणाय पार्थिवा इति। उभयत्र तत्सिद्धये उभयग्रहः। घृतादिद्व्यणुकादिद्रवत्वे सिद्धसाधनवारणाय परमाणुष्वित्युक्तम्। परमाणुनिष्ठैकत्वादौ बाधवारणाय तन्निष्ठत्वादौ च सिद्धसाधनवारणाय द्रवत्वमुक्तम्। पार्थिवेति। घटादौ बाधवारणाय अणव इति। द्व्यणुके बाधवारणाय परमेति। जलादिपरमाणौ बाधवारणाय पार्थिवेति। रूपादिनार्थान्तरवारणाय अतिरिक्तान्तम्। परिमाणेनार्थान्तरवारणाय जन्यत्वमुक्तम्। दैशिकपरत्वादिनार्थान्तरवारणाय अग्निसंयोगेति। अदृष्टवदात्मसंयोगेनार्थान्तरवारणाय अग्नीति। उद्देश्यसिद्धये संयोगेति। यद्वा यथोक्तविशेषणविशेष्यभावेन वैयर्थ्यम्, अग्निसंयोगजविभागेनार्थान्तरवारणाय एकद्रव्येति। अव्यासज्यवृत्तित्वं तदर्थः। रूपध्वंसेनार्थान्तरवारणाय गुणेति। यद्वा संयोगजसंयोगेनार्थान्तरवारणाय एकद्रव्येति।

---

१ अग्नीति नास्ति घ. २ परमाणुद्रवत्वमिति मु. ३ द्रवत्वान्यपार्थिवेति ख. ४ धारणायेति च. ५ सत्वेनेति छ. ६ द्रव्यान्यतरत्वेनेति च. ७ द्रवत्वमात्रेति च. ८ सलिलेति च. ९ घृतेति नास्ति छ पुस्तके. १० सलिलेति नास्ति छ पुस्तके. ११ द्रवत्वेनेति च. १२ तादिनि नास्ति घ पुस्तके. १३ जलपरमाणाविति च. १४ परिमाणादिनेति च. १५ इत्युक्तमिति च. १६ पङ्क्तिरियं नास्ति छ पुस्तके. १७ संयोगजन्येति च.

अग्निसंयोगजक्रियाश्रयत्वेनार्थान्तरवारणाय गुणेति। जलपरमाणौ व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम्। विशेषपदं विनैव व्यभिचारः। अनित्यविशेषपदन्त्वसम्भवि, विशेषपदार्थस्य नित्यत्वात्। यदि विशेषपदेन पदार्थविशेष उच्यते, तदाप्यनित्यगुणवत्वमादाय स एव व्यभिचारः। आत्मनि व्यभिचारभङ्गाय भूतत्वादिति। यद्यपि विषयतयाग्निसंयोगजन्यज्ञानाश्रयत्वमात्मन्येव, तथापि वह्निसंयोगासमवायिकारणत्वघटितं वह्निसंयोगासाधारणकारणत्वघटितं वा साध्यं तत्र नास्ति, तेन विशेषणेन विना व्यभिचारस्स्यादेव। गुणपदस्य कृत्यदशायां गुणध्वंसेनार्थान्तरवारणाय द्वितीयसाध्यमादायोक्तम्। प्रथमे वा साध्ये उक्तं कृत्यान्तरं बोध्यम्। घटादौ व्यभिचारवारणाय नित्येति। वंशादावग्निसंयोगजचटचटाशब्दमादाय वाग्नीस्य दृष्टान्तता। तैजसेति। द्रवत्वमात्रपक्षत्वे घृतादिद्रवत्वे बाधः। तैजसद्रवत्वपक्षीकरणे तैजसत्र्यणुकादिद्रवत्वे बाधः। तैजसपरमाणुनिष्ठरूपादेरपि पक्षत्वे बाधः। अतो विशिष्टस्य पक्षताजन्यत्वमात्रसाधने सिद्धसाधनं, संयोगजन्यत्वसाधनेऽदृष्टवदात्मसंयोगेनार्थान्तरम्, अतः अग्नीत्यादि। असमवायिकारणत्वसिद्धये संयोगेति। उदकमनधिकरणं यस्य तत्त्वे सतीत्यर्थः। जलद्रवत्वे व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम्। त्र्यणुकादिद्रवत्वे व्यभिचारवारणाय परमाण्विति।

[अ. टी.] स्यन्दनं स्रवणं क्षरणं तत्कारणं सजातीयं द्रवत्वमित्युक्ते ईश्वरप्रयत्नादावतिव्याप्तिस्स्यादतः असमवायिपदम्। तथापि सत्तादिना तत्सजातीयसंयोगादौ व्यभिचारस्स्यादतः अत्यन्तपदम्। उत्तरसन्दनासमवायिकारणे पूर्वस्यन्दनोत्थसंस्कारे व्यभिचारवारणार्थम् आद्यपदम्। सद्यःशुष्कं द्रवत्वं क्षरणकारणं न भवतीत्यव्याप्तिनिरासार्थं सजातीयग्रहणम्। अयावद्द्रव्यभाविद्रवत्ववत्समवेतत्वेन सिद्धसाधनता मा भूदित्यत उक्तम् यावद्द्रव्येति। सम्प्रतिपन्नः स्थूलो जलावयवी। अनित्ये प्रमाणमाह—पार्थिवेति। सम्प्रतिपन्नं सुवर्णकाष्ठादिद्रवत्वं काष्ठाग्निसंयोगजद्रवत्वस्य प्रत्यक्षत्वेऽग्निपरमाणुषु तस्य किं गमकं तदाह—पार्थिवाः परमाणव इति। अग्निसंयोगजक्रियायोगित्वेन सिद्धसाधनतावारणाय गुणपदम्। तर्हि संयोगजसंयोगाश्रयत्वेन सिद्धसाधनता स्यादत एकद्रव्यपदम्। तर्ह्यग्निसंयोगजरूपाद्याश्रयत्वेन सिद्धसाधनता, तत उक्तं रूपादिचतुष्टयातिरिक्तेति। भूतत्वादित्युक्ते सलिलत्र्यणुकादौ व्यभिचारवारणार्थं नित्यपदम्। तर्हि सलिलादिपरमाणुषु व्यभिचारस्तत उक्तम् अनित्यविशेषगुणवत्वे सतीति। एतावत्युक्ते आत्मनि व्यभिचारस्स्यादत उक्तं नित्यभूतत्वादिति। द्रवत्वादित्युक्ते सलिलत्र्यणुकादिद्रवत्वे व्यभिचारस्स्यादत उक्तं परमाणुत्वादिति। एतावत्युक्ते सलिलपरमाणुद्रवत्वे व्यभिचारस्स्यादत उक्तम् उदकानधिकरणत्वे सतीति। द्रवत्वादित्युक्ते तैलादिद्रवत्वे

१ सत्वेनेति च. २ विशेषवत्वमिति च. ३ उच्यत इति च. ४ तथापीति च. ५ कारणघटितमिति च. ६ नास्तीति इति च. ७ उत्पन्नेति छ. ८ द्वितीयेति नास्ति च पुस्तके. ९ प्रथमसाधनेति छ. १० संयोगजन्येति च. ११ कीदृशस्येति च. १२ जलेति छ. १३ द्रवत्वमिति। प्रत्यक्षेति झ. १४ काष्ठादिष्वपीति ट. १५ प्रत्यक्षत्वेऽपीति ज, ट. १६ सलिलादाविति ट.

व्यभिचारस्स्यादतः परमाणुग्रहणम् । तैलादिपरमाणुद्रवत्वे व्यभिचारवारणाय तदन्यत्वे सतीति द्रष्टव्यम् ।

[बा. टी.] आद्येति । स्पन्दनिवारणाय स्यन्दनेति । द्वितीयस्यन्दनजनकप्रथमस्पन्दननिवारणार्थम् आद्येति । उत्पन्ननष्टद्रवत्वेऽव्याप्तिनिवारणाय सजातीयेति । ध्वंसनिवारणाय अत्यन्तेति । संयोगनिवारणाय एकवृत्तीति द्रष्टव्यम् । सलिलद्व्यणुकमिति । सिद्धसाधनतापरिहाराय यावद्द्रव्यभावीति । आप्यपरमाणुनिरासाय कार्यत्व इति । सुखादिनिवृत्त्यर्थं सलिलेति । पार्थिवा इति । सामान्यादिना सिद्धसाधनतापरिहाराय गुण इति । संयोगेन सिद्धसाधनतापरिहाराय एकद्रव्येति । संख्यादिना सिद्धसाधनतापरिहाराय अग्निसंयोगजेति । रूपादिनिवृत्तये रूपादिचतुष्टयव्यतिरिक्तेति । आप्यद्व्यणुकनिवृत्तये नित्येति । सलिलाणुनिवृत्तये अनित्यविशेषगुणवत्त्वे सतीति । आत्मनिवारणाय भूतत्वादिति । शब्दादिना दृष्टान्तलाभः । सलिलाणुनिवृत्तये उदकानधिकरणत्वे सतीति ।

*

(स्नेहलक्षणम्, तस्य यावद्द्रव्यभावित्वञ्च)

घनोपलगतद्वीन्द्रियग्राह्यविशेषगुणात्यन्तसजातीयः स्नेहः । स च यावद्द्रव्यभावी, अम्भोविशेषगुणत्वात्, रूपवत् । परगतविशेषानपेक्षया पृथिव्यादीनामन्योन्यव्यवच्छेदको गुणो विशेषगुणः ।

[ब. टी.] घनेति । घनो मेघः, तदुपलः करकः यद्वा घनः प्रतिबद्धसांसिद्धिकद्रवत्वः । सांसिद्धिकद्रवत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय गतान्तम् । रूपादावतिव्याप्तिवारणाय द्वीन्द्रियेति । लिङ्गद्वयादिग्राह्यरूपादिकेऽतिव्याप्तिवारणाय इन्द्रियेति । एवमपि रूपादावतिव्याप्तिवारणायेन्द्रियगतं द्वित्वमुक्तम् । संख्यादावतिव्याप्तिवारणाय विशेषेति । एवं पदार्थविशेषे संख्यादावेवातिव्याप्तिवारणाय गुणेति । अग्राह्ये स्नेहेऽव्याप्तिवारणाय सजातीयत्वमुक्तम् । गुणत्वादिना तत्सजातीये रूपादावतिव्याप्तिवारणाय अत्यन्तेति । गुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजात्या साजात्यमुक्तम् । गुणत्वव्याप्यजातिव्याप्यस्नेहरूपान्यतरत्वादिना कृत्वा, रूपादावतिव्याप्तिवारणाय जात्या साजात्यमुक्तम् । स्नेहत्वं जातिर्लक्ष्यतावच्छेदिका । स चेति । द्वित्वादौ व्यभिचारवारणाय विशेषेति । शब्दादौ व्यभिचारवारणाय अम्भ इति । गुणपदकृत्यं पूर्ववत् । ननु स्नेहलक्षणे विशेषगुणेति यदुक्तं, तदसत्; स्नेहस्यैकमात्रेन्द्रियग्राह्यजातिमत्त्वाभावात् । अतोऽन्याद्दशं विशेषगुणत्वं निर्वक्ति परगतेति । परत्वमपि मूर्तममूर्तादन्यतो भेदयति । अतः अन्योन्येति । परत्वं न पृथिवीं जलाद्भेदयति, परत्वस्य विपक्षे जलादावपि सत्वात् । पाकजरूपसमानाधिकरणपरत्वं भेदयत्येव । अतस्तृतीयान्तम् । यन्मते व्यर्थविशेषणस्यापि व्यवच्छेदकता, तन्मत इदम् ।

---

१ पङ्क्तिरियं नास्ति ज, झ पुस्तकयोः. २ बहिरिन्द्रियेति मु. ३ समानजातीय इति घ. ४ चेति नास्ति क. ५ विवक्षितमिति च. ६ असङ्गतमिति च. ७ पदमिदं नास्ति छ पुस्तके. ८ व्यवच्छेदकतेति मतमिति छ.

अत एवैतदेकत्वादौ नातिव्याप्तिः, तस्य परगतैकत्वरूपविशेषापेक्षत्वात्। पृथिवीत्वादावतिव्याप्तिवारणाय गुणपदम्। यत्तु ह्रस्वत्वादेः परगतदीर्घत्वादिविशेषापेक्षया व्यवच्छेदकत्वात्तत्रातिव्याप्तिवारणाय तृतीयान्तेति, तन्न; अन्योन्यत्वादिनैव तद्व्यवच्छेदात्। ह्रस्वत्वस्य जलपरमाण्वादिविपक्षगतत्वात्, आकाशापेक्षया परत्वस्य, मूर्तापेक्षया शब्दस्य वान्योन्यव्यवच्छेदकत्वात् परत्वेऽतिव्याप्तिरतः पृथिव्यादीनामित्युक्तम् एतेनैकैकद्रव्यविभाजकोपाध्याक्रान्तव्यवच्छेदकता प्राप्ता। अधिकं वर्द्धमानप्रकाशे बोध्यम्।

[अ. टी.] गुणसजातीयस्नेह इत्युक्ते सत्तादिना गुणसजातीये द्रव्यादौ व्यभिचारस्स्यादत उक्तम् **अत्यन्तेति**। संख्यादौ व्यभिचारवारणार्थं **विशेषपदम्**। शब्दबुध्यादौ व्यभिचारनिरासार्थं **घनोपलगतेत्युक्तम्**। घनो मेघः, तदुपलः करकः। घनोपलगतविशेषगुणात्यन्तसजातीयस्नेह इत्युक्ते रूपादौ व्यभिचारस्स्यादत उक्तम् **द्वीन्द्रियग्राह्येति**। स्नेहस्य चक्षुःस्पर्शनाभ्यां गृह्यमाणत्वाद्द्वीन्द्रियग्राह्यत्वम्। द्वीन्द्रियग्राह्यविशेषगुणात्यन्तसजातीयस्नेह इत्युक्ते सांसिद्धिकद्रवत्वे व्यभिचारस्स्यादतो **घनोपलगतेत्युक्तम्**। शब्दादौ व्यभिचारवारणार्थम् **अम्भोविशेषगुणत्वादित्युक्तम्**। ननु कोऽसौ विशेषगुण इत्यत आह—**परगतेति**। पृथिव्यादीनां गुणो विशेषगुण इत्युक्ते संख्यादावतिव्याप्तिः स्यादत उक्तम् **अन्योन्यव्यवच्छेदक इति**। तर्हि ह्रस्वत्वादौ व्यभिचारस्स्यादतः **परगतविशेषानपेक्षत्वेत्युक्तम्**। ह्रस्वादेः परगतदीर्घत्वादिविशेषापेक्षया व्यवच्छेदकत्वान्नोक्तदोषः। पृथिव्यादीनामन्योन्यव्यवच्छेदकाः पृथिवीत्वादयोऽपि भवन्तीति तद्व्यवच्छेदार्थं **गुणपदम्**।

[चा. टी.] **घनोपलेति**। संयोगनिवारणाय **विशेषेति**। रूपनिवारणाय **द्वीन्द्रियग्राह्येति**। सलिलद्रवत्वनिवृत्तये **घनोपलगतेति**। घनोपलः करकः। (स्नेहे ?) अव्याप्तिनिरासाय **सजातीय इति**। घटनिरासाय **अत्यन्तेति**। **परगतेति**। संयोगनिरासाय **अन्योन्येति**। सामान्यनिरासाय **गुण इति**। ह्रस्वत्वनिरासाय **परगतेति**।

(संस्कारलक्षणम्, तद्विभागः तत्र वेगश्च)

गुणस्यावान्तरजात्या वेगसजातीयः संस्कारः। स त्रेधा—वेगादिभेदेन। क्रियासमवायिकारणैकद्रव्यात्यन्तसजातीयो वेगः। वेगत्वं क्रियासमवायिकारणैकद्रव्यसमानाधिकरणं, स्पर्शवज्जातित्वात्, सत्तावदिति वेगसिद्धिः। स द्विविधः—वेगजः क्रियाजश्चेति। वेगत्वं वेगासमवायिकारणवृत्ति, वेगजातित्वात्, सत्तावदिति वेगजवेगसिद्धिः। वेगत्वं कर्मासमवायिकारणवृत्ति, वेगजातित्वात् सत्तावदिति कर्मजवेगसिद्धिः।

---

१ विशेषगमिति च. २ पङ्क्तिरियं नास्ति छ पुस्तके. ३ द्रवेति क. ४ दीपत्वमिति क, ख, ग, घ. ५ द्वेषेति क, ग.

[व. टी.] गुणत्वेति । गुणत्वेन रूपेण वेगसजातीये रूपादावतिव्याप्तिवारणाय गुणत्वावान्तरेत्युक्तम् । वेगरूपान्यतरत्वादिना रूपादावतिव्याप्तिवारणाय जात्येत्युक्तम् । रूपादावतिव्याप्तिवारणाय वेगेति । भावनास्थितिस्थापकयोरव्याप्तिवारणाय सजातीयेति[1] । न चात्माश्रयः, संस्कारत्वेन [3]लक्ष्यत्वात्, वेगत्वेन लक्षणप्रवेशात्, येन रूपेण लक्ष्यता तेन रूपेण लक्ष्यस्य लक्षणशरीरे प्रवेशे आत्माश्रयात् । क्रियेति । सजातीयरूपमपि[4]............यत्किञ्चिदसमवायिकारणसजातीयं रूपमपि (?) अतः क्रियेति । क्रियानिमित्तकार्यसजातीयेऽदृष्टादावतिव्याप्तिवारणाय असमवायीति । गुणत्वादिना सजातीये रूपादावतिव्याप्तिवारणाय तान्तम् । अजनितकर्मके वेगेऽव्याप्तिवारणाय सजातीयत्वम् । नोदनादावतिव्याप्तिवारणाय एकद्रव्येति । अनेन लक्षणेन वेगत्वं जातिरेव लक्षणत्वेन (न?) सूच्यते । यद्वा गुरुत्वादिभिन्नत्वे सतीति देयम् । यद्वा स्पन्दनपतनभिन्ना क्रिया विवक्षिता । तेन (न) गुरुत्वादावतिव्याप्तिः । यद्वा तदेकद्रव्यं सौरतेजोनिष्ठत्वेन विवक्षणीयम् । यद्वा क्रिया असमवायिकारणं यस्येति बहुव्रीहिः । सूर्यक्रियाजनितरूपादावतिव्याप्तिवारणाय असमवायीति । संयोगादिनार्थान्तरवारणाय एकद्रव्येति । आत्मत्वे व्यभिचारवारणाय स्पर्शवदिति । वेगरहिते घटे व्यभिचारवारणाय जातित्वादिति । तादृशगुरुत्वसामानाधिकरण्येन सत्तायां साध्यसिद्धिः । वेगज इति । वेगवतः कपालादिनारब्धे घटादौ वेगजवेगो बोध्यः । कर्मासमवायिकारणवृत्तित्वेनार्थान्तरवारणाय वेगेति । उद्देश्यसिद्धये असमवायीति । घटत्वादौ व्यभिचारवारणाय वेगेति । वेगासमवायिकारणत्वरहितवेगवृत्तिता । वेगत्वादौ व्यभिचारवारणाय जातित्वादिति । सत्तायां वेगजन्यकर्मवृत्तित्वेन साध्यसिद्धिः । कर्मेति । वेगजन्यवेगवृत्तित्वेनार्थान्तरवारणाय कर्मेति । उद्देश्यसिद्धये असमवायीति । घटत्वादौ व्यभिचारवारणाय वेगेति । वेगासमवायिकारणकवेगत्वे व्यभिचारवारणाय जातित्वादिति । ननु वेगे वेगासमवायिकारणत्वावच्छेदकमसमवायिकारणतावच्छेदकञ्च जातिद्वयमस्ति । तथा चानुमानद्वये व्यभिचार इति चेन्न; तत्रोपाध्योरेव कारणतावच्छेदकत्वे जात्योर्मानाभावात् । वेगजन्यत्वकर्मजन्यत्वावच्छिन्नेति विशेषणमिति वेगत्वाव्याप्यवेगवृत्तिजातित्वस्य हेतुत्वाद्वा ।

[अ. टी.] [13]सत्तादिना वेगसजातीयत्वं द्रव्यादेरप्यस्तीति गुणत्वावान्तरजात्येत्युक्तम् । वेगः स्थितिस्थापको भावना चेति त्रेधा संस्कारः । क्रिया [14]असमवायिकारणमिति विग्रहः । क्रियासमवायिकारणजातीयो वेग इत्युक्ते [15]संयोगे व्यभिचारः स्यादत

1 गुणवेगसजातीयेति च. 2 इत्युक्तमिति च. 3 इत आरभ्य तेन रूपेणेत्यन्तो भागो नास्ति च पुस्तके. 4 अपीत्यनन्तरम् अतोऽत्यन्तान्तम् इति च. 5 कारणेति नास्ति छ पुस्तके. 6 तत्सजातीय इति च. 7 पतनक्रियाभिन्नक्रियेति च. 8 इत आरभ्य पङ्क्तिद्वयं नास्ति च पुस्तके. 9 घटत्वादीति छ. 10 कारणत्वेति च 11 कारणतावच्छेदकत्व इति च. 12 'वेगेत्यारभ्य विशेषणमितीत्यन्तं नास्ति छ पुस्तके. 13 सत्वादिनेति झ. 14 कारणं यस्य स इति ट. 15 संयोगादाविति ज, ट.

एकद्रव्यपदम्। क्रियासमवायिकारणैकद्रव्यमात्रनिष्ठेन वेगेन सत्तागुणत्वाभ्यां सजातीयरूपादौ व्यभिचारवारणाय अत्यन्तपदम्। गुरुत्वान्यत्वे सतीति ज्ञेयम्। दीपत्वे सत्येकद्रव्यसमानाधिकरणमित्युक्ते रूपादिसमानाधिकरणत्वेन सिद्धसाधनता स्यादतः क्रियासमवायिकारणपदम्। संयोगादिना समानाधिकरणत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थमेकद्रव्यपदम्। जातित्वमात्रत्वे व्यभिचरतीति स्पर्शवत्पदम्। एवं प्रमाणबलादेवंविधगुणसामानाधिकरण्ये दीपत्वस्य सिद्धे दीपोऽगुरुः पतनाधारत्वात्संमतवदिति गुरुत्वसामानाधिकरण्यप्रतिषेधे परिशेषाद्वेगसिद्धिः। सत्ताया गुरुत्वासमवायिकारणकपतनक्रियां प्रत्यसमवायिकारणगुरुत्वसमानाधिकरणत्वेनोक्तसाध्यवत्त्वं। वेगो वेगवद्भिः पूर्वपूर्वजलावयविभिरारभ्यमाणेषु कारणवेगपूर्वको ज्ञातव्यः। सत्ताया वेगजन्यक्रियाविशेषवृत्तित्वेन साध्यवत्ता। रूपादौ व्यभिचारवारणार्थं वेगजातित्वादित्युक्तम्।

[बा. टी.] गुणत्वेति। घटनिवृत्तये अवान्तरेति। रूपनिवृत्तये गुणत्वेति। संयोगनिवृत्तये एकद्रव्येति। परत्वनिवृत्तये क्रियेति। क्रियया असमवायिकारणमिति विग्रहः। अव्याप्तिनिवारणाय सजातीयेति। घटनिवृत्तये अत्यन्तेति। वेगत्वेनेत्यर्थः। आत्मनिवृत्तये स्पर्शवदिति। पतनक्रिया समवायैकद्रव्यगुरुत्वसामानाधिकरण्येन दृष्टान्तसिद्धिः। घटनिवृत्तये वेगेति। वेगासमवायिकारणकर्मवृत्तित्वेन दृष्टान्तलाभः।

(स्थितिस्थापकः भावना च)

यावद्द्रव्यभावी[11] संस्कारः स्थितिस्थापकः[12]। सुवर्णं यावद्द्रव्यभावि, अतीन्द्रियवद्घनावयवत्वात्, सूचीवदिति तत्सिद्धिः[13]।

संस्कारः पुरुषगुणो भावना। संस्कारत्वं पुरुषगुणवृत्ति, [14]स्थितिस्थापकवेगजातित्वात् सत्तावदिति भावनासिद्धिः।

[ध. टी.] यावदिति। वेगभावनयोरतिव्याप्तिवारणाय व्यन्तम्। रूपादावतिव्याप्तिभङ्गाय[15] संस्कारत्वमनुक्तम्। सुवर्णमिति। आकाशद्वित्ववत्संयोगादिनार्थान्तरवारणाय व्यन्तम्[16]। रूपादिनार्थान्तरवारणाय घदन्तम्। द्रव्यत्वमात्रमत्र हेतुः। तेन न व्यर्थता[17]।

वेगादावतिव्याप्तिवारणाय पुरुषेति। सुखादावतिव्याप्तिनिरासाय संस्कार इति। संस्कारत्वमिति। वेगादिवृत्तित्वेनार्थान्तरवारणाय पुरुषगुणेति। घटत्वे

---

१ वारणार्थमिति ट. २ सतीति नास्ति ख, ट. ३ दीपत्वमेकद्रव्येति ज, ट. ४ एवमित्यारभ्य वेगसिद्धिरित्यन्तं नास्ति ट पुस्तके. ५ सम्प्रतिपन्नवदित्यर्थ इति ज, ट पुस्तकयोष्टिप्पणी. ६ पदमिदं नास्ति ज, ट. पुस्तकयोः. ७, ९ साध्यवत्त्वमिति दृष्टान्तसिद्धिरिति ट. ८ पूर्वपूर्वतरेति ट. १० रूपत्वादाविति ट. ११ भाविसंस्कार इति मु. १२ स्थितेति क, ख, ग. १३ तदिति नास्ति ग, घ पुस्तकयोः. १४ स्थितेति क, ख, ग. १५ वारणायेति घ. १६ इतः पदत्रयं नास्ति च पुस्तके. १७ सूच्या गुरुत्वेन साध्यवत्ता संस्कार इत्यधिकं घ पुस्तके.

व्यभिचारवारणाय वेगेति। वेगत्वे व्यभिचारवारणाय स्थितिस्थापकेति। स्थितिस्थापकत्वे व्यभिचारवारणाय वेगेति। वेगस्थितिस्थापकान्यतरत्वे व्यभिचारवारणाय जातित्वादिति। सुखादिवृत्तित्वेन सत्तायां साध्यसिद्धिः।

[अ. टी.] यावद्द्रव्यभावी रूपादिरपि भवतीति संस्कारपदम्। वेगभावनयोर्व्यवच्छेदार्थं यावद्द्रव्यभावीति। सुवर्णमतीन्द्रियवदित्युक्ते गगनादिसंयोगवत्त्वेन सिद्धसाधनता स्यादतो यावद्द्रव्यभाविग्रहणम्। यावद्द्रव्यभावि रूपादिमत्त्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थम् अतीन्द्रियवदित्युक्तम्। सूच्या गुरुत्वयोगात्साध्यवत्ता। पुरुषगुणो भावनेत्युक्ते बुध्यादावतिव्याप्तिः स्यादतस्संस्कारपदम्। वेगस्थितस्थापकयोर्व्यवच्छेदार्थं पुरुषगुणेत्युक्तम्। स्थितस्थापकत्ववेगत्वयोरेकैकत्र व्यभिचारवारणार्थं स्थितस्थापकवेगजातित्वादित्युक्तम्।

[या. टी.] वेगनिवृत्तये यावद्द्रव्येति। रूपनिवृत्तये संस्कार इति। सुवर्णमिति। ननु घनावयवत्वं किं गुर्ववयवत्वम्? निविडावयवत्वम् वा? आद्ये हेत्वसिद्धिः। न हि तेजसि गुर्ववयवत्वमस्ति। द्वितीयेऽपि किं बह्ववयत्वम्? अन्यद्वा? आद्ये प्रभायामनैकान्तः, बहुपदवैयर्थ्यञ्च व्यावर्त्याभावात्। द्वितीयेऽसम्भवः, निरूपयितुमशक्यत्वात्। किञ्च सूच्यास्तैजसत्वेनोक्तगुणाभावात् दृष्टान्तोऽपि साध्यविकल इत्यसङ्गतमिदमनुमानमिति चेत्—न; घनत्वं नाम द्रवत्वयोग्यत्वेऽपि घनोपलक्ष्यदनुद्भूतद्रवत्वम्, तथाभूता अवयवा यस्येति तथा, तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात्। तथाचेदमुक्तं भवति—द्रवावयवत्वयोग्यद्रवत्वादिति। न च सूचीवदिति दृष्टान्तोऽपि साध्यविकलः। सूचीनाम सूक्ष्मस्तीक्ष्णश्शलाकापरपर्यायो द्रव्यविशेषः। स च लोहविकारवत्पार्थिवद्रव्यविशेषविकारोऽपि सम्भवतीति स एवास्तु दृष्टान्त इति सर्वं सुस्थम्। दिक्संयोगनिवृत्तये यावद्द्रव्यभावीति। रूपनिवृत्तये अतीन्द्रियवदिति (?)। रूपनिवृत्तये पुरुषेति। सुखनिवारणाय संस्कार इति। संस्कारत्वमिति। घटत्वनिवृत्तये वेगेति। वेगत्वनिवृत्तये स्थितस्थापकेति। स्थितस्थापकनिवृत्तये वेगेति। इदं हि पुरुषगुणवृत्ति तदा भवेत् यदि कोऽपि संस्कारभेदः पुरुषगुणस्स्यादिति भावनासिद्धिः। दृष्टान्ते बुध्यादिवृत्तित्वेन सिद्धिः।

■

(धर्माधर्मौ)

अतीन्द्रियः पुरुषैकवृत्तिः सुखहेतुर्धर्मः।

अतीन्द्रियः पुरुषैकवृत्तिर्दुःखहेतुरधर्मः। तत्र प्रमाणम्—विमतं मूर्तद्रव्यचलनं पुरुषगुणकारितं, क्रियात्वात्, कलेबरचलनवदिति।

---

१ रूपादेरपि सम्भवतीति ज. २ इति दृष्टान्तासिद्धिरित्यधिकं ट पुस्तके. ३, ४, ५ स्थितीति ट.

[वि. टी.] अतीन्द्रिय इति। गुरुत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय सुखहेतुरिति। आत्ममनस्संयोगेऽतिव्याप्तिवारणाय पुरुषैकवृत्तिरिति। अतएव विषये नातिव्याप्तिः। विषयसाक्षात्कारेऽतिव्याप्तिवारणाय अतीन्द्रिय इति। सुखासाधारणकारणत्वं धर्मत्वं वा धर्मस्य लक्षणान्तरमूह्यम्।

दुःखहेतुरिति। इदं विशेषणं भावनादावतिव्याप्तिनिरासाय। द्वेषसाक्षात्कारेऽतिव्याप्तिनिरासार्थं अतीन्द्रिय इति। अतीन्द्रियविषये ज्ञायमानतया दुःखहेतावतिव्याप्तिनिरासाय पुरुषवृत्तित्वम्। आत्ममनस्संयोगेऽतिव्याप्तिनिरासाय एकेति। दुःखासाधारणकारणत्वं वाधर्मत्वमिति लक्षणान्तरमूह्यम्। विमतमिति। स्पर्शवद्वेगवद्द्रव्यसंयोगाद्यजन्यचलनमित्यर्थः। अत एव न पक्षे द्रव्यपदवैयर्थ्यम्। न वा मूर्तपदवैयर्थ्यम्। प्रयत्नासाधारणकारणत्वरहितचलनस्यैव पक्षत्वात्। ईश्वरगुणकारितत्वेनार्थान्तरवारणाय पुरुषपदं जीवपरम्। प्रयत्नकारितत्वेन कलेवरचलनस्य दृष्टान्तता।

[अ. टी.] अतीन्द्रियो धर्म इत्युक्ते गुरुत्वादौ व्यभिचारस्स्यात् अतः पुरुषपदम्। आत्ममनस्संयोगेऽतिव्याप्तिनिरासार्थम् एकपदम्। आत्मनिष्ठसंस्कारे व्यभिचारवारणाय सुखहेतुरित्युक्तम्।

सुखहेतुकदलीफलादिव्यवच्छेदार्थं पुरुषवृत्तिपदम्। तथापीष्टवस्तुसाक्षात्कारे व्यभिचारस्स्यादत उक्तम् अतीन्द्रिय इति। धर्मेऽतिव्याप्तिनिरासाय दुःखहेतुपदम्। अनिष्टवस्तुतत्साक्षात्कारयोर्व्यावर्तनाय पुरुषवृत्त्यतीन्द्रियपदे। मूर्तद्रव्यं वाय्वादि। तस्यानुकूल्यप्रातिकूल्याभ्यां चलनम्। ईशगुणकारितत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासाय पुरुषपदम्। शरीरचलनं पुरुषगुणप्रयत्नकारितम्।

[वा. टी.] अतीन्द्रिय इति। आत्ममनस्संयोगनिवारणाय पुरुषैकवृत्तिरिति। प्रयत्ननिवारणाय अतीन्द्रिय इति। भावनानिवारणाय सुखहेतुरिति। धर्मनिवारणाय दुःखेति। विमतमिति। ईशगुणकारितत्वेन सिद्धसाधननिवृत्तये पुरुषेति। पुरुषश्चात्र क्षेत्रज्ञः। दृष्टान्ते प्रयत्नेन सिद्धिः। पक्षेऽनुपपत्त्यादृष्टसिद्धिः।

(शब्दलक्षणम्, तस्यानित्यत्वं गुणत्वञ्च)

श्रोत्रैकग्राह्यजातिमान् शब्दः। सोऽनित्यः, महाभूतविशेषगुणत्वात्, घटरूपवदित्यनित्यत्वसिद्धिस्तस्य। शब्दो गुणः कर्मान्यत्वे सति सामान्यैकाश्रयत्वात् रूपवदिति नासिद्धो हेतुः।

---

१ वारणायेति घ. २ ज्ञायमानेति घ. ३ उक्तमिति घ. ४ कारणत्वमधर्मस्येति छ. ५ इदं पदत्रयं नास्ति छ पुस्तके. ६ पदमिति ट. ७ मूर्तत्वं वाय्वादीति ट. ८ स्खलनमिति झ. ९ त्वेचेति ट. १० पदेति झ. ११ तत्त्वेनेति नास्ति क पुस्तके.

[ब. टी.] **श्रोत्रेति** । चक्षुर्मात्रग्राह्यजातिमति रूपेऽतिव्याप्तिवारणाय **श्रोत्रेति** । श्रोत्रग्राह्यगुणत्वादिमति रूपादावतिव्याप्तिवारणाय **एकेति** । श्रोत्रग्राह्यशब्दवति गगनेऽतिव्याप्तिवारणाय **जातिपदम्** । श्रोत्रग्राह्ये शब्देऽव्याप्तिवारणाय **जातिमानिति** । **स इति** । जलपरमाणुरूपे व्यभिचारवारणाय **महेति** । ईश्वरज्ञाने व्यभिचारवारणाय **भूतेति** । नित्यपरिमाणे व्यभिचारवारणाय **विशेषेति** । **शब्द इति** । कर्मणि व्यभिचारवारणाय **सत्यन्तम्** । सामान्यादौ व्यभिचारवारणाय **सामान्याश्रयत्वम्** । द्रव्ये व्यभिचारनिरासाय **एकेति** । समवायसम्बन्धेन जातिमानाश्रयत्वमिति विशेष्यार्थः । तेन सम्बन्धान्तरेणाभिधेयत्वादिसत्त्वेऽपि न क्षतिः । **नासिद्ध इति** । महाभूतविशेषगुणत्वादिति हेतुर्नासिद्ध इत्यर्थः । शब्दस्य विशेषगुणत्वमनुमानान्तरसिद्धमेव ।

[अ. टी.] द्रव्यादिव्यवच्छेदार्थं **श्रोत्रग्राह्यजातिमानित्युक्तम्** । श्रोत्रग्राह्यसत्तायोगी द्रव्यादिरपि, अत **एकपदम्** । विशेषगुणत्वादित्युक्त ईश्वरप्रयत्नादौ व्यभिचारस्स्यादतो **महाभूतपदम्** । महाभूतशब्दोऽत्रान्तोद्भूतत्वमैन्द्रियकत्वं द्योतयतीति न जलपरमाण्वादिविशेषगुणेषु व्यभिचार इति द्रष्टव्यम् । ननु शब्दस्य गुणत्वमेवासिद्धम्, दूरत एव विशेषगुणत्वम् । तत्राह—**शब्दो गुण इति** । सामान्यादौ व्यभिचारवारणाय **सामान्याश्रयत्वादित्युक्तम्** । तर्हि द्रव्ये व्यभिचारस्स्यादत उक्तम् **एकेति** । तथापि कर्मणि व्यभिचारस्स्यादतः **कर्मान्यत्वपदम्** ।

[वा. टी.] **श्रोत्रेति** । रूपनिवृत्तये **श्रोत्रग्राह्येति** । श्रोत्रग्राह्यसत्ताजातिमति घटेऽतिव्याप्तिपरिहाराय **एकेति** । शब्दत्वनिवृत्तये **जातीति** । **सोऽनित्य इति** । गगनपरिमाणनिवृत्तये **विशेष इति** । आप्याणुरूपनिवृत्तये **महाभूतेति** । महाभूतं महत्त्वाधिकारं भूतमित्यर्थः । ननु गुणत्वमेवासिद्धं दूरे विशेषगुणत्वमत आह—**शब्दो गुण इति** । स्पष्टम् । विशेषगुणत्वञ्च नियमेनाश्रयोपलम्भमन्तरेणोपलभ्यमानत्वाद्द्रष्टव्यम् ।

■

(शब्दस्य नित्यत्वशङ्का तत्परिहारश्च)

शब्दो नित्यः, अपाकजनित्यभूतविशेषगुणत्वात्, सलिलपरमाणुरूपवदित्यन्वयव्यतिरेकिणा सत्प्रतिपक्ष इति चेत्—न; अस्य दूषणस्य वचनीयत्वाभावादपसिद्धान्तात् । किञ्च कोऽयं व्यतिरेकोऽस्य हेतोः । किं विपक्षेऽभावोऽन्यो वा ? नाद्यः, अपसिद्धान्तप्रसङ्गात् । अन्यश्चेद्विविच्य वाच्यः । दृश्ये प्रतियोगिनि हेतौ स्मर्यमाणे विपक्षोपलम्भः, ततो व्यावृत्तिरिति चेत्—न; अनुभूयमाने तस्मिन् विपक्षे पश्यतोऽयं हेतुर्न स्यात् ।

---

१ अनुमानान्तरादिति घ. २ योगिद्रव्यादपीति ज, ट. ३ शब्दोऽत्रान्तो भूतत्वमिति ख. ४ धारणार्थमिति ज, ट. ५ इत्यत इति ज, ट. ६ अन्यत्वे सतीति विशेषणमिति ट. ७ वचनायेति मु. ८ अपसिद्धान्त इति क. ९ किञ्चेति नास्ति क पुस्तके. १० हेतोरिति घ.

ततोऽननुभूयमाने तस्मिन् विपक्षोपलम्भः, ततो व्यावृत्तिरिति चेत्-न; प्रमेयत्वादीनां गमकत्वप्रसङ्गादनैकान्तिकोच्छेदप्रसङ्गात्, अनुमितानुमानोच्छेदप्रसङ्गाच्च। ततो व्यतिरेकासिद्धिः। विपक्षे हेतुविशेषणे च दूषणमिदमूह्यम्। तस्मात्पूर्वो हेतुरेव। शब्दस्य द्रव्यत्वसाधकं प्रमाणमप्रमाणम्। निरवयवेन्द्रियग्राह्यत्वं साक्षादिन्द्रियसम्बन्धेन प्रतीयमानत्वञ्च व्यर्थविशेषणं मन्तव्यम्।

[व. टी.] शब्द इति। वर्णात्मकश्शब्द इत्यर्थः। तेन न ध्वनिमादाय बाधः। वर्णपदवाच्यं रूपमादाय बाधं वारयितुं शब्दपदम्। पृथिवीपरमाणुरूपादौ व्यभिचारवारणाय अपाकजेति। नित्यभूतनिष्ठद्वित्वादौ व्यभिचारवारणाय विशेषेति। घटादिरूपादौ व्यभिचारवारणाय नित्येति। सुखादौ व्यभिचारवारणाय भूतेति। नित्यस्य भूतस्य गुणः, न तु नित्यो गुणः, तथा सति साध्याविशिष्टापातात्। वचनीयत्वेति। भवदनुमानं यद्यधिकबलं तर्हि बाधकमेव। यदि न्यूनबलं तदा बाध्यमेव। समबलता तु वक्तुमशक्या। अस्मदनुमानेऽनुकूलतर्कस्योपलम्भः। शब्दो नष्टः कोलाहल इत्यादिप्रतीतिर्न स्यादिति प्रसङ्गलक्षणस्य विद्यमानत्वेनाधिकबलत्वात्। भवदनुमानस्यानुकूलतर्काभावात्। प्रतिकूलतर्कत्वे हीनबलत्वात् प्रतिपक्षत्वाभिमतदूषणस्य वचनानर्हत्वादित्यर्थः। ननु हीनबलेन सत्प्रतिपक्षतात्वमित्यत आह अपसिद्धान्तादिति। यद्वा सत्प्रतिपक्षमनङ्गीकुर्वाणं प्रत्याह अस्येति। ननु मद्दर्शने यद्यपि सत्प्रतिपक्षो दोषत्वेन न प्रतिपादितस्तथापि, अधुना मयैवोद्भाव्यत इत्यत आह अपसिद्धान्तादिति। यद्वा त्वया शब्दस्य द्रव्यत्वमङ्गीक्रियते न तु गुणत्वमित्यन्यतरासिद्धेन कथं सत्प्रतिपक्षानुमानमित्यत आह अस्येति। ननु मयैवेदानीं गुणत्वं स्वीकार्यं शब्दस्येति चेत्-न; अपसिद्धान्तादिति। यद्वा न तु शब्दस्य धारया नित्यधारया नित्यत्वं त्वया यद्यपि मन्यते, तथापि न ध्वंसाप्रतियोगित्वलक्षणं नित्यत्वमित्याह अस्येति। ननु मया मन्यत एव ध्वंसप्रतियोगित्वलक्षणं नित्यत्वमिति चेत्-न; अपसिद्धान्तादिति। नन्वहं ध्वंसाप्रतियोगित्ववादी शब्दस्य गुणत्ववादी च, सत्प्रतिपक्षस्य दूषणत्ववादी च। ममापि हेतौ यदि शब्दो नित्यो न स्यात्तर्हि स एवायं गकार इति प्रत्यभिज्ञायमानो न स्यादित्यनुकूलतर्कोऽस्तीत्यत आह किञ्चेति। अन्वयव्यतिरेकी भवतोक्तस्तत्र को वायं व्यतिरेक इत्यर्थः। अन्यो वेति। अधिकरणतज्ज्ञानवैधर्म्यतत्कालसम्बन्धपृथक्त्वान्यतम इत्यर्थः। अपसिद्धान्तेति। भवतो मतेऽतिरिक्तस्याभावस्याभावादिति भावः। यत्तु पार्थिवपरमाणुनिष्ठानादिश्यामिकायां पाकजन्यायां पाकनिवर्त्यायां साध्याभावसत्वेऽपि हेत्वभावाभावाद्व्यतिरेकस्योपसंहर्तुमशक्यत्वात्, व्याप्तिग्रहार्थञ्च तत्र हेत्वभा-

---

१ मेयेति क, ग, घ. २ जनकत्वेति मुं. ३ अनैकान्तिकत्वेति मु. ४ प्रसङ्गाच्चेति मु. ५ चेति नास्ति क. ६ अप्रमाणमिति नास्ति ग. ७ सम्बन्धत्वमिति क. ८ सदेति घ. ९ आदीति नास्ति घ. १० अनिष्टप्रसङ्गेति घ. ११ इतीति नास्ति च पुस्तके. १२ विपयो नेति घ.

याङ्गीकारेऽपसिद्धान्तादित्यर्थ इति, तन्न; पृथिवीपरमाणुनिष्ठानादिश्यामिकायां पाकाजन्यायां प्रमाणाभावात्, तस्या अनादिभावत्वे नाशानुपपत्तेश्च। न च तत्र समानाधिकरणं रूपान्तरमसमवायिकारणमिति वाच्यम्। रूपस्य स्वसमानाधिकरणरूपाजनकत्वनियमात्। तस्माद्यत्किञ्चिदेतत्। विविच्येति। स च विविच्य वक्तुमशक्य इत्यर्थः। प्रतियोगिनि बुद्धिस्थेऽधिकरणज्ञानमभाव इति मतमादाय शङ्कते दृश्ये इति। दृश्यप्रमाणयोग्यो यः प्रतियोगिरूपो हेतुः तस्मिन् स्मर्यमाणे यद्विपक्षज्ञानं तदेव विपक्षे, हेतोरभाव इत्यर्थः। संसर्गाभावस्तु योग्यप्रतियोगिक एव योग्य इति कृत्वा दृश्य इत्युक्तम्। यद्यप्यपाकजनित्यभूतविशेषगुणत्वमतीन्द्रियं, तथापि प्रकृतप्रतियोगिनः प्रामाणिकत्वद्योतनाय दृश्य इत्युक्तम्। अप्रमितप्रतियोगिकस्याभावात्। यद्वा स्मरणं प्रति पूर्वज्ञानं कारणं तद्व्यतिरेकेण कथं हेतोः स्मर्यमाणत्वमित्यत उक्तवान् दृश्य इति। पूर्वज्ञात इत्यर्थः। हेतोरज्ञानदशायां विपक्षोपलम्भस्य हेत्वभावत्वं वारयितुं स्मर्यमाण इति। केवलस्य स्मर्यमाणस्य हेतोर्हेत्वभावत्वं वारयितुं विपक्षेति। केवलहेतौ स्मर्यमाणे ज्ञायमाने च विपक्षे हेत्वभावत्वं वारयितुं उपलम्भ इति। ननु विपक्षस्य हेत्वभावत्वे को दोष इति चेत्—न; घटे हेत्वभाव इत्याधाराधेयभावप्रतीत्यभावप्रसङ्गः। न चौपचारिक आधाराधेयभाव इति वाच्यम्। मुख्यत्वे सम्भवति तदयोगात्। हेतौ स्मर्यमाणत्वविशेषणप्रयोज- [illegible] भावमात्रं व्यवह्रियेत। न हि व्यवहर्तव्यज्ञाने [illegible] भावः। दूषयति अननुभूयमान इति। पश्यत इति। हेतुमनुभवतः प्रमातुरथवा हेतुमनुभवतः प्रमातृन् प्रति सद्धेतुर्न स्यात्। अयं निगर्वः। स्मर्यमाण इति। विशेषणमहिम्ना हेतोरनुभूयमानत्वदशायां विपक्षेऽभावाभावात् व्यभिचारप्रसङ्ग इति। विपक्षं पश्यत इति पाठे तस्मिन् हेताविल्यर्थः। तत इति। पूर्वदूषणपरिहारार्थं पर्युदासलक्षणया अनुभूयमानसदृशे ज्ञायमान इति यावदित्यर्थः। एवं हेतोरनुभवदशायामपि हेतुत्वाभावः प्राप्तः। प्रमेयत्वादीनामिति। अनित्यत्वादिसाधकप्रमेयत्वादिहेतूनां व्यभिचारिणामपि ज्ञानदशायां विपक्षेऽभावप्रसङ्गेन सद्धेतुत्वप्रसङ्गाद्व्यभिचारोच्छेदप्रसङ्गादित्यर्थः। ननु भवतु व्यभिचारोच्छेदप्रसङ्ग इत्यत आह—अनुमितेति। उपधिनानुमितेन व्यभिचारेणासाधकतानुमानोच्छेदप्रसङ्गादित्यर्थः। केवलान्वयित्वभङ्गप्रसङ्गोऽपि दोषो बोध्यः। ननु केवलान्वयित्वं प्रतियोग्यधिकरणभिन्नाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं, तच्चाक्षतमेव। न च व्यभिचारोच्छेदोऽपि, स्वस्याविद्यमानत्वेऽपि साध्यात्यन्ताभाववद्गामित्वस्य सत्वादिति चेत्—मैवम्; भवतः प्रसङ्गाभावयोरेकावच्छेदेनैकत्र वृत्तौ विरोधस्याप्युच्छेदापत्तेः, गोत्वाश्वत्वविरोधस्याप्युच्छेदापत्तेः। गोत्वाश्वत्वविरोधस्य गोत्वाश्वत्वसमानाधिकरणगो-

१ रूपान्तरसमवायीति च. २ तत्र विपक्ष इति च. ३ सति तदिति च. ४ व्यवह्रियते इति च. ५ अपेक्षाभाव इति छ. ६ प्रत्ययमिति च. ७ एवमित्यारभ्य प्रसङ्गादित्यर्थ इत्यन्तो भागो नास्ति छ. पुस्तके. ८ एकवृत्ताविति च. ९ पचेरिति च.

त्वाश्वत्वात्यन्ताभावनिष्ठप्रतियोगिनिरूपितविरोधोपजीवकत्वादिति दिक्। उपसंहरति तत इति। स्वदर्शनमाश्रित्य भवता व्यभिचारादिदोषग्रासेन व्यतिरेको निरूपयितुं न शक्यत इत्यर्थः। ननु प्रतियोगिनि बुद्धिस्थे केवलाधिकरणज्ञानमभावः, नच प्रमेयत्वाधिकरणं केवलं भवति। तथाच न व्यभिचाराद्युच्छेद इत्यत आह विपक्ष इति। कैवल्यं हि हेतुमदधिकरणभिन्नाधिकरणत्वं विपक्षस्य वाच्यम्। एवञ्च भेदनिरूपिततया हेतुरूपे विशेषणे देये इदमेव नित्यत्वसाधकमवदनुमानस्य प्रतिकूलतर्कानुकूलतर्काभावाभ्यां न्यूनबलत्वलक्षणं दूषणं बोध्यमित्यर्थः। सद्धेतोः सद्धेतुत्वमुपसंहरति तस्मादिति। दूषणस्य परिहृतत्वात्। पूर्व एव शब्दानित्यत्वसाधक एव सद्धेतुरित्यर्थः। अन्ये तु–तत इत्युपलम्भविशिष्टाद्विपक्षाद्व्यावृत्तिः हेतोस्स व्यतिरेकः। नानुभूयमान इति। अनुभूयमाने विपक्षेऽधिकरणे हेतुं पश्यतोऽयमन्वयव्यतिरेकी हेतुर्न स्यात्, व्यतिरेकासम्भवात्। अयं दोषस्तु यथा कदाचित् घटवत्तया प्रमिते भूतले घटाभावः प्रमा, तथा हेतुमत्तया प्रमिते विपक्षे हेत्वभावः प्रमेति यदि विवक्षितं, तदा बोध्यः। ननु यत्र क्वचित्प्रमितस्य हेतोः प्रमिते विपक्षेऽभावो वाच्य इत्यत आह ततोऽननुभूयमान इति। यतो विपक्षनिष्ठतया हेतोरनुभूयमानत्वे वक्तव्ये उक्तदोषः, अतो विपक्षानिष्ठतयानुभूयमाने तस्मिन् हेतौ केवलविपक्षोपलम्भस्सर्वकाले। ततो व्यावृत्तिर्हेतोर्व्यतिरेक इत्यर्थः। यत्र हेतुर्वर्तते तद्वृत्तित्वावच्छिन्नो हेतुस्समारोप्य निषिध्यत इत्यभिमतं तत्राह नेति। अनित्यत्वादिसाधकप्रमेयत्वस्य सपक्षवृत्तित्वावच्छिन्नस्य विपक्ष आरोपपूर्वकनिषेधावगमसम्भवेन व्यभिचाराभावप्रसङ्गादित्यर्थः। किञ्च यत्र प्रतिज्ञाद्यन्यतमावयवज्ञानेन हेतोरवगतिः, तत्र वाचनिकविपक्षोपलम्भाभावादुक्तरूपव्यतिरेकासिद्धौ अनुमितानुमानं न स्यादित्याह अनुमितेति। यद्वा व्यतिरेकानिरूपणादेवानुमितानुमानोच्छेदप्रसङ्गो बोध्यः, गुरुमतेऽभावासम्भवात्। नन्वेवमभावखण्डनेऽतिप्रसक्तिरित्यत आह विपक्ष इति। मुख्यो दोषो व्यतिरेकासम्भव एव। इदन्तु दूषणं विपक्षे हेतुविशेषणे सत्यूह्यमिति व्याचक्षुः, तन्मन्दम्; उदक्षरत्वात्, सपक्षवृत्तित्वावच्छिन्नेत्यादेरध्याहाराच्च। शब्दस्येति। निरवयवेन्द्रियग्राह्यत्वं यच्छब्दस्य द्रव्यत्वसाधकं प्रमाणम्, यच्च साक्षादिन्द्रियसम्बन्धेन प्रमाणम्, तदप्रमाणम्। तथा हि–निरवयवेन्द्रियग्राह्यत्वं सुखादौ व्यभिचारि, द्वितीयं साधनं ध्वनौ तत्प्रागभावादौ च व्यभिचारि, गुणत्वसाधनेन विरुद्धञ्च। यदि निरवयवेन्द्रियग्राह्यत्वे सति साक्षादिन्द्रियसम्बन्धेन प्रतीयमानत्वं मिलितं हेतुः, तदा व्यर्थविशेषणत्वं बोध्यम्। रूपादौ व्यभिचारवारणाय निरवयवेति। निरवयव आत्मा तज्जन्यग्रहविषयरूपादौ व्यभिचारवारणाय इन्द्रियेति। न च मनोग्राह्यरूपादौ तदवस्थो व्यभिचारः, लौकिकप्रत्यासत्त्या निरवयवेन्द्रियग्राह्यत्वस्य विवक्षितत्वात्। द्वितीयहेतौ रूपादौ व्यभिचारवारणाय साक्षादिति। अनुमानेन साक्षात्स-

१ यत्तत्त्वमिति च. २ निरूपकतयेति घ. ३ हेतोरनुभूयमानेति छ. ४ विपक्षनिष्ठतयेति छ. ५ तत्रेति च.

म्यन्धेन प्रतीयमाने रूपादौ व्यभिचारवारणाय इन्द्रियेति । अत्रापि लौकिकप्रत्यासत्तिर्बोध्या । धर्मधर्मिणोरभेदवादिमते साक्षात्पदस्यापि व्यर्थता बोध्या ।

[अ. टी.] तथापि शब्दानित्यत्वानुमानं न युक्तमिति शङ्कते—**शब्दो नित्य इति** । विशेषगुणत्वादित्युक्ते बुध्यादौ व्यभिचारस्स्यादत उक्तम् मूतपदम् । घटरूपादौ व्यभिचारवारणार्थं **नित्यपदम्** । नित्यमूतविशेषगुणत्वादित्युक्तेऽपि पार्थिवपरमाणुरूपादौ व्यभिचारस्ततः **अपाकजपदम्** । प्रतिपक्षानुमानस्य दौर्बल्यान्नैवमित्याह **नास्त्येति** । स्वयूथ्यापसिद्धान्तापादकत्वादवचनीयोऽयं प्रयोग इत्यर्थः । तथापि निर्दुष्टप्रयोगविरोधे कथं पूर्वस्य सद्धेतुत्वं तत्राह—**कोऽयं व्यतिरेक इति** । यत्रानित्यत्वं तत्रापाकजनित्यमूतविशेषगुणत्वं नास्तीति व्यतिरेकस्य शब्दानित्यत्ववादिना वक्तुमशक्यत्वात् । नित्यत्वाङ्गीकारेऽपि पार्थिवपरमाणुगतानादिश्यामत्वे पाकजेनिवर्त्ये साध्याभावेऽपि साधनाभावाव्यतिरेकाभावात् गुरुमते चाभावाभावात् व्यतिरेकार्थं तदङ्गीकारेऽपसिद्धान्तापातान्नाद्य इत्याह **नाद्य इति** । अन्यस्य व्यतिरेकस्याप्रसिद्धत्वान्नान्त्योऽपि युक्त इत्याह **अन्त्यश्चेदिति** । परः प्रकारान्तरं सम्पादयति **दृश्ये प्रतियोगिनीति** । दृश्ये प्रमाणदर्शनयोग्ये हेतुलक्षणप्रतियोगिनि स्मर्यमाणे सति यो विपक्षोपलम्भस्तद्विशिष्टाद्विपक्षात्ततो या व्यावृत्तिर्हेतोः स व्यतिरेकः । प्रमाणयोग्यस्य हेतोः प्रमाणयोग्यविपक्षाद्व्यावृत्तिर्हेतोर्व्यतिरेक इति संक्षेपः ।

अत्र वक्तव्यम्—किं यथा भूतले प्रमाणदृष्टस्य घटस्य कदाचिदभावग्रहः तथा विपक्षे प्रमाणगृहीतस्य हेतोस्तत्राभावः प्रमा ? किं वा गगने प्रमाणगृहीतस्य सूर्यादेर्भूसावभाववदन्यत्र प्रमितस्य हेतोरभावग्रहो विपक्षे ? तत्र न प्रथम इत्याह—**नानुभूयमान इति** । प्रमीयमाणे विपक्षे पश्यतो हेतुमिति शेषः । अभावासम्भवादयमन्वयव्यतिरेकी हेतुर्न स्यात् । द्वितीयमुत्थापयति—**ततोऽननुभूयमान इति** । यतोऽनुभूयमानत्वे उक्तदोषस्ततोऽननुभूयमाने तस्मिन् हेतौ केवलं विपक्षोपलम्भः सर्वकालं ततो व्यावृत्तिर्हेतोर्व्यतिरेक इत्यर्थः । तत्रापि वक्तव्यम्—यत्र हेतुर्वर्तते, तेन सहैव विपक्षे समारोपनिषेधाभ्यां व्यावृत्त्यवगमः, यथा भूतले सह नभसा चन्द्रोऽयमिति समारोपनिषेधाभ्यां तदभावावगतिः । किमेवमेतत्राह—**न मेयत्वादीनामिति** । विपक्षे सपक्षभ्रान्तौ तन्निषेधे प्रमेयत्वादिहेतोरुक्तव्यतिरेकसम्भवेन गमकत्वम् । ततः शब्दानित्यत्वादिसाधने प्रमेयत्वादिहेतोरनैकान्तिकहेत्वाभासत्वोच्छेदप्रसङ्ग इति भावः । किञ्च यत्र प्रतिज्ञाद्यन्यतमावयवदर्शनादनुमानमूह्यते, तत्र यांचनिकविपक्षोपलम्भाभावादुक्तव्यतिरेकासिद्धावनुमितानुमानभङ्गस्स्यादित्याह **अनुमितेति** । अथवा व्यतिरेकानिरूपणादेवानैकान्तानुमानोच्छेदो द्रष्टव्यः, गुरुमते व्यावृत्तेरस-

१ गुणत्वादिति ख. २ उक्तमिति नास्ति ज, ट पुस्तकयोः. ३ भूयस्येति ज, ट. ४ गतादिश्यामत्व इति ट. ५ पाकनिवर्त्येति ज, पाकानिवर्त्येति ट. ६ साधनाभावादिति ख. ७ यथास्थितमपि भ्रान्त्या पर इति ट. ८ सत इति नास्ति ट पुस्तके. ९ ग्रहणमिति ट. १० परपक्ष इति ट. ११ केवलेति ज, ट. १२ अन्वयव्यतिरेकाभ्यामित्यधिकं ट पुस्तके. १३ यथैवमिति ट. १४ भासोच्छेदेति ख. १५ अनैकान्त्यानुमितानुमानेति ट.

म्भवात् । नन्वेवं व्यतिरेकिखण्डनेऽतिप्रसङ्ग इत्यत आह **विपक्ष इति** । मुख्यं दूषणं शब्दनित्यत्ववादिनो गुरुमते च न व्यतिरेकलाभ इति पूर्वमेवोक्तम् । इदन्तु विपक्षे हेतुविशेषणे विपक्षोपलम्भस्ततो व्यावृत्तिरित्येवं सति दूषणमूह्यम् । बुद्धिविस्फारणाय च प्रसिद्धव्यतिरेकापलापासम्भवादिति भावः । यस्मात्प्रतिपक्षहेतुर्न सम्भवति स्वयूथ्यानुसारेण, न च शब्दनित्यत्वमतानुसारेण । अयं प्रयोगो युक्तः, गुरुमते व्यतिरेकानिरूपणात् । भाट्टैरशब्दस्य गुणत्वानङ्गीकारेणान्यतरासिद्धत्वात्,

वर्णात्मकाश्च ये शब्दा नित्यास्सर्वगताश्च ते ।
स्वयं द्रव्यतया ते हि न गुणाः कस्यचिन्मताः ॥

इत्युक्तत्वाच्च । अत उपसंहरति **तस्मादिति** । हेतुरेव सद्धेतुरेवेत्यर्थः । शब्दस्य गुणत्वे प्रमाणस्य दर्शितत्वात्तद्विरुद्धं द्रव्यत्वसाधनं साधनाभास इत्याह **शब्दस्येति** । नित्यः शब्दो निरवयवेन्द्रियग्राह्यत्वादात्मवदिति नित्यत्वप्रमाणं सुखादौ व्यभिचरति । शब्दो द्रव्यं साक्षादिन्द्रियसम्बन्धेन प्रतीयमानत्वाद्धटवदिति द्रव्यत्वसाधनम् । एतच्च गुणत्वसाधनविरुद्धम् । एवं शब्दस्य नित्यत्वद्रव्यत्वसाधकप्रयोगद्वये दूषणम् । ग्रन्थकारस्तु शब्दो द्रव्यं निरवयवेन्द्रियग्राह्यत्वे सति साक्षादिन्द्रियसम्बन्धेन प्रतीयमानत्वादित्येकं हेतुं कृत्वा निरवयवेन्द्रियग्राह्यत्वविशेषणस्य वैयर्थ्यमाह—**निरवयव इति** । लिङ्गसम्बन्धेन प्रतीयमानपरमाणुरूपादौ व्यभिचारवारणार्थमिन्द्रियपदम् । घटरूपादौ व्यभिचारवारणार्थं **साक्षात्पदम्** । एवमुक्ते व्यभिचाराभावाद्व्यर्थं विशेषणम् । द्रव्यत्वे प्रयोगद्वये च निरवयवेन्द्रियग्राह्यत्वं रूपादौ व्यभिचारावारकत्वाद्व्यर्थं विशेषणम् । गुणगुणिनोर्भेदाभेदवादे रूपादेर्द्रव्यत्वसम्भवात्साक्षादिति विशेषणम् । विपक्षाव्यावर्तकत्वाद्व्यर्थं कथञ्चिद्द्रष्टव्यम् ।

[बा. टी.] **शब्द इति** । संयोगनिवारणाय **विशेषेति** । सुखनिवृत्तये **भूतेति** । घटनिवारणाय **नित्येति** । पार्थिवपरमाणुरूपनिवृत्तये **अपाकजेति** । दूषयति **नास्येति** । हेतोर्विशेषणासिद्धत्वात् । दृश्यते हि वाताग्निसंयोगेनापि शब्दोत्पत्तिरिति । किञ्च कोऽयमित्याशङ्कते—किं नैयायिकः कश्चित्? गुरुपक्षी वा? नाद्य इत्याह **अपसिद्धान्तेति** । द्वितीयश्चेत्तत्राह **कोऽयमिति** । **अपसिद्धान्तेति** । स्वरूपातिरिक्ताभावस्यानङ्गीकारादिति भावः । द्वितीय आह—**अन्यश्चेदिति**...... । **दृश्य इति** । प्रमाणयोग्ये हेतौ प्रतियोगिनि स्मर्यमाणे यः प्रमाणयोग्यविपक्षोपलम्भः स तस्य हेतोः, ततो विपक्षे व्यतिरेक इति यावत् । तत्र किं हेतुसहितस्य विपक्षस्योपलम्भः, तद्रहितस्य वा? नाद्य इत्याह **अनुभूयेति** । हेतुमिति शेषः । प्रतीयमाने विपक्षे तत्र हेतुं पश्यतोऽनुभवतोऽयम् अन्वयव्यतिरेकी हेतुर्न स्यादिति योजना । द्वितीयमनुवदति **अननुभूयमान इति** । तत्रापि वक्तव्यम्—किं विपक्षे हेतौ सत्येव तदननुभवः? असति वा? नाद्य इत्याह **मेयत्वादीनामपीति** । अस्ति हि मेयत्वादीनामपि विपक्षेऽननुभवः, अनुभवकारणाभावाद्वा,

---

१ मुख्यं हीति ट. २ शब्दानित्यत्वेति ज, ट. ३ विस्मारणायेति ट. ४ वर्णागमनश्चेति ज, ट. ५ नित्यत्वे इति ग. ६ ग्राह्यत्वस्येति ट. ७, ८ व्युदासार्थमिति ज, ट. ९ नित्यत्वप्रयोगेति ट. १० भेदादेवेति ट.

प्रात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेन शब्दत्वान्यूनवृत्तित्वाभावात् । यद्वा गुणत्वव्याप्यजात्यव्याप्यशब्दवृत्तिजातिरस्य हेतुत्वात् । सत्तासंयोगासमवायिकारणके घटादावस्तीति दृष्टान्तसिद्धिः । द्वितीयसाध्येऽर्थान्तरवारणाय विभागेति । विभागस्यासमवायिकारणत्वसिद्धये असमवायीति द्वितीयहेतुः । पूर्ववद्विवक्षणीयविभागजविभागवृत्तित्वेन दृष्टान्तसिद्धिः । गुणत्वावान्तरेति । शब्दस्य गुणत्वजात्या सजातीयस्संयोगादिः । तज्जन्यवृत्तित्वेनार्थान्तरवारणार्थं गुणत्वावान्तरेति । शब्दसंयोगान्यतरत्वेन सजातीयसंयोगजन्यवृत्तित्वेनार्थान्तरं वारयितुं जात्या साजात्यमुक्तम् । हेतुः पूर्ववत् । रूपादिजन्यवृत्तित्वेन दृष्टान्तसङ्गतिः ।

इति प्रमाणमञ्जरीव्याख्याने गुणपदार्थस्समाप्तः ।

[अ. टी.] संयोगजो विभागजश्शब्दजश्चेति त्रिविधः शब्दः । संयोगोऽसमवायिकारणं यस्येति विग्रहः । रूपादौ व्यभिचारवारणाय शब्दजातित्वादित्युक्तम् । सत्तायाः सजातीयद्रव्यारम्यवृत्तित्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थम् अवान्तरजात्येत्युक्तम् । गुणत्वजात्या सजातीयसंयोगारम्यवृत्तित्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं गुणत्वावान्तरजात्येत्युक्तम् ।

इति प्रमाणमञ्जरीटिप्पणेऽद्वयारण्ययोगिविरचिते गुणपदार्थः ।

*

(कर्मणो लक्षणं तस्य प्रत्यक्षत्वञ्च)

एकद्रव्यविभागासमवायिकारणंसजातीयं कर्म । तत् प्रत्यक्षं, प्रमेयत्वात्, घटवदिति तस्य प्रत्यक्षत्वम् । घटकर्म, अस्मदादिप्रत्यक्षं, गुणान्यत्वे सति घटसमवेतत्वात्, सत्तावदित्यस्मदादिप्रत्यक्षम् ।

[व. टी.] एकेति । अन्यासज्यवृत्तिविभागासमवायिकारणवृत्त्यपरसामान्यवत्कर्मेत्यर्थः । विभागासमवायिकारणे विभागेऽतिव्याप्तिवारणाय एकद्रव्येति । रूपादावतिव्याप्तिं वारयितुं विभागेति । द्रव्येऽतिव्याप्तिभङ्गाय असमवायीति । सत्तामादाय तद्दोषं वारयितुम् अपरेति । विभागघटान्यतरत्वादिकमादाय दोषं वारयितुं सामान्येति । न च गुणत्वमादाय रूपादावतिव्याप्तिः, गुणत्वेतरजातेरुक्तत्वात् । यद्वा विभागासमवायिकारणतावच्छेदकजातिमदित्यर्थः । न चाविनश्यदवस्थकर्मत्वमसमवायिकारणतावच्छेदकम्, तच न सामान्यमित्यसम्भव इति वाच्यम्, किञ्चिद्विशेषणवज्जिनजातेरेवात्रोपाधित्वात् । अन्यतरत्वादिकन्तु नावच्छेदकं, गौरवात् अतिप्रसङ्गाच्च । वस्तुतस्तु-

१ वृत्तित्वस्येति घ. २ घटादावपीति च. ३ पदमिदं नास्ति घ पुस्तके. ४ रूपादिवृत्तित्वेनेति घ. ५ रूपत्वादाविति ज, ट. ६ वारणार्थमिति ज, ट. ७ सत्तयेति ज, ट. ८ निरासार्थमिति ज, ट. ९ टिप्पणके इति ट. १० कारणजातीयमिति ख. ११ गुरुत्वाम्यत्व इति ख, ग, घ. १२ प्रत्यक्षत्वमिति मु. १३ वृत्तिसत्तासाक्षाद्व्याप्यापरेति घ. १४ वारणायेति घ.

एकद्रव्यविभागासमवायिकारणतावच्छेदकवत्कर्म इत्येव लक्षणार्थः। तेन न व्यर्थता। न च विनश्यदवस्थकर्मणि अविनश्यदवस्थकर्मत्वस्य विभागासमवायिकारणतावच्छेदकस्याभावादव्याप्तिरिति वाच्यम्। अविनश्यदवस्थतादशायां तत्रापि तत्सत्त्वात्। यद्वा एकद्रव्यं यद्विभागासमवायिकारणं तदवृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत् कर्मेत्यर्थः। एकद्रव्यं कर्मेति वक्तव्ये परिमाणादावतिप्रसक्तिः, तन्निरासाय(?)परविशेषणम्। यत्तु केनचिदुक्तम्—केवलसंयोगजनके कर्मण्यव्याप्तिवारणाय सजातीयपदमिति, तन्न, संयोगजनके कर्मणि विभागजनकत्वस्यावश्यकत्वात् संयोगस्य पूर्वदेशविभागोत्तरकालीनत्वात्। तदिति। कर्मेत्यर्थः। न च परमाण्वादौ व्यभिचारः, तत्राप्यलौकिकप्रत्यक्षादिविषयत्वस्य प्रत्यक्षविषयमात्रस्यैव वा साध्यत्वात्। अतएवास्मदादिप्रत्यक्षमग्रे साधयिष्यति। विषयत्वादित्येव हेतुः, न तु प्रमाविषयत्वं हेतुः, व्यर्थविशेषणत्वात्। यद्वा—ज्ञानं द्वारीकृत्य साक्षात्सम्बन्धेन वर्तमानमेव हेतुः। यद्वा—उद्देश्यसिद्धये प्रत्यक्षप्रमाविषयत्वं साध्यम्, तेनासद्वैशिष्ट्ये व्यभिचारवारणाय प्रमाविषयत्वं हेतुः। ननु लौकिकप्रत्यक्षविषयत्वं न सिद्धमत आह, घटकर्मेति। अर्थान्तरवारणाय अस्मदादीति। नन्वस्मदादिना प्रमेयत्वादिना गृह्यत एवेत्यर्थान्तरमिति चेत्—न; लौकिकप्रत्यक्षविषयत्वस्य साध्यत्वात्। प्रत्यक्षत्वं जातिरिति न व्यर्थता। न त्विन्द्रियजन्यज्ञानता, येनेन्द्रियजन्यत्वभागवैयर्थ्यं स्यात्। यद्वा—लौकिकज्ञानविषयत्वमेव साध्यम्। यद्वा—अलौकिकप्रत्यासत्त्यजन्यजन्यज्ञानविषयत्वे साध्येऽनुमित्यादिनार्थान्तरं स्यात्, तदर्थं प्रत्यक्षविशेषणम्। यत्त्वात्ममनःसंयोगेन लौकिकप्रत्यासत्त्यानुमित्यादिर्जन्यत एवेति प्रत्यक्षत्वविशेषणमिति, तन्न, एवमप्यलौकिकप्रत्यक्षेणार्थान्तरापातात्, तस्याप्यात्ममनःसंयोगजन्यत्वात्। तस्माल्लक्षणेनैव लौकिकसन्निकर्षो लौकिकसन्निकर्षत्वेन कारणम्। तेनानुमित्यादौ न लौकिकता। यद्वा—इन्द्रियत्वेनेन्द्रियनिरूपितसंयोगादिः, तथानुमित्यादौ मनस्त्वेन मनोनिरूपितकारणं संयोगः। गुरुत्वादौ व्यभिचारं वारयितुं गुणान्यत्वे सतीति विशेषणम्। परमाणुसमवेतविशेषादौ दोषनिरासार्थं घटेति। साक्षात्समवायो विवक्षितः। तेन संयुक्तसमवायेन घटसमवेते विशेषादौ न व्यभिचारः। घटनिष्ठपरमाणुत्वात्यन्ताभावादौ व्यभिचारवारणं समवेतविशेषणेन। अत्र प्रत्यक्षयोग्यता साध्या, तेनाप्रत्यक्षविशिष्टकर्मणि न बाधः। एवं पटकर्मादावपि साध्यम्, गुणान्यत्वे सति पटसमवेतत्वादिर्हेतुः। प्रत्यक्षनिष्ठकर्ममात्रपक्षीकरणे, विशेषान्यत्वे सति गुणान्यत्वे सति प्रत्यक्षसमवेतत्वादिर्हेतुः।

[अ. टी.] निमित्तकारणसजातीयेश्वरप्रयत्नादावतिव्याप्तिनिरासार्थम् असमवायिपदम्। घटरूपाद्यसमवायिकारणतन्तुरूपादिव्यवच्छेदार्थं विभागपदम्। विभागासमवायिकारणविभागनिरासार्थम् एकद्रव्यपदम्। एकमेव द्रव्यमाश्रयो यस्य तदेकद्रव्यम्। कर्मत्युक्ते

१ न संयोगस्येति० घ. २ विषयत्वेति छ. ३ प्रत्यक्षत्वमिति घ. ४ वर्तमानं ज्ञानत्वमेवेति घ. ५ निरासायेति घ. ६ प्रकृत इति घ. ७ ज्ञानविषयत्वमिति च. ८ प्रत्यक्षत्वेति घ. ९ भास्मानसिद्धेत्यादावपीति घ. १० समवेतत्वेति घ. ११ विशेषेति घ. १२ गुणशतार्थमिति ज, ट.

म्भकत्वेन सकलकारणरूपसामग्र्यभावादिति[1] भावः । विकल्पेति । वक्ष्यमाणविकल्पेन सम्भवत्पक्षस्य क्षणिकत्वस्यानुपपत्तेरित्यर्थः । व्यावृत्ताविति । तत्र सत्त्वमस्ति क्षणिकत्वञ्च[2] नास्तीति व्यभिचारादित्यर्थः ।

ननु व्यावृत्तिरपोहो मया[3] न मन्यते, किन्तु भावान्तरमेव स[4] इति शङ्कते अथेति । व्यावृत्तावसत्यामिति । सकलसाध्यसाधनसङ्ग्राहकव्यावृत्तिरूपधर्माभावादिति भावः । वस्तुतस्तु हेतुमति क्वचित्क्षणिकत्वं व्यावर्तते न वा ? आद्यमाह व्यावृत्ताविति । द्वितीयं शङ्कते अथेति । समाधत्ते व्यावृत्तावसत्यामिति । क्षणिकत्वं[5] हि क्षणमात्रावस्थायित्वमात्रपदार्थोऽस्तु स्वपूर्वोत्तरक्षणयोर्भावस्य व्यावृत्तिः । व्यावृत्त्यनङ्गीकारे तद्घटितक्षणिकत्वस्य वक्तुमशक्यत्वेन व्याप्तिग्रहवैधुर्ये क्षणिकत्वसाधनत्वाभिमतानुमानस्याभावप्रसङ्गादित्यर्थः । किञ्च व्यावृत्त्यनङ्गीकारे भवदभिमतव्यतिरेकव्याप्तिभङ्गप्रसङ्गः[6] । भावभिन्ननित्याभावस्य स्वीकृतस्य परित्यागेऽपसिद्धान्तमाह अपसिद्धान्तेति । ननु भवत्वतिरिक्ता व्यावृत्तिरिति चेत्—न; तदा भवदभिमतनित्यव्यावृत्तावेव व्यभिचारात्, क्षणिकत्वाभावाधिकरणस्यैव स्थैर्यस्वीकारापत्तेश्च । साध्याप्रसिध्या व्याप्तिग्राहकप्रमाणाभावत्वेनेव चरमशब्द एव साध्यप्रसिद्धिरिति वाच्यम् । तस्यापि स्थिरत्वाङ्गीकारात् । न च क्षणिकत्वाप्रसिध्या कथं क्षणिकत्वनिषेध इति वाच्यम् । घटः स्वाव्यवहितोत्तरक्षणवर्तिध्वंसप्रतियोगी नेति निषेधशरीरस्वीकारात् । घटाव्यवहितोत्तरक्षणवर्तिध्वंसप्रतियोगित्वस्य प्रतियोगिनो घट ?........प्राङ्नष्टे वस्तुनि सिद्धेः[8] । सम्प्रतिपन्नवदिति[9] । सम्प्रतिपन्ना व्यावृत्तिः, स्वशब्देन कर्मणः[10] उक्तत्वेन कर्मोत्तरक्षणे वर्तमानो भावो वा सम्प्रतिपन्न इति निगर्वः ।

इति कर्मपदार्थः ।

[अ. टी.] कर्मणोऽसमवायिकारणत्वमुक्तं, तदाक्षिपति यत्सदिति । सन्तश्चामी भावा इति । द्रव्यादीनामपि क्षणिकत्वेन कारणत्वमाक्षिप्तम् । लब्धसत्ताकानां कारणानां मेलने सामग्री, ततः कार्यजननमित्यनेकक्षणस्थित्यपेक्षणात् । क्षणीभूते[11] कारणत्वासम्भव इत्यर्थः । क्षणिकत्वे लक्षणसाध्यानिर्वचनान्नैवमित्याह नेति । क्षणे भवतीति[12] क्षणभङ्गः । तत्स्वरूभवात् क्षणावस्थानसम्भवादित्यर्थः । व्यावृत्तिरपोहशब्दार्थभूतः, तस्य च व्याप्तिग्रहार्थक्रियाहेतुत्वात्सत्त्वमिति युक्ता तत्रानैकान्तिकता ।

अथ भावान्तरमेव भावान्तरापोहः[13], ततो नोक्तो दोष इति शङ्कते अथेति । इष्टहान्या परिहरति न व्यावृत्ताविति । स्वलक्षणं सर्वतो व्यावृत्तमसाधारणं भावरूपम्[15] । अनुमानाभावे तत्प्रमेयत्वेनेष्टक्षणिकत्वहानिरित्यर्थः । भावाद्भिन्नस्य निर्ध्वंसाभावस्य[16] स्वीकृत-

१ आरम्भकत्वे सति क्षणिकत्वेन सकलकारणसम्बन्धं रूपेनि छ. २ चेति नास्ति च पुस्तके. ३ मयेति नास्ति छ. ४ सेति च. ५ पङ्क्तिरियं नास्ति च पुस्तके. ६ प्रसङ्ग इति नास्ति च पुस्तके. ७ पदमिदं नास्ति च पुस्तके. ८ सिद्धिरिति च. ९ सम्प्रतिपन्नेति च. १० पदद्वयं नास्ति च पुस्तके. ११ क्षणिकत्वे इति ट. १२ भवति तिष्ठतीति ट. १३ भावान्तरेति नास्ति ट. १४ सत्यामिति ट. १५ स्वरूपमिति ज, ट. १६ पदमिदं नास्ति ट पुस्तके.

नित्यपरिमाणेऽतिव्याप्तिः स्यादतः **असमवायिकारणपदम्**। कारणरूपादिविभागपद-व्यवच्छेद्यं पूर्ववत्। केवलसंयोगजनके कर्मण्यतिव्याप्तिनिरासार्थं **सजातीयपदम्**। तत्र किं प्रमाणम्? प्रत्यक्षं कुतः? इत्यत आह **तत्प्रत्यक्षमिति**। तर्ह्यदृष्टादिवद्योगिप्रत्यक्षगम्यमेवेत्यत आह **घटकर्मेति**। परमाण्वादिसमवेतेषु विशेषेषु व्यभिचारवारणार्थं **घटपदम्**। घटसमवेतगुरुत्वादौ व्यभिचारवारणार्थं **गुणान्यत्वे सतीत्युक्तम्**।

[वा. टी.] गुणनिरूपणानन्तरं सामान्याधारतया कर्म लक्षयति-**एकद्रव्येति**। आद्यविभागनिराकरणाय **एकद्रव्येति**। विनश्यदवस्थकर्मण्यव्याप्तिनिराकरणाय **सजातीयमिति**। सजातीयत्वं जात्येति न घटादावतिव्याप्तिः। तथाच कर्मत्वयोगि कर्मेत्युक्तं भवति। **घटकर्मेति**। गुरुत्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय **गुणान्यत्वे सतीति**। ततो यच्चलतीति यत्प्रत्ययालम्बनं तत्कर्मेति सिद्धम्।

*

(कर्मणोऽसमवायिकारणत्वाभावशङ्का तत्समाधानञ्च)

यत् सत्, तत्क्षणिकम्, यथा जलधरः। सन्तश्चामी भावा इति क्षणद्वयस्थित्यभावादारम्भकत्वानुपपत्तिः कर्मण इति चेत्-न; विकल्पानुपपत्तेः। तथाहि-क्षणे भवः क्षणिकः, तस्य भावः क्षणिकत्वम्? किंवा क्षणादूर्ध्वं न तिष्ठतीति क्षणिकः, तस्य भावः क्षणिकत्वम्? आद्ये कल्पे सिद्धसाधनम्, स्थायित्वपक्षेऽपि तत्सम्भवात्। न द्वितीयः, व्यावृत्तावनैकान्तात्।

अथ भावाद्भिन्ना व्यावृत्तिर्नास्तीति चेत्-न; व्यावृत्तावसत्यां स्वलक्षणानां क्षणिकत्वेनाविनाभावस्याशक्यग्रहत्वादभ्युपगतस्यानुमानस्यासम्भवप्रसङ्गादपसिद्धान्तप्रसङ्गाच्च। तस्मात् सत्त्वं न क्षणिकत्वे प्रमाणम्। स्थायित्वे तु विप्रतिपन्नं कर्म, स्वोत्पत्तिक्षणेतरक्षणस्थं, सत्त्वात्, सम्प्रतिपन्नवदिति।

इति तार्किकभट्टकेसरिसर्वदेवसूरिविरचितायां
प्रमाणमञ्जर्यां कर्मपदार्थस्समाप्तः।

[ध. टी.] कर्मणः कारणान्तरेऽसम्बद्धस्योक्तासमवायिकारणत्वमाक्षिपति-**यदिति**। एतस्य मते उदाहरणसहित उपनय इत्यवयवद्वयम्। सत्त्वमर्थक्रियाकारित्वम्, जनकत्वमिति यावत्। सन्तश्चेत्युक्त्या द्रव्यादीनामपि क्षणिकत्वेन कारणत्वमाक्षिप्तम्। आर-

१ व्यवच्छेदार्थं विभागपदमिति ट. २ गम्येति नास्ति ङ पुस्तके. ३ पदमिदं नास्ति ज, ट पुस्तकयोः ४ गुरुत्वान्यत्व इति ट. ५ तथा त्विमिति क. ६ अपीति नास्ति क पुस्तके. ७ अभावप्रसङ्गादिति ख, ग, घ. ८ क्षणिकत्वे न साधनमिति मु, न व्यावृत्तावसत्यां स्वलक्षणानां क्षणिकत्वे प्रमाणमिति घ. ९ प्रमाणमिति मु. १० क्षणादन्यक्षणस्थमिति मु, क्षणेतरक्षणे सदिति क. ११ इति कर्मपदार्थ इति क, ख, ग, घ. १२ सरवन्त्विति घ.

म्भेकत्वेन सकलकारणरूपसामग्र्यभावादिति भावः । विकल्पेति । वक्ष्यमाणविकल्पेन सम्भवत्पक्षस्य क्षणिकत्वस्यानुपपत्तेरित्यर्थः । व्यावृत्ताविति । तत्र सत्त्वमस्ति क्षणिकत्वञ्च नास्तीति व्यभिचारादित्यर्थः ।

ननु व्यावृत्तिरपोहो मया न मन्यते, किन्तु भावान्तरमेव स इति शङ्कते अथेति । व्यावृत्तावसत्यामिति । सकलसाध्यसाधनसङ्ग्राहकव्यावृत्तिरूपधर्माभावादिति भावः । वस्तुतस्तु हेतुमति क्वचित्क्षणिकत्वं व्यावर्तते न वा ? आद्यमाह व्यावृत्ताविति । द्वितीयं शङ्कते अथेति । समाधत्ते व्यावृत्तावसत्यामिति । क्षणिकत्वं हि क्षणमात्रावस्थायित्वमात्रपदार्थोऽस्तु स्वपूर्वोत्तरक्षणयोर्भावस्य व्यावृत्तिः । व्यावृत्त्यनङ्गीकारे तद्घटितक्षणिकत्वस्य वक्तुमशक्यत्वेन व्याप्तिग्रहवैधुर्ये क्षणिकत्वसाधनत्वाभिमतानुमानस्याभावप्रसङ्गादित्यर्थः । किञ्च व्यावृत्त्यनङ्गीकारे भवदभिमतव्यतिरेकव्याप्तिभङ्गप्रसङ्गः । भावभिन्ननित्याभावस्य स्वीकृतस्य परित्यागेऽपसिद्धान्तमाह अपसिद्धान्तेति । ननु भावत्वतिरिक्ता व्यावृत्तिरिति चेत्—न; तदा भवदभिमतनित्यव्यावृत्तावेव व्यभिचारात्, क्षणिकत्वाभावाधिकरणस्यैव स्थैर्यस्वीकारापत्तेश्च । साध्याप्रसिध्या व्याप्तिग्राहकप्रमाणाभावत्वेनैव चरमशब्द एव साध्यप्रसिद्धिरिति वाच्यम् । तस्यापि स्थिरत्वाङ्गीकारात् । न च क्षणिकत्वाप्रसिध्या कथं क्षणिकत्वनिषेध इति वाच्यम् । यतः स्वाव्य- [illegible] निषेधशरीरस्वीकारात् । यदाव्यवहितोत्तरक्षणवर्ति- [illegible] .....प्राङ्नष्टे वस्तुनि सिद्धेः । सम्प्रतिपन्नवदिति । सम्प्रतिपन्ना व्यावृत्तिः, स्वशब्देन कर्मणि उक्तत्वेन कर्मोत्तरक्षणे वर्तमानो भावो वा सम्प्रतिपन्न इति निगर्वः ।

इति कर्मपदार्थः ।

[अ. टी.] कर्मणोऽसमवायिकारणत्वमुक्तं, तदाक्षिपति यत्सदिति । सन्तश्चामी भावा इति । द्रव्यादीनामपि क्षणिकत्वेन कारणत्वमाक्षिप्तम् । लब्धसत्ताकानां कारणानां मेलने सामग्री, ततः कार्यजननमित्यनेकक्षणस्थित्यपेक्षणात् । क्षणीभूते कारणत्वासम्भव इत्यर्थः । क्षणिकत्वे लक्षणसाध्यानिर्वचनान्नैवमित्याह नेति । क्षणे भवतीति क्षणभवः । तत्सम्भवात् क्षणावस्थानसम्भवादित्यर्थः । व्यावृत्तिरपोहशब्दार्थभूतः, तस्य च व्याप्तिग्रहार्थक्रियाहेतुत्वात्सत्त्वमिति युक्ता तत्रानैकान्तिकता ।

अथ भावान्तरमेव भावान्तरापोहः, ततो नोक्तो दोष इति शङ्कते अथेति । इष्टहान्या परिहरति न व्यावृत्ताविति । स्वलक्षणं सर्वतो व्यावृत्तमसाधारणं भावरूपम् । अनुमानाभावे तत्प्रमेयत्वेनेष्टक्षणिकत्वहानिरित्यर्थः । भावाद्भिन्नस्य निर्लेखाभावस्य स्वीकृत-

१ आरम्भकत्वे सति क्षणिकत्वेन सकलकारणमध्यवर्ति रूपेति छ. २ येति नास्ति घ पुस्तके. ३ मयेति नास्ति ट. ४ सेति घ. ५ पङ्क्तिरियं नास्ति घ पुस्तके. ६ प्रसङ्ग इति नास्ति घ पुस्तके. ७ पदमिदं नास्ति घ पुस्तके. ८ सिद्धिरिति घ. ९ सम्प्रतिपन्नेति घ. १० पदद्वयं नास्ति घ पुस्तके. ११ क्षणिकत्वे इति ट. १२ भवति निष्ठीति ट. १३ भावान्तरेति नास्ति ग. १४ अन्यापोहमिति ट. १५ स्वरूपमिति ञ, ट. १६ पदमिदं नास्ति घ पुस्तके.

स्वात्तत्यागश्चायुक्त इत्याह **अपसिद्धान्तेति**। सत्त्वं हेतुत्वेनोपन्यस्तम्। स्थायित्वे वाक्यं प्रमाणं तदाह **स्थायित्वे त्विति**। सम्प्रतिपन्ना व्यावृत्तिः, स्वशब्देन कर्मणो विवक्षितत्वात्तदुत्पत्त्यनन्तरक्षणभावी भावो वा सम्प्रतिपन्नः।

इति प्रमाणमञ्जरीटिप्पणेऽद्वयारण्ययोगिविरचिते कर्मपदार्थः।

[वा. टी.] शङ्कते **यत्सदिति**। **क्षणद्वयस्थित्यभावादिति** उत्पत्तिक्षणादन्यलक्षणस्थितेरभावादित्यर्थः। **किं वा क्षणादिति**। उत्पत्तिक्षणादित्यर्थः। सिद्धसाधनत्वोक्त्या एवंविधं क्षणिकत्वमनारम्भे प्रयोजकमिति [1]सूचितम्। व्यावृत्तिरपोहरूपं सामान्यम्। अनैकान्तिकतां परिहरति **अथेति**। भिन्नेत्यत्र नित्येति शेषः। एवं वदतानुमानमभ्युपगतं न वा? नाद्य इत्याह **व्यावृत्ताविति**। स्वलक्षणं भावस्वरूपम्। न द्वितीय इत्याह **अपसिद्धान्तेति**। सिद्धसाधनतापरिहाराय **स्वोत्पत्तीति**। तस्मान्न लक्षणा इति कर्मसम्भव इत्युपसंहारो द्रष्टव्यः।

इति प्रमाणमञ्जरीटीकायां कर्मपदार्थः।

*

(सामान्यलक्षणम् तत्र प्रमाणञ्च)

नित्यमनुगतं सामान्यम्। तत्र प्रमाणं प्रत्यक्षम्। अथैतत्कल्पनाज्ञानमिति चेत्–न; कल्पनात्वस्य विकल्पानुपपत्तेः। तथाहि किं-निर्विषयत्वं कल्पनात्वम्? किं वा शब्दसंपृक्तार्थप्रतिभासकत्वम्? आहोस्वित्स्मरणानन्तरभावित्वम्? इति। नाद्यः; इदमित्यबाधितधीविषयत्वात्। नापि द्वितीयः; अर्थे शब्दाभावात्। भावे चार्थस्य श्रोत्रपरिच्छेद्यत्वं स्यात्। शब्दस्य चाश्रोत्रेन्द्रियैर्ग्राह्यत्वं प्रसज्येत। न तृतीयः; इन्द्रियसन्निकर्षानुविधायिनो बोधस्य स्मृत्यनन्तरभावित्वेऽपि विरोधाभावात्। रूपस्मरणजननानन्तरमुपजातस्य रससाक्षात्कारस्याभ्युपगतप्रामाण्यस्याप्रामाण्यप्रसङ्गाच्च। सामान्यानभ्युपगमे लिङ्गलिङ्गिनोरविनाभावस्य दुर्ज्ञानत्वात् अनुमानस्यानुत्थानं न स्यात्। धूमधूमध्वजानामनन्तानामुपसङ्ग्राहकाभावात्।

[व. टी.] **नित्यमिति**। बहुत्वादावतिव्याप्तिभङ्गाय नित्यमिति। अवृत्तिपदार्थेऽतिप्रसक्तिभङ्गाय अनुगतमिति। न च विशेषादावतिव्याप्तिः, अनेकवृत्तित्वस्यानुगतशब्दार्थत्वात्। न चात्यन्ताभावादावतिव्याप्तिः, अनेकसमवेतत्वस्योक्तत्वात्। **नाद्य इति**। विषये गोत्वरूपे बाधाभावात्। विषयं विनैव जायमानत्वरूपकल्पनात्वं नास्तीत्यर्थः। **अर्थ इति**। रूपादिवदर्थे शब्दाभावात् न शब्दसम्पृक्तार्थविषयकत्वलक्षणं कल्पनात्वमित्यर्थः। **भावे चेति**। शब्दग्राहकेनैव तत्सम्पृक्तार्थग्रहणे घटादेरपि श्रोत्रग्राह्यता स्यादित्यर्थः। शब्दसम्पृक्तस्य च चक्षुरादिग्राह्यत्वे शब्दस्यापि तत्स्यादित्याह शब्द-

१ च युक्त इति ट. २ टिप्पणक इति ट. ३ एतदिति नास्ति क पुस्तके. ४ पदमिदं नास्ति क पुस्तके. ५ चेति नास्ति क पुस्तके. ६ सर्वस्येति क. ७ इन्द्रियेति नास्ति ख, ग, घ पुस्तकेषु. ८ अपीति नास्ति क पुस्तके. ९ धूमेति नास्ति क पुस्तके. १० अनेकेति नास्ति च पुस्तके. ११ तद्दिति च.

स्येति । यद्वा शब्दसम्पृक्तशब्देन यद्यभेदः शब्दार्थयोरुक्त इति द्वितीयः पक्ष उक्तस्तत्राह अर्थ इति । शब्दाभावात् शब्दभेदाभावादित्यर्थः । भावे चेति । शब्दाभेद इत्यर्थः । अर्थाग्रहे शब्दोऽपि श्रोत्रेण न गृह्येत, तयोरभेदादित्याह शब्दस्येति । यदि शब्दसम्पृक्तत्वमर्थस्य शब्दवाच्यं तदा तस्याबाधितस्योपनीतस्य चक्षुरादिना ग्रहेऽपि न ग्रहस्य कल्पनात्वमित्युपरि बोध्यम् । यदि शब्दनिरूपितो बाधितस्सम्बन्धो घटादौ भासते तदा भ्रम एवेति बोध्यम् । तृतीयं पक्षमास्कन्दयन्नाह नेति । बोधस्य गोत्वविषयकस्य स्मृत्यनन्तरं भवतीत्येतावन्मात्रेण कल्पनात्वेऽतिप्रसक्तमाह रूपेति । कल्पनात्वस्य वक्तुमशक्यत्वे सामान्यमङ्गीकार्यमित्यधस्तनग्रन्थेनोक्तम् । सम्प्रत्यनङ्गीकारे दोषमाह सामान्यानभ्युपगम इति । तत्र हेतुः धूमधूमध्वजानामिति सामान्यलक्षणानङ्गीकारे सकलधूमव्यक्तौ वह्नितरसाध्यव्यक्तिव्याप्यत्वाग्रहे नियतधूमाद्वह्न्यनुमानं न स्यादित्यर्थः ।

[अ. टी.] अनुगतं सामान्यमित्युक्ते संयोगादावतिव्याप्तिस्स्यात् अतः नित्यपदम् । नित्येऽननुगतेऽन्त्ये विशेषादौ तद्व्युदासाय अनुगतपदम् । अनुगतत्वमनेकसमवेतत्वम् । गौर्गौरित्याद्यनुगतप्रत्ययरूपं प्रत्यक्षमुक्तम्, तदाक्षिपति अथेति । कल्पनाज्ञानत्वादस्याप्रामाण्यं वाच्यम्, तदयुक्तम् तदनिरूपणादित्याह नेति । इदं गोत्वमित्यादिप्रत्ययस्य बाधाभावान्न निर्विषयत्वपक्षो युक्तः । रूपादिसम्पृक्तवद्घटादीनां शब्दसम्पृक्तत्वं नास्तीति । ततो न द्वितीयः । विपक्षे दण्डमाह भाव इति । शब्दग्राहकेणैव शब्दसम्पृक्तार्थग्रहणे श्रोत्रग्राह्यत्वं घटादेरपि स्यात् । यदि च शब्दसम्पृक्तस्यापि चक्षुरादिग्राह्यत्वं तर्हि शब्दस्यापि तत्स्यादित्याह शब्दस्येति । बोधस्य गोत्वप्रत्ययस्येत्यर्थः । किञ्च स्मृत्यनन्तरभावित्वमात्रेण सामान्यप्रत्ययस्य कल्पनात्वेऽतिप्रसङ्गस्स्यादित्याह रूपस्मरणेति । अतस्सामान्यप्रत्ययस्य कल्पनात्वानिरूपणात्सामान्यमङ्गीकार्यम् । अनङ्गीकारे दोषाच्च तदङ्गीकार्यमित्याह सामान्यानभ्युपगम इति । अनुष्ठानं प्रयोगः । उपसङ्ग्राहकस्य सामान्यधर्मस्य व्यतिरेकेऽनन्तव्यक्तीनामन्वयव्यतिरेकव्याप्त्योर्ज्ञातुमशक्यत्वान्न तत्पूर्वकानुमानप्रवृत्तिस्स्यादित्यर्थः ।

[वा. टी.] पदार्थत्रयवृत्तित्वात्सम्बध्यमानाकाङ्क्षितत्वाच्च सामान्यं निरूपयति नित्यमिति । आकाशनिराकरणाय अनुगतमिति । अनुगतमनेकसमवायि । संयोगादिनिराकरणाय नित्यमिति । तत्रेति । इदं सदिदं सदिति गौर्गौरित्यनुवृत्तप्रत्यय एव मानमित्यर्थः । आक्षिपति अथैतदिति । इदं सदिदं सदित्यादि ज्ञानमित्यर्थः । शब्दसम्पृक्तत्वं नाम शब्दात्मकत्वम् । इदमित्यस्यायमर्थः–इदं सदित्यादिज्ञानस्याबाधितत्वेन विषयत्वात् विषयो विद्यते यस्य तद्विषयं तस्य भावस्तत्त्वं,

---

१ वाच्यत्वमिति घ. २ बोध्य इति ग. ३ विषयस्येति घ. ४ अनुगतं मनोत्यन्येनेति ज, पदद्वयं नास्ति ट पुस्तके. ५ सम्पृक्तत्वेति ट. ६ संयुक्तत्वमिति ग. ७ सम्पृक्तस्यापीति ग. ८ शब्दसम्पृक्तस्यापीति ट. ९ शब्दस्य चेति ज, ट. १० अभावे इति ज, ट.

तस्मात् सविषयत्वादित्यर्थः । विपर्ययनिरासाय अबाधिते युक्तम् । अर्थे शब्दाभावादिति । अर्थस्य शब्दात्मकत्वाभावादित्यर्थः । तथात्वे दोषमाह भावे चेति । अश्रोत्रग्राह्यत्वं श्रोत्रान्येन्द्रियग्राह्यत्वम् । अर्थस्य तत्तदिन्द्रियग्राह्यत्वात्तदात्मकत्वादिदं सदिति प्रत्ययस्येत्यर्थः । विरोधे चातिप्रसङ्ग इत्याह रूपेति । तस्य प्रामाण्यमेव नेष्यत आह अभ्युपगतेति । प्रसङ्गाचेत्यस्यानन्तरं तस्मात्कल्पनानुपपत्तिरिति ग्रन्थसंहारो द्रष्टव्यः । दूषणान्तरमाह सामान्येति ।

*

(सामान्यस्यावस्तुत्वशङ्का तत्समाधानञ्च)

अथ मतम्—वस्तुभूतं सामान्यं नास्ति । तथाप्यतद्व्यावृत्तेस्सामान्यस्य विद्यमानत्वात् । तदुपसङ्ग्राहकादनुमानं प्रवर्तत इति चेत्—न; तद्व्यावृत्तेरवस्तुत्वादुपसङ्ग्राहकाभावात् । तस्माद्वस्तुभूतं सामान्यमङ्गीकर्तव्यम् ।

[व टी] अतद्व्यावृत्तेरिति । अधूमव्यावृत्तेरवह्निव्यावृत्तेरित्यर्थः । वस्तुन एव सूत्रादेः पुष्पादिसङ्ग्राहकत्वदर्शनात्तव मते च व्यावृत्तेरेव वस्तुत्वाभावेनोपसङ्ग्राहकत्वमित्याह नेति । वस्तुतस्तु धूमोऽयमित्यादिबुद्धौ धूमत्वादिकमेवाखण्डं प्रतीयते, तेनातद्व्यावृत्तिः । किञ्च धूमव्यावृत्तिरित्यत्रापि धूमत्वं (किम् ? यद्यधूमव्यावृत्तिरेव तदोन्मत्तप्रलापः । धूमत्वं) सामान्यञ्चेत्परमतस्वीकार इत्यलमतिपल्लवेन ।

[अ टी] तथापि त्वदभिमतं सामान्यं न सिध्यतीति शङ्कते अथ मतमिति । धूमसामान्यं नाम अधूमपदार्थव्यावृत्तिः । अग्निसामान्यं नाम अनग्निपदार्थव्यावृत्तिः । तयोरतद्व्यावृत्त्योरविनाभावादनुमानं प्रवर्तते । तेन भावरूपसामान्यापेक्षा नास्तीत्यर्थः । वस्तुभूतस्यैव सूत्रादेः पुष्पादिसङ्ग्राहकत्वदर्शनाद्व्यावृत्तेश्चावस्तुत्वान्नोपसङ्ग्राहकत्वमित्याह नेति ।

[आ टी] किमित्यनुमानभङ्गः ? अतद्व्यावृत्तेस्सामान्यस्याङ्गीकारात् । धूमत्वं नाम अधूमव्यावृत्तिः, अग्नित्वं चा अनग्निव्यावृत्तिः । तदविनाभावादनुमानं वर्तत इत्याशङ्कते अथ मतमिति । परिहरति नेति । वस्तुभूतस्यैव सूत्रादेः पुष्पाद्युपसङ्ग्राहकत्वदर्शनाद्व्यावृत्तेरवस्तुत्वान्नोपसङ्ग्राहकत्वमित्यर्थः । फलितमाह तस्मादिति ।

*

(परसामान्यमपरसामान्यञ्च, तत्र प्रमाणञ्च)

तत् परमपरञ्च । तत्र परं सत्ता, त्रिवर्गान्तर्गतत्वात् । अपरं द्रव्यत्वादि, अल्पविषयत्वात् । तत्र प्रमाणम्—कर्म शाबलेयसजातीयं, कार्यत्वात्, बाहुलेयवदिति । कार्यगुणः कर्मव्यावृत्तजातिमान्, कार्यत्वात्, तुरंगवदिति कर्मत्वसिद्धिः । कर्म गुणव्यावृत्तजातिमत्, कार्यत्वात्, देवा-

---

१ सामान्यमेवेति क २ तथापि वर्ततेति घ ३ उपसङ्ग्राहकत्वेति क, ग ४ मङ्गीकार्यमिति ग, घ ५ धूमेत्यारभ्य पदात्मको भागो नास्ति छ पुस्तके ६ परमिति नास्ति ग, घ ७ इत पदत्रयं नास्ति क, ग, घ पुस्तकेषु ८ जातिमानिति ग, घ

लयवदिति कर्मत्वसिद्धिः। कालो गुणव्यावृत्तजातिमान्, द्रव्यत्वात्, गोवदिति द्रव्यत्वसिद्धिः। विप्रतिपन्नाः पृथिव्यप्तेजोवायवः कालव्यावृत्तजातिमन्तः, स्पर्शवत्त्वाद्गोवदिति पृथिवीत्वादिसिद्धिः। आत्मा द्रव्यत्वावान्तरजातिमान्, चतुर्दशगुणवत्वात्, उदकवदित्यात्मत्वसिद्धिः। मनो द्रव्यत्वावान्तरजातिमत्, ज्ञानासमवायिकारणाश्रयत्वादात्मवदिति मनस्त्वसिद्धिः। कार्यरूपं रसादिव्यावृत्तजातिमत् कार्यत्वाद्गोवदिति रूपत्वसिद्धिः। एवं सर्वत्र रसादिष्ववगन्तव्यम्, उत्क्षेपणादिषु च।

इति तार्किकचक्रचूडामणिसर्वदेवसूरिविरचितायां
प्रमाणमञ्जर्यां सामान्यपदार्थस्समाप्तः।

[ब. टी.] त्रिवर्गेति। द्रव्यादित्रयवृत्तित्वादित्यर्थः। कर्मेति। शावलेयः शबलवर्णो गौः, तद्वृत्तिजातिमानित्यर्थः। प्रमेयत्वादिनार्थान्तरवारणाय जातीति। कर्ममात्रजात्यार्थान्तरवारणाय शावलेयेति। गोत्वादेः कर्मणि बाधात् पक्षधर्मताबलात्सत्तासिद्धिः। बाहुलेयः वर्णविशेषविशिष्टो गोपिण्डः। वन्ध्यागोपिण्ड इति केचित्। गुणत्वेऽपरसामान्ये प्रमाणमाह कार्येति। नित्ये गुणे पक्षभागासिद्धिवारणाय कार्यपदम्। कर्मणो बाधवारणाय द्रव्ये च सिद्धसाधनवारणाय गुण इत्युक्तम्। सत्तया सिद्धसाधनवारणाय व्यावृत्तान्तम्। सामान्यादिव्यावृत्तया सत्तया पुनरप्यर्थान्तरवारणाय कर्मेत्युक्तम्। उपाधिना केनचिदर्थान्तरमुन्मूलयितुं जातीत्युक्तम्। द्रव्यत्वादिना गुणं परम्परासम्बन्धेनार्थान्तरतादवस्थ्यनिराकृतये मतुपा साक्षात्सम्बन्ध उक्तः। न च द्रव्यत्वस्य परम्परासम्बन्धेन कर्मण्यपि वृत्तित्वेन व्यावृत्तान्तविशेषणेनैव प्रयोजनस्य सिद्धत्वात् किं सम्बन्धस्य साक्षात्त्वविवक्षयेति वाच्यम्। आत्मवृत्तित्वगुणे आत्मत्वसम्बन्धित्वेनार्थान्तरवारणाय साक्षात्त्वस्य विवक्षितत्वात्। न चात्मत्वं परम्परासम्बन्धेन कर्मसम्बद्धमिति व्यावृत्तत्वविशेषणेनैककार्यस्य सिद्धत्वात्पुनरपि विवक्षाधिकेति वाच्यम्। कर्मवृत्तित्वघटकपरम्परासम्बन्धभिन्नात्मसम्बन्धस्य सुलभत्वे वृत्तेः कर्मव्यावृत्तिनिर्वाहकार्यासत्वेनार्थान्तरतादवस्थ्यदौस्थ्यनिवारकत्वेन विवक्षाया विद्वन्मनीषाचमत्कारगोचरत्वात्, अन्यथा किमपि कुतोऽपि व्यावृत्तं न स्यात्। गुणत्वसमवायरूपोद्देश्यसिद्धये साक्षात्सम्बन्धस्य समवायरूपस्य मतुपोक्तत्वाच्च। भावत्वे सति कर्मत्वशून्यकार्यत्वहेतुरिति न कर्मणि ध्वंसे च व्यभिचारः। कर्मपक्षकानुमानेऽप्येवम्। काल इति सत्तयार्थान्तरवारणाय। व्यावृत्तेत्यादि पूर्ववत्। द्रव्य-

१ गोवदिति नास्ति घ पुस्तके. २ रूपत्वादीति मु. ३ साध्यमिति मु. ४ इति सामान्यपदार्थ इति क, ख, ग, घ. ५ जातिमदिति छ. ६ पदमिदं नास्ति घ पुस्तके. ७ ध्वंसकर्मणे इति घ. ८ सत्तायामिति घ. ९ उक्त इति नास्ति घ पुस्तके. १०, ११ त्वेति नास्ति घ पुस्तके. १२ विवक्षानर्थेति घ. १३ कार्यामिति घ. १४ दोषेति घ. १५ व्यावृत्तान्तमिति घ.

त्वात् गुणवत्त्वादित्यर्थः। यद्वा द्रव्यपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वेन हेतुता, तस्य जातित्वे हि विवादः, न तु धर्मत्वे इति भावः। ननु कालादिमात्रवृत्तिजात्याऽर्थान्तरमिति चेत्— घटादिः गुणव्यावृत्ते कालवृत्तिजातिमान् संयोगवत्त्वात् कालवदित्यर्थान्तरवारणात्। विप्रतिपन्ना इति। अत्र परस्परव्यावृत्तत्वविशेषणम्। तेन नोभयवृत्त्येकं जात्यार्थान्तरम्। तत्तत्स्पर्शवत्त्वोपाधिनार्थान्तरवारणाय जातीति। एकैकवृत्तिकालादिवृत्तिजात्यार्थान्तरभङ्गाय व्यावृत्तान्तम्। घटत्वादिनार्थान्तरनिरासाय विप्रतिपन्ना इति। विप्रतिपत्तिविषयत्वावच्छेदेनैका जातिस्सिध्यतीति भावः। युक्त्यन्तरेण पृथिवीत्वादिसाधनं ग्रन्थान्तर उक्तम्। यथा च चतुर्मात्रनिष्ठैका जातिर्न सिध्यति तथा तत्रैव बोध्यम्। आत्मेति। संसार्यात्मेत्यर्थः। तेन न भागासिद्धिः, ईश्वरस्याष्टगुणवत्त्वात्। उपाधिनार्थान्तरवारणाय जातीति। सत्तयार्थान्तरवारणाय अवान्तरेति। द्रव्यत्वेनार्थान्तरवारणाय द्रव्यत्वेति। तेन द्रव्यत्वन्यूनवृत्तिजातिमानित्यर्थः। आकाशादौ व्यभिचारनिरासाय चतुर्दशेति। गुणविभाजकोपाधिना विजातीयचतुर्दशत्वसंख्यावच्छिन्नधर्मवत्त्वादिति हेत्वर्थः। तेन चतुर्दशैविभागवति गगनादौ न व्यभिचारः। चतुर्दशशब्दवाच्यत्वेन गुणा गृहीताः। तेनान्ये चतुर्दश पक्षे, अन्ये च दृष्टान्त इत्यसिद्धिर्न। ज्ञानादिमत्त्वेनेश्वरेऽपि तज्जातिसिद्धिः। यद्वात्ममात्रपक्षीकरणेऽष्टगुणादिमत्त्वं हेतुः। न च प्रथमहेतौ चतुर्दशत्वं व्यर्थम्, तस्य समत्वाद्यघटितत्वात्। ज्ञानेति। श्रोत्रे ज्ञानकारणमनस्संयोगवति व्यभिचारवारणाय असमवायीति। शब्दासमवायिकारणवति गगने व्यभिचारवारणाय ज्ञानेति। गुणत्वव्याप्यजातिं साधयति कार्यमिति। नित्यरूपे भागासिद्धिवारणाय कार्येति। घटादिनार्थान्तरवारणाय ध्वंसे रसादौ च बाधवारणाय रूपमिति। रसादिव्यावृत्तभावकार्यत्वं हेतुः। आदिपदेनेतरे गुणा ग्राह्याः। कर्मव्यावृत्तजातेर्गुणस्यैव सिद्धत्वात्। आदिपदेन द्रव्यग्रहे दृष्टान्तासिद्धिस्स्यात्। उपाधिनार्थान्तरवारणाय जातित्वमुक्तम्। रसव्यावृत्तजातिमत् गन्धव्यावृत्तजातिमदित्यादि पृथगेव साध्यम्। यद्वा रसव्यावृत्तो गन्धरूपनिष्ठो(र्वा मा) सिध्यतु इत्येकमेव साध्यम्। न चादिपदेन कर्मग्रहणे रसव्यावृत्तरूपकर्मनिष्ठजातिसाध्यापत्तिः, सदाकारप्रतीतेः सत्तयैवोपपत्तेः, रूपकर्ममात्रनिष्ठविलक्षणानुगतप्रतीतेरभावात्, भावे वा रूपकर्मान्यतरत्वेनैव तदुपपत्तेः, तादृशजातेरनुभवसिद्धत्वात्। एवमिति। कार्यरसः रूपादिव्यावृत्तजातिमान् कार्यत्वात् गोवत्। उत्क्षेपणम् अपक्षेपणादिव्यावृत्तजातिमत् कार्यत्वाद्गोवदित्याद्यनुमानं कर्मत्वावान्तरजातिसाधकं बोध्यम्। अपक्षेपणादिभिन्नसमवेतधर्मवत्त्वं चापक्षेपणादिव्यावृत्तजातिसाधने हेतुः।

इति सामान्यम्।

---

१ धर्मे इति च. २ जात्यादिनेति च. ३ वारणायेति च. ४ विभागेति च. ५ भङ्गायेति च. ६ वारणायेति च. ७ संयोगादिवदिति च. ८ सिध्यापत्तिरिति च. ९ पदार्थ इति च.

[अ. टी.] **त्रिवर्गो** द्रव्यगुणकर्माख्यः, तदन्तर्गतत्वं तद्वृत्तित्वम्[1]। **शाबलेयः** शबलवर्णो गौः। कर्मव्यक्तीनां परस्परसजातीयत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं **शाबलेयसजातीयमित्युक्तम्**। तत्सजातीयत्वञ्च कर्मणो न गोत्वादिनेत्यतिरिक्तसत्तासिद्धिः। अपरसामान्ये तर्हि किं प्रमाणम्? तदाह **कार्यगुण इति**। सत्ताजातिमत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं **कर्मव्यावृत्तपदम्**। गुणे द्रव्यत्वासम्भवात्कर्मणो व्यावृत्ता जातिर्गुणत्वमेव। कार्यत्वञ्चात्र कर्मान्यत्वविशेषितं हेतुत्वेन द्रष्टव्यम्। कर्मणोऽपि सत्ताजातिमत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासाय गुणव्यावृत्तपदम्। तथापि द्रव्यत्वे किं प्रमाणं तदाह **काल इति**। द्रव्यत्वात् गुणवत्वादित्यर्थः। इदानीं द्रव्यत्वावान्तरजातिं साधयति **विप्रतिपन्न इति**। व्यावृत्तासाधारणजातिः, तद्वन्तः[2]। द्रव्यत्वजातिमत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं **द्रव्यत्वावान्तरपदम्**। शब्दासमवायिकारणाश्रये[3] व्योमादौ व्यभिचारवारणार्थं **ज्ञानपदम्**। रसो रूपादिव्यावृत्तजातिमानित्यादिप्रयोगो[4] रसादिषु, ततो गुणत्वावान्तरजातिसिद्धिः। एवं कर्मत्वावान्तरजातिरपि साध्येत्याह **उत्क्षेपणादिषु चेति**। उत्क्षेपणमपक्षेपणादिव्यावृत्तजाति(मत्, जाति?) मत्वात् गोवैदित्यादिप्रयोगः[5]।

इति प्रमाणमञ्जरीटिप्पणेऽद्वयारण्ययोगिविरचिते सामान्यपदार्थः[6]।

[वा. टी.] अत्र बहुवृत्तित्वन्यूनवृत्तित्वोपाधिप्रयुक्त्या द्विविधमेव सामान्यमित्याह **तच्चेति**। नन्वुपाधिद्वयस्यैकत्र सम्भवात्परापरमपि स्यादिति न ग्राह्यम्। तथात्वेऽनन्तोपाधिकल्पनया त्रित्वनियमो न स्यादिति द्वैविध्यमेव युक्तमिति। **कर्मेति**। धर्मान्तरेण सिद्धसाधनतापरिहाराय **शाबलेयेति**। शबलवर्णस्यापत्यं शाबलेयः। स्त्रीभ्यो ढक्। तज्जातीयत्वञ्च कर्मणो न गोत्वादिनेत्यतिरिक्ता जातिस्सिद्धा। सा च सत्तेति। शेषं स्पष्टम्।

इति सामान्यनिरूपणम्।

*

(विशेषनिरूपणम्)

निस्सामान्य एकैकैव समवायी विशेषः। तत्र प्रमाणम्-मनो मनोऽन्तरव्यावृत्तनिस्सामान्यसमवायि, द्रव्यत्वात्, गोवदिति। नित्या आकाशादयो विशेषवन्तः नित्यद्रव्यत्वात् मनोवदिति। स नित्यः सत्वे सति जातिशून्यत्वात्सत्तावदिति।

इति तार्किकचक्रचूडामणिसर्वदेवसूरिविरचितायां प्रमाणमञ्जर्यां विशेषपदार्थस्समाप्तः[9]।

---

१ तद्वृत्तित्वमिति ट. २ व्यवच्छेद्यायेति ज, ट. ३ शब्दापसमवायीति ट, शब्दासमवायीति ज. ४ प्रयोगादिति ट. ५ गोवधादिति ट. ६ टिप्पणके इति ट. ७ पद्यमिदं नास्ति क, घ पुस्तकयोः. ८ धातीति नास्ति घ पुस्तके, सामान्येति ग. ९ इति विशेष पदार्थ इति क, ख, ग, घ.

[ब. टी.] **निस्सामान्य इति** । गुणादावतिव्याप्तिभङ्गाय **निस्सामान्य इति** । सामान्येऽतिव्याप्तिवारणाय **एकेति** । एकमात्रसमवायीत्यर्थः । सम्बन्धविशेषेणैकमात्रसमवायित्वं विवक्षितम् । तेन परमाणुविशेषस्य कालादौ वृत्तावपि नासम्भवः । सम्बन्धाविशेषेण परमाणुमात्रवृत्तौ पाकजरूपादिध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय **समवायीति** । **मनोऽन्तरेति** । समवायीत्युक्ते गुणेनार्थान्तरम्, अत उक्तं **निस्सामान्येति** । सामान्येनार्थान्तरवारणाय **मनोऽन्तरव्यावृत्तेति** । बाधवारणाय **अन्तरेति** । घटव्यावृत्तमनस्त्वेनार्थान्तरवारणाय **मन इति** । मनोनिष्ठात्ममनस्संयोगध्वंसेनार्थान्तरवारणाय **समवायीति** । अनुमानन्तु—आकाशादि मनोव्यावृत्तनिस्सामान्यसमवायि मनोभिन्नद्रव्यत्वात् घटवदित्यादि बोध्यम् । हेतुस्तु मनोऽन्तरव्यावृत्तद्रव्यत्वं, तेन न मनोऽन्तरे व्यभिचारः । सामान्यादौ च न व्यभिचारः । इदानीं विशेषत्वेन रूपेणाकाशादौ विशेषं साधयति **नित्या इति** । आकाशादय इत्यादिपदेन परमाण्वादिपरिग्रहः । घटादिपरिग्रहे बाधभङ्गाय **नित्या** इत्युक्तम् । नित्यगुणादिपरिग्रहेण बाधवारणायाकाशादिपरिग्रहेण द्रव्यं गृहीतम् । तथा च नित्यद्रव्याणि मनोव्यतिरिक्तनित्यद्रव्याणि वा पक्षः । घटादौ व्यभिचारभङ्गाय **नित्येति** । नित्यपरमाण्वादौ व्यभिचारवारणाय द्रव्यत्वविशेषणम् । अन्ये तु पक्षे नित्यग्रहणे नित्यद्रव्यैकवृत्तित्वसूचनायेत्याहुः । तत्र पक्षविशेषणकृत्यस्योक्तत्वात् । **स इति** । प्रागभावे व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम् । भावत्वे सतीति तदर्थः । घटादौ व्यभिचारवारणाय विशेष्यभागः । अन्यनिरूपितसमवायरहितत्वादिति तदर्थः ।

इति विशेषपदार्थः ।

[अ. टी.] समवायी विशेष इत्युक्ते संयोगादावतिव्याप्तिस्स्यादत **एकेनेत्युक्तम्** । अनेकसमवायिन एकसमवायित्वमप्यस्तीति स एव दोषस्स्यादत **एवेत्युक्तम्** । एकेनैव समवायिरूपादिव्यवच्छेदाय निस्सामान्यत्वविशेषणं द्रष्टव्यम् । मनसो निस्सामान्यमनस्त्वादिसमवायित्वेन सिद्धसाधनताव्युदासार्थं **मनोऽन्तरव्यावृत्तेत्युक्तम्** । मनोऽन्तरव्यावृत्तसमवायीत्युक्ते परिमाणसमवायित्वेन सिद्धसाधनता स्यादतो **निस्सामान्यपदम्** । तथाप्याकाशादिषु कथं विशेषसिद्धिरत आह **नित्या इति** । नित्यद्रव्यैकवृत्तित्वसूचनार्थं नित्यग्रहणम् । तन्नित्यत्वं तर्हि कथं तत्राह **स नित्य इति** । जातिशून्यत्वादित्युक्ते प्रागभावे व्यभिचारस्स्यादत उक्तम **सत्त्वे सतीति** ।

इति प्रमाणमञ्जरीटिप्पणेऽद्वयारण्ययोगिविरचिते विशेषपदार्थः ।

[वा. टी.] सम्बन्धिनिरूपणेनावच्छिन्नत्वाद्विशेषं विशदयति **निस्सामान्य इति** । संयोगनिराकरणाय **एकेनेति** । सामान्यनिराकरणाय **निस्सामान्य इति** । अनेकसमवेतं यत्तदेकसमवेतं

१ तत इति घ. २ सम्बन्धविशेषेणेति घ. ३ इतः पदत्रयं नास्ति घ पुस्तके. ४ भङ्गायेति घ. ५ सतीत्यर्थ इति घ. ६ पदार्थनिरूपणमिति घ. ७ समवायीतीति ङ. ८ समवायित्वे इति ङ. ९ व्युदासार्थमिति अ, ट. १० टिप्पणके इति ट.

भवत्येवेति पुनरपि सामान्येऽतिप्रसङ्गस्तदवस्थ एवेति। न च विशेषाभावाल्लक्षणासम्भवः, सामान्यतस्तत्सिद्धेः। अस्ति तावदस्माकं गोघटादिषु व्यावृत्तप्रत्ययान्निमित्तप्रसिद्धिः, तथायोगिनं तुल्याकृतिगुणादिषु परमाण्वादिषु व्यावृत्तप्रत्ययान्निमित्तं वाच्यम्। न च विशेषाणामिव स्वत एव व्यावृत्तप्रत्ययजनकत्वं तेषाम्, जात्यादिरहितत्वेनात्यन्तविलक्षणत्वात्तथात्वं युक्तम्, अन्यथा विशेषत्वमेव न स्यात्। प्रकृते च जात्यादिना सारूप्याद्व्यावृत्तधीनिमित्तेन भवितव्यं, यन्निमित्तं स एव विशेष इत्याशयवांस्तत्र प्रमाणमाह **तत्रेति**। गुणसमवायित्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय **निस्सामान्येति**। मनस्त्वेन तां परिहरति **मनोऽन्तरव्यावृत्तमिति**। दृष्टान्तसिद्धावन्यत्रापि विशेषं साधयति **नित्या इति**। घटनिवृत्तये **नित्येति**। विशेषाणामनित्यत्वप्रत्ययावस्थायां साङ्कर्यप्रसङ्गस्स्यादित्याशयवान्नित्यत्वं साधयति **स नित्य इति**। प्रागभावनिवृत्तये **सत्त्व इति**।

इति विशेषपदार्थः।

*

(समवायनिरूपणम्)

नित्यस्सम्बन्धस्समवायः सत्तासम्बन्धान्निवर्तते जातित्वाद्गोत्ववदिति। तत्र प्रमाणम्–समवायोऽस्मदाद्यप्रत्यक्षः, परमाणुसम्बन्धत्वात्तत्संयोगवत्। स नित्यः, सत्त्वे सत्यसमवेतत्वात्, परमाणुवत्। विवादमापन्नाः समवायप्रत्ययाः देवदत्तसमवायप्रत्ययेनाभिन्नविषयाः, समवायप्रत्यय[3]त्वात्, सम्प्रतिपन्नसमवायप्रत्ययवदिति समवायस्यैकत्वसिद्धिः।

इति तार्किकचूडामणिसर्वदेवसूरिविरचितायां प्रमाणमञ्जर्यां समवायपदार्थस्समाप्तः।

[व. टी.] **नित्य इति**। आत्मादावतिव्याप्तिवारणाय **सम्बन्ध इति**। संयोगेऽतिव्याप्तिवारणाय **नित्य इति**। सामान्यविशेषान्यत्वे सति निस्सामान्यभावत्वं तल्लक्षणमूह्यम्। अतः शक्त्यादिरूपे नित्ये सम्बन्धे नातिव्याप्तिः। **सत्तेति**। सत्ताजातिरित्यर्थः। तेन स्वरूपसत्तायाः समवाये वर्तमानत्वेऽपि न बाधः। निवृत्तिमात्रे वक्तव्ये सामान्यादिनिवृत्त्यार्थान्तरम्, अतः सम्बन्धादित्युक्तम्। द्विष्ठसम्बन्धान्निवर्तत इत्यर्थः। संयोगत्वादिस्तु पक्षसम इति न व्यभिचारः। सत्तायाः संयोगान्निवृत्त्यसम्भवे पक्षधर्मताबलात्समवायसिद्धिः। यद्वा जातिमात्रं पक्षः। वैशेषिकराद्धान्ते समवायाप्रत्यक्षत्वं साधयति **समवाय इति**। घटपटसंयोगे व्यभिचारवारणाय परमाणुनिष्ठत्वविशेषणम्। पृथिवीत्वादौ व्यभिचारवारणाय सम्बन्धत्वोक्तिः। अणुसम्बन्धत्वादित्येव हेतुः तेन न परमपदवैयर्थ्यम्। लक्षणासम्भवं परिहर्तुं नित्यत्वं साधयति

---

१ यदि नास्ति क, ख, ग पुस्तकेषु, परमाणुसंयोगवदिति घ. २ सति समवेतत्वादिति घ. ३ समवायत्वादिति ग. ४ इति समवायपदार्थ इति क, ख। इति प्रवीणतार्किकसर्वदेवसूरिप्रणीतायाम् इति ग, इति सर्वदेवसूरिप्रणीतायामिति घ. ५ पङ्क्तिरियं नास्ति च पुस्तके. ६ संयोगनिवृत्तीति घ.

स इति। प्रागभावे व्यभिचारवारणाय भावत्वे सतीत्युक्तम् । घटादौ व्यभिचारभङ्गाय विशेष्यभागः। असम्बन्धत्वादित्युक्तौ दृष्टान्तासिद्धिः स्वस्वरूपासिद्धिश्च स्याताम् । अत उक्तम् **असमवेतत्वादिति** । सिद्धान्तभूतं समवायैकत्वं साधयति **विवादमिति**। पक्षसाध्ययोः प्रत्ययपदं बाधादिवारणाय, समवायस्य निर्विषयत्वात्। सविषया इत्युक्तेऽर्थान्तरम्, अभिन्नविषया इत्युक्तेऽपि। प्रत्ययेनेत्याद्युक्तेऽपि घटादिप्रत्ययेनाभिन्नविषयत्वादबाधश्च[1]। **देवदत्तेति**। विशेषणपरिहारे पक्षीभूतसमवायप्रत्ययेनाभिन्नविषयत्वसिध्या सिद्धसाधनं स्यात्, तद्वारणाय देवदत्तेति विशेषणम् । अभावप्रत्यये व्यभिचारभङ्गाय **समवायेति**[2] । साधनवैकल्यपरिहाराय **प्रत्ययत्वादिति** । **सम्प्रतिपन्नेति**। देवदत्तसमवायप्रत्ययैवदित्यर्थः[3]। यद्वा[4] घटकपालसमवायातिरिक्ताः समवायाः घटकपालसमवायादभिन्नाः समवायत्वात्, घटकपालसमवायवत् इति तर्कस्तु लाघवाख्यः । द्रव्यादाविहाकारानुगतप्रतीत्यभावप्रसङ्गश्च बोध्यः । अतो नाप्रयोजकता, सम्बन्धिभेदेन बहुत्वोपचारः।

इति समवायः[5]।

[अ. टी.] संयोगव्यवच्छेदाय **नित्यपदम्**। आत्मादिव्युदासाय **सम्बन्धपदम्**। संयोगे सत्ताया वर्तमानत्वात्ततो निवृत्त्यसम्भवात्तद्विलक्षणसमवायसिद्धिः। अस्मदादिप्रत्यक्षः समवाय इति मतं व्युदस्यति **समवाय इति**। घटादिसंयोगव्युदासाय **परमाणुसम्बन्धत्वादित्युक्तम्**। लक्षणांशभूतं नित्यत्वं साधयति **स नित्य इति** । असमवेते प्रागभावे व्यभिचारो मा भूदिति **सत्त्वे सतीत्युक्तम्**। घटादौ व्यभिचारवारणार्थम् **असमवेतत्वपदम्**। समवायस्यैकत्वमभिमतं साधयति **विवादमिति**। देवदत्तसमवायप्रत्ययादन्ये समवायप्रत्ययाः पक्षः । स्वस्वसमवायप्रत्ययाभिन्नविषयत्वेन सिद्धसाधनताव्युदासाय **देवदत्तपदम्**। घटादिप्रत्यये व्यभिचारवारणाय **समवायप्रत्ययत्वादित्युक्तम्**।

इति प्रमाणमञ्जरीटिप्पणेऽद्वयारण्ययोगिविरचिते समवायपदार्थः।

[वा. टी.] निरूपिते सम्बन्धिनि सम्बन्धं निरूपयति **नित्य इति**। संयोगनिराकरणाय **नित्य इति**। आकाशनिराकरणाय **सम्बन्ध इति**। **सत्त्वेति**। विशेषादिव्यावृत्तत्वेन सिद्धसाधनतापरिहाराय **सम्बन्धादिति**। यतस्सम्बन्धाद्व्यावृत्तस्सम्बन्धस्समवाय[6] इति। न च तादात्म्येनार्थान्तरता, विरुद्धयोस्तादात्म्यासम्भवादिति। घटपटसम्बन्धनिवृत्तये **परमाणुपदम्**। समवायानित्यत्वे आकाशपरिमाणादेरसम्बद्धस्यैवावस्थानं स्यात्। तच्च सिद्धान्तविरुद्धमिति नित्यत्वं साधयति **स नित्य इति**। सम्बन्धत्वादेवास्य प्राप्तमनेकत्वं वारयति **विवादमापन्ना इति**। देवदत्तसमवायप्रत्ययादन्यस्समवायप्रत्ययः । विवादपदशब्दार्थे घटादिप्रत्ययनिवारणाय **समवायेति** । भेदप्रत्ययस्तु रूपादिव्यञ्जकभेदनिमित्त इति ज्ञेयम्।

इति समवायः।

१ विषयत्वाभावादबाधश्चेति च. २ वारणायेति च. ३ प्रत्ययेति नास्ति च पुस्तके. ४ ययेति च. ५ पदार्थ इति च. ६ व्यावर्तेति ज, ट. ७ व्यवच्छेदायेति ज, ट. ८ टिप्पणक इति ट.

(अभावलक्षणं तद्विभागश्च)

भावनिषेधोऽभावः। स द्वेधा–जन्योऽजन्यश्च। प्रथमः प्रध्वंसः। उत्तरो द्वेधा–विनाशी अन्यथा चेति। आद्यः प्रागभावः। उत्तरो द्वेधा–समानाधिकरणनिषेधः अन्यथा चेति। पूर्व इतरेतराभावः। उत्तरोऽत्यन्ताभावः। नात्र प्राभाकरं प्रति प्रमाणमभिधानीयम्। निद्रामरणनिर्वाणाङ्गीकारात्। धिषणानिर्वाणं हि[2] निद्रा। उपनिबन्धकादृष्टक्षयात् कलेवरवियोगो मरणम्। निखिलात्मविशेषगुणविलयो निर्वाणम्। अथ[3] कथयसि त्वम्–प्रतियोगिनि ज्ञायमाने केवलाधिकरणोपलम्भ एव निद्रेति चेत्–[4]मैवं वोचः; विकल्पानुपपत्तेः। इदृशस्य प्रतियोगिनो विज्ञानं किं सुप्तस्य? किंवा यस्य कस्यचित्? आद्ये विकल्पे[6] सुप्तः प्रतिबुद्धः[7] स्यात्। न द्वितीयः, [8]परनरगतसंवित्तेः परेतरेण[9] प्रत्यक्षेण ज्ञातुमशक्यत्वात्। परस्य यथाकथञ्चित् तत्र ज्ञानमस्तीति चेत्–न; परमाणुगुणानां यथाकथञ्चिदवगतानां निषेधप्रसङ्गात्। तस्मादभावोऽङ्गीकर्तव्यः।

[ब. टी.] भावेति। यद्यपि पर्यायेण न लक्षणम्, अन्यथा घटः कलश इत्याद्युक्त्या निर्वृत्तस्स्यात्। भावपदवैयर्थ्यञ्च, तथाप्यभावत्वमखण्डमेव लक्षणम्। अन्यस्तु निष्प्रतियोगिको भावो न सम्भवतीति सूचयितुं भावपदं दत्तमित्याह। परे त्वभावनिषेधे घटादावतिव्याप्तिं वारयितुं भावेत्युक्तमित्याहुः। समानाधिकरणेति[1]। समानाधिकरणजातीय निषेध इत्यर्थः। साजात्यन्तु अभावविभाजकोपाधिना। तेनाव्याप्तिपदार्थोन्योन्याभावस्य नासङ्ग्रहः। अयमयं न भवतीत्यादिप्रतीत्या विषयीक्रियमाण इति वार्थः। अन्यथा चेति। स्ववृत्त्यवच्छेदेन स्वव्यधिकरण इत्यर्थः। तेन कालभेदेन घटसमानाधिकरणस्य घटात्यन्ताभावस्य नासङ्ग्रह इति भावः। न च प्रागभावध्वंसयोरतिव्याप्तिः, प्रतियोगिकाले वर्तमानत्वे सतीति विशेषणात्। अन्ये तु संसर्गाभावमादायाप्यखण्डा एवेत्याहुः। न चाकाशात्यन्ताभावाद्यसङ्ग्रहः, तस्य वृत्त्यसिद्धेरिति वाच्यम्। तस्यापि तादृशव्यधिकरणजातीयत्वात्। धिषणेति। प्रहारा(द्य ? दि)प्रयोज्यबुध्यभावे निद्रासुषुप्तिर्व्यवह्रियत इति भावः। यद्वा सुषुप्तिः पुरीतति देशे मनसोऽवस्थानम्। एवञ्च ज्ञानाभावात्सुषुप्तिर्भिन्नैवेति बोध्यम्। तथा च धिषणानिर्वाणसमापनं सुषुप्तिरित्यर्थो बोध्यः। न तु ज्ञानाभावः केवलाधिकरणमेवेत्यत आह उपनिबन्धकेति। उपनिबन्धकत्वं शरीरादिना सह सम्बन्धरूपत्वं शरीरादिजनकत्वं वा। क्षयो ध्वंसरूपोऽभावः स्वीकृतः। कलेवरस्य विलयो ध्वंस एव स्वीकृतः।

---

१ सामानाधिकरण्येति ख. २ हीति नास्ति ग घ, पुस्तकयोः. ३ कथं इत्येव इति मु. ४ मैवमवोच इति मु. ५ इदृशप्रतियोगिन इति क. ६ पदमिदं नास्ति ख, घ पुस्तकयोः. ७ प्रबुद्ध इति क, ख, घ. ८ परतरवृत्तीति मु. ९ परतरेणेति मु. १० भावत्वादयोऽपीति ख. ११ समर्थ इति ख.

यदि जीवनध्वंसो मरणं तदाप्यभावस्वीकारः । कृष्णादिशरीरवियोगोऽपि मरणं स्यादतः पञ्चम्यन्तम् । स्वनिष्ठादृष्टक्षयादित्यर्थः । तेन न जीवादृष्टक्षयप्रयोज्यभगवत्कलेवरध्वंसो मरणमिति बोध्यम् । अपरे तु–उपनिबन्धकादृष्टक्षय एव मरणमिति निजगदुः । ननु सोऽप्यधिकरणात्मेत्यत आह निखिलेति । यत्किञ्चिद्विशेषगुणवृत्तेः संसारितादशायां वर्तमानत्वेनातिव्याप्तिं वारयितुं निखिलेत्युक्तम् । रूपादिध्वंसस्य मुक्तित्वं वारयितुम् आत्मेति । आत्ममनस्संयोगादिध्वंसस्य मुक्तित्वापत्त्या मनःप्रवृत्तेरपि मुक्तत्वापातं वारयितुं विशेषेति । गुणाभावमात्रं न मुक्तिरित्यत उक्तम् विलय इति । ध्वंस इत्यर्थः । इदन्तु परमतसिद्धं लक्षणमिति कृत्वा दोषो नेह विचार्यते । न चायं विलयोऽधिकरणात्मा, मुक्तेरजन्यत्वापातेनापुरुषार्थत्वापातात् । पररहस्यमुद्घाटयति अथेति । दृश्य इत्यनेन प्रतियोगिनः प्रामाणिकत्वमात्रं सूचयितुम्, यद्वा योग्याभावस्य योग्यतानिर्वाहाय दृश्य इत्युक्तम् । प्रतियोगिविशिष्टस्याधिकरणस्याभावत्वं वारयितुं केवलेति निजगदे । प्रतियोग्यज्ञानदशायामभावव्यवहारं वारयितुं ज्ञायमान इत्युक्तम् । अधिकरणस्वरूपसत्तादशायामभावव्यवहारातिप्रसक्तिवारणाय उपलम्भ इत्युक्तम् । अधिकरणेत्युपरञ्जकम् । यद्वा अप्रकृताधिकरणेऽभावव्यवहारं वारयितुम् अधिकरणपदं प्रकृताधिकरणपरम् । सुप्त इति । तथा च निद्राभङ्गप्रसङ्ग इति निगर्वः । प्रतियोगिज्ञाने सति ज्ञानाभावादिति । परस्येति । लिङ्गादिनेत्यर्थः । तथा च प्रतियोगिज्ञानघटिताधिकरणोपलम्भरूपो भावः प्रत्यक्षो न स्यादिति भावः । प्रतियोगिनोऽप्रत्यक्षत्वे प्रतियोगिलैङ्गिकज्ञानादिना भावव्यवहारेऽतिप्रसक्तिमाह नेति । वस्तुतस्तु–अभावमन्तरेण कैवल्यमेव निरूपयितुं न शक्यमित्यन्यत्र प्रपञ्चः ।

[अ. टी.] निष्प्रतियोगिकनिषेधासम्भवात् भावनिषेध इत्युक्तम् । विनाशी प्रागभावः । अन्यथा नित्यः । समानाधिकरणोऽयं न भवतीति निषेधः । ननु प्राभाकरा अभावं न मन्वते, तान् प्रति प्रमाणं वाच्यम्, तत्राह–नात्रेति । निद्राद्यङ्गीकारे कथमभावाङ्गीकार इत्यत आह धिषणेत्यादि । धिषणा बुद्धिः । निर्वाणं प्रध्वंसः । उपनिबन्धकं देहारम्भकम् । एकदेशेनात्मविशेषगुणविलयः संसारदशायामप्यस्तीति निखिलपदम् । तदीयं रहस्यमुत्थापयति अथेति । ज्ञायमाने स्मर्यमाणे दुःखादिविशिष्टाधिकरणोपलम्भे दुःखाभावव्यवहारप्रसङ्गवारणार्थं केवलपदम् । तर्ह्यस्मर्यमाणेऽपि प्रतियोगिन्यभावव्यवहारः प्रसक्तस्तत्राह–(अथेति ?) । प्रतियोगिनि ज्ञायमान इत्युक्तं तर्कबलेन दूषयति मैवं वोच इति । यदि सुप्तस्य प्रतियोगिविज्ञानं तर्हि स स्वप्नेऽपि प्रबुद्धस्स्यादतो नाद्यः कल्पः । धिषणानिर्वाणं हि निद्रा । ततस्सा प्रतियोगिभूता बुद्धिः, सा च परस्य प्रत्यक्षा न भवति । तथापि यथाकथञ्चिज्ज्ञायत इति शङ्कते परस्येति । यथाकथञ्चिल्लिङ्गेनेत्यर्थः । तथाप्यधिकरण-

---

१ स्वीकृत इति च. २ क्षयादि इति च. ३ त्वादिति नास्ति च पुस्तके. ४ इतः पदचतुष्टयं नास्ति च पुस्तके. ५ भावाभावादिति छ. ६ विषय इति ट. ७ दुःखाविशिष्टेति ट. ८ उक्तमिति नास्ति ट पुस्तके.

स्याप्रत्यक्षत्वात्प्रतियोगिविषयलैङ्गिकज्ञानमात्रेण तन्निषेधव्यवहारेऽतिप्रसङ्ग इत्याह नेति । अभावानङ्गीकारे केवलशब्दार्थ एव दुर्निरूप इति न लिङ्गेनापि केवलाधिकरणोपलम्भ इति भावः । निगमयति तस्मादिति ।

[वा. टी] प्रतियोगिभावनिरूपणानन्तरमभावं निरूपयति भावेति । अभावनिषेधेऽतिव्या-व्याप्तिपरिहाराय भावेति । समानाधिकरणनिषेधो नाम तादात्म्यनिषेधः । धिषणानिर्लोपं चाक्षुषा-दिज्ञानाभावः । उपनिबन्धकं देहप्रमाणादिसम्बन्धघटकम् । कलेवरविलयो नाम देहस्य प्राणा-देर्वियोगः । कियद्विशेषगुणविलयः संसारदशायामप्यस्तीति निखिलेत्युक्तम् । प्रमाणयोग्ये बुध्यादावनुभूयमाने आत्ममात्रोपलम्भ एव निद्रादिरिति स्वयमेव तन्मतमाशङ्कते अथेति । परिहरति मैवमिति । विज्ञानमित्यत्र प्रत्यक्षं विवक्षितमानुमानिकं वा ? तत्रायं द्विधा विकल्प्य दूषयति आद्य इत्यादिना । द्वितीयं शङ्कते अथेति । आनुमानिकज्ञानमात्रेणाधिकरणावगतौ तन्निषेधेऽतिप्रसङ्ग इति दूषयति नेति । परमाणुष्विति शेषः । उपसंहरति तस्मादिति ।

*

(मोक्षे प्रमाणम्)

तत्रापि मोक्षे प्रमाणम्—आत्मा कदाचिदशेषविशेषगुणशून्यः, अनित्यविशेषगुणत्वात्, पार्थिवपरमाणुवदिति । नाकाशे व्यभिचारः, तस्यापि तथा साधनात् ।

इति तार्किकचक्रचूडामणिसर्वदेवविरचितायां
प्रमाणमञ्जर्याम् अभावपदार्थस्समाप्तः ।
॥ इति प्रमाणमञ्जरी समाप्ता ॥

[व. टी.] स्वाभिमते मोक्षे प्रमाणमाह आत्मेति । जलपरमाणौ व्यभिचारवारणाय विशेषेति । विशेषपदार्थस्य ध्वंसो नास्त्येव । विशेषपदेन धर्मविशेषग्रहणे जलपरमाणौ व्यभिचारः, तत्रापि संयोगादीनां सत्त्वात् । विशेषपदेनैव विशेषगुणग्रहणे फलतो न विशेषः । बाधवारणाय कदाचिदिति । परिमाणादेरध्वंसात् बाधवारणाय विशेषेति । यत्किञ्चिद्विशेषगुणध्वंसेनार्थान्तरवारणाय अशेषेति । आत्मा संसार्यात्मा । गुणपदा-दानेऽशेषस्य धर्मविशेषस्य परिमाणादेः ध्वंसासम्भवाद्बाधस्तस्मात्तदर्थं गुणपदम् । यद्यपि पार्थिवपरमाणुर्न दृष्टान्तः, पक्षसमत्वात्, तथाप्यनुमानान्तरे तात्पर्यमवगमनीयम् । तथेति । आकाशस्य पक्षसमत्वात् उक्तरूपसाध्यवत्त्वसाधनादित्यर्थः । न हि पक्षे पक्ष-समे वा व्यभिचार इति भावः । वस्तुतस्तु हेतुमत्तया निश्चिते साध्यवत्तया सन्दिग्धेन

१ दुर्बोध इति ड. २ तत्र मोक्षे इति ग, तत्रापि मोक्षप्रमाणमिति घ. ३ गुणत्वादिति ख, गुणत्वादिति ग, घ. ४ इति तार्किकसर्वदेवसूरिणेति क, ख, इति श्रीमत्तार्किकचूडामणिसर्वदेवेति ग, इति तार्किकसर्वदेवसूरि प्रणीतेति घ. ५ परमिदं नास्ति च पुस्तके.

सन्दिग्धव्यभिचारः। व्याप्तिग्रहेणानुमितेरेव तद्विरहे तत एवानुमितिविरहात् न तादृशः सन्दिग्धव्यभिचारो दोषः, किन्तु साध्याभाववत्तया निश्चिते हेतुमत्तया सन्दिग्धे सन्दिग्धव्यभिचारो दोष इति पर्यालोचनीयमिति।

यन्मिश्रबलभद्रेण निरटङ्कीह किञ्चन।
तच्छोधयन्तु सुधियस्सारासारविवेचकाः॥

इति श्रीविष्णुदासत्रिपाठितनूजमाध्वीपुत्रमिश्रश्रीबलभद्रकृता प्रमाणमञ्जरीटीका समाप्ता॥

[अ. टी.] स्वाभिमते निर्वाणे प्रमाणमाह **तत्रापीति**। वायव्युदासार्थं **कदाचित्पदम्**। जलादिपरमाणुषु व्यभिचारवारणार्थम् **अनित्यविशेषगुणत्वादित्युक्तम्**। पाके पार्थिवपरमाणूनामुक्तसाध्यवत्वम्। अथवा क्रमेण सर्वमुक्त्यङ्गीकारादत्यन्तोच्छेद एव, पार्थिवाणुविशेषगुणानां पुनः प्राणिभोगार्थं सृष्टेनारम्भात्। आकाशेऽनैकान्तिकत्वमाशङ्क्याह, **नाकाश इति**। सपक्षत्वान्न व्यभिचार इत्यर्थः।

प्रमाणमञ्जरीव्याख्या समासेन विनिर्मिता।
संविदारण्यतुष्ट्यर्थमद्वयारण्ययोगिना॥

इति प्रमाणमञ्जरीटिप्पणेऽद्वयारण्ययोगिविरचितेऽभावपदार्थस्समाप्तः।

[वा. टी.] ननु मोक्षस्वरूपे वादिना विप्रतिपत्तेरेवंविध एव मोक्ष इत्येतस्मिन्नर्थे किं प्रमाणमत आह **तत्रेति**। तस्मिन्नित्यर्थः। नान्यस्मिन्मानमित्यपि सूचितम्। सिद्धसाधनपरिहाराय **अनित्येति**। तत्र चागमः—"अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः" इति। आकाशे व्यभिचारमाशङ्क्य परिहरति, **नाकाश इति**। सपक्षत्वादिति भावः।

शाके बाणगजत्रिचन्द्रगणिते वर्षे सुभानौ शुभे
देशे वाडपदाङ्किते धृतवति श्रीपद्मनाभे विभौ।
लक्ष्मीशाङ्घ्रि......तुलसीकृष्णाङ्गभूर्व्यातनो-
र्व्याख्याकोविदभट्टवामन इमां लक्ष्मीपतिप्रीतये॥
टीकेयं न भवेत्प्रीत्यै मत्सरग्रस्तचेतसाम्।
तथापि सुजनानन्ददायिनी कल्पतां चिरम्॥

इति वामनभट्टविरचितायां प्रमाणमञ्जरीटीकायां अभावपदार्थस्समाप्तः।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः॥

* *
*

१ पदमिदं नास्ति च पुस्तके. २ पुनः प्राणीभि नास्ति ट पुस्तके. ३ पद्यमिदं नास्ति ट पुस्तके.